

Printed by L. Ramaswamy Sastri at the Sridhara Power Press,
Trivandrum, and published by Newton Mohun Dutt, Curator of
Libraries, Baroda State, on behalf of the Government
of His Highness the Maharaja Gaekwad, at
the Central Library, Baroda.

Price Rs 5/- Net.

PREFACE

This, the second volume, completes the work of Samarangana which runs up to a portion of the 83rd Adhyaya. It contains descriptions of Prasadas pertaining to Devas, statues made of gold, silver etc., the art of painting, रस and दृष्टि to be delineated in pictures and images, 64 kinds of हस्त beginning with Pataka and similar other topics, a detailed mention of which may be found in the contents attached.

Great difficulty had to be experienced in bringing out this edition as no other manuscript was available than the one referred to in the preface to the first volume, which contains several errors and is in many places not legible. Proper substitutes for the errors have been proposed within interrogations and new readings for impure words and phrases suggested as far as possible by means of foot notes.

The subject matter being silpa, the work need not possess the characteristics of a literary work. Nevertheless it is remarkable for its sweet and simple Kavya style. It is for this reason that I said in the first volume that the author of the work is the same King Bhoja of Dhara who wrote Srīngara-prakasa and other works and to whom is assigned a high place in the domain of Sahitya.

It may be said that, because the various machines such as the elephant machine, door keeper machine, flying machine etc., mentioned in the work, have not been either seen or heard of before, they are only products of imagination and not actual machines made and put into practical use. That is not so; for, even things which once existed might, in the long run, come to be considered as unreal on account of their disuse and things involving much labour, time and money may also get out of use very easily.

It may be asked next why the poet has not described the method of constructing the machines. The poet himself answers thus:—

यन्त्राणां घटना नोक्ता
 गुप्त्यर्थे नाज्ञतावशात् ।
 तत्र हेतुरयं ज्ञेयो
 व्यक्ता नैते फलप्रदाः ॥ (Vol. I, P. 175)

The meaning of the line, व्यक्ता नैते फलप्रदाः is, in case the methods are revealed in the work, then every one not initiated in the art by the preceptor will try to construct the machines and the attempt made by such a person may not only not achieve success but bring about troubles and difficulties. The following sloka contains the qualifications necessary for constructing the machines:—

पारम्पर्यं कौशलं सोपदेशं
 शाल्त्राभ्यासो वास्तुकर्मोद्यमो धीः ।
 सामग्रीयं निर्मला यस्य सोऽस्मि-
 श्वित्राण्येवं वेत्ति यन्त्राणि कर्तुम् ॥ (Vol. I, P. 176)

It is also not uncommon, in the case of highly useful machines, to keep unrevealed the methods of constructing them.

T. Ganapati Sastri.

विषयानुक्रमणी ।

विषयः

पृष्ठम्.

५५. मेर्वादिषोडशप्रासादादिलक्षणाध्यायः पञ्चपञ्चाशः—

| | | | | | |
|---|-----|-----|-----|-----|--------|
| मेर्वादयः षोडश प्रासादाः | ... | ... | ... | ... | १ |
| तेषु मेरुलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | १ |
| कैलासलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | २ |
| सर्वतोभद्रलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ३ |
| विमानच्छन्दलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ३, ४ |
| नन्दनलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ५ |
| स्वस्तिकलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ११ |
| मुक्तकोणलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ६ |
| श्रीवत्सलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ११ |
| हंसरुचक्रवर्धभानगरुडगजप्रासादानां लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ७ |
| सिंहपद्मकयोर्लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ८ |
| मेर्वादिप्रासादसानान्यविधयः | ... | ... | ... | ... | ११ |
| वलभीप्रासादलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ९ |
| मेर्वादीनां विनियोगः | ... | ... | ... | ... | ११ |
| एषु जगत्यादिकल्पननियमाः | ... | ... | ... | ... | ११ |
| परिवाराणां स्थापनप्रकारः | ... | ... | ... | ... | १० |
| द्वारमानविधयः | ... | ... | ... | ... | ११ |
| स्तम्भहीरब्रह्महनुलाधारणदुम्भपद्मादीनां कल्पनम् | ... | ... | ... | ... | १२, १२ |
| रूपशास्त्रादिप्रकल्पनम् | ... | ... | ... | ... | १३ |

५६. रुचकादिचतुष्पाष्टिप्रासादाध्यायः पदपञ्चाशः—

| | | | | |
|---|-----|-----|-----|----|
| रुचकादिचतुष्पाष्टिप्रासादानां साधारणा विधयः | ... | ... | ... | १४ |
| तेषु रुचकादयः पञ्चविंशतिर्ललितप्रासादाः | ... | ... | ... | ११ |
| तेषां सन्निवेशः | ... | ... | ... | १५ |

विषयः

पृष्ठम्.

| | |
|--|----|
| सुभद्रादयो नव मिश्रकप्रासादाः | १५ |
| केसर्यादयः पञ्चविंशतिः सान्धारप्रासादाः | १६ |
| लतादयः पञ्च निगूढप्रासादाः | १७ |
| केसर्यादिष्वण्डकसंह्या | १८ |
| मेरोर्विनियोगः कर्तृनियमादिकं च | १९ |
| ललितप्रासादेषु रुचकभद्रकहंसानां लक्षणम् | २० |
| हंसोद्भवप्रतिहंसनन्दनन्द्यावर्तधराधरवर्धमानगिरि- कूटानां लक्षणम् | २१ |
| श्रीवत्सत्रिकूटमुक्तकोणजगरुडार्सिहाफ्यानां लक्षणम् | २२ |
| भवविभवमालाघराणां लक्षणम् | २३ |
| पद्ममलयवज्रकाणां लक्षणम् | २४ |
| स्वस्तिकशङ्कोर्लक्षणम् | २५ |
| एषु चतुरश्रतदायतवृत्ततदायताष्टाश्रिप्रासादानां विभागः | २६ |
| मिश्रकप्रासादेषु सुभद्रादित्रिकूटान्तानां लक्षणम् | २७ |
| घराधरादिसर्वाङ्गसुन्दरान्तानां लक्षणम् | २८ |
| मिश्रकप्रासादसामान्यलक्षणम् | २९ |
| सान्धारप्रासादेषु केसरिलक्षणम् | ३० |
| सर्वतोमद्रलक्षणम् | ३१ |
| नन्दननन्दिशालयोर्लक्षणम् | ३२ |
| नन्दिवर्धनमन्दिरयोर्लक्षणम् | ३३ |
| श्रीवत्सामृतोद्भवयोर्लक्षणम् | ३४ |
| हिमवद्धेमकूटयोर्लक्षणम् | ३५ |
| कैलासपृथिवीजयेन्द्रनीलानां लक्षणम् | ३६ |
| मदानीलमूधरयोर्लक्षणम् | ३७ |
| रत्नकूटवैडूर्ययोर्लक्षणम् | ३८ |
| पद्मरागवज्रकमुकुटोज्ज्वलैरावतराजहंसानां लक्षणम् | ३९ |
| गहडवृषभमेच्छणां लक्षणम् | ४० |
| निगूढप्रासादेषु लतास्वस्य लक्षणम् | ४१ |
| त्रिपुन्करान्यपञ्चवक्त्रचतुर्मुखाणां लक्षणम् | ४२ |

| | | | | | |
|--------------------------------------|-----|-----|-----|-----|-------|
| नवरात्रक.प्र.मा.दशम.क्षणम् | ... | ... | ... | ... | ३५-३७ |
| पुत्र.परिवार.प्र.नि.पु.नि.दशम.क्षणम् | ... | ... | ... | ... | ३७-३८ |

१७. वेदादिर्विभिन्नाध्यायः नन्दप्रधानः —

| | | | | | |
|----------------------------------|-----|-----|-----|-----|-------|
| कर्म्ये श्रीधरदशम.प्र.दशम.क्षणम् | ... | ... | ... | ... | ३९ |
| नन्दनादयो.दशम.प्र.दशम.क्षणम् | ... | ... | ... | ... | ४० |
| तेषु श्रीधरदशम.प्र.दशम.क्षणम् | ... | ... | ... | ... | ४०-४३ |
| हेमकृतदशम.प्र.दशम.क्षणम् | ... | ... | ... | ... | ४३-४५ |
| सुभद्रदशम.प्र.दशम.क्षणम् | ... | ... | ... | ... | ४६-४७ |
| गिष्कमनिलदशम.प्र.दशम.क्षणम् | ... | ... | ... | ... | ४८-५० |
| पुष्पकलदशम.प्र.दशम.क्षणम् | ... | ... | ... | ... | ५०-५२ |
| विजयभद्रदशम.प्र.दशम.क्षणम् | ... | ... | ... | ... | ५२-५४ |
| श्रीनिवासदशम.प्र.दशम.क्षणम् | ... | ... | ... | ... | ५४ |
| सुरसुन्दरदशम.प्र.दशम.क्षणम् | ... | ... | ... | ... | ५५-५७ |
| नन्द्यावर्तनदशम.प्र.दशम.क्षणम् | ... | ... | ... | ... | ५७-५९ |
| पूर्णप्रासादलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ५९ |
| सिद्धार्थलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ६० |
| शङ्खवर्धनलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ६१ |
| त्रैलोक्यभूषणलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ६२-६४ |
| पद्मपक्षवाहोर्लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ६४ |
| विशाललक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ६५ |
| क्रमलोद्भवलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ६६ |
| हंसध्वजलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ६७ |
| लक्ष्मीघरलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ६८ |
| महावज्ररतिदेहयोर्लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ६९ |
| सिद्धकामलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ७० |
| पञ्चचामरलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ७१ |
| नन्दिघोषलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ७२ |
| मनूत्कीर्णलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ७३ |

विषयः

पृष्ठम्.

| | | | | | | |
|--|-----|-----|-----|-----|-----|----------|
| सुप्रभलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... | ७३, ७४ |
| सुरानन्दलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... | ७५ |
| हर्षणलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... | ७६ |
| दुर्घरलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... | ७७ |
| दुर्जयलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... | ७८ |
| त्रिकूटनवशेखरयोर्लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... | ७९ |
| पुण्डरीकलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... | ८० |
| सुनाभलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... | ८१ |
| महेन्द्रलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... | ८२ |
| वराटलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... | ८३ |
| सुमुखप्रासादलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... | ८४ |
| नन्दलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... | ८५ |
| महाघोषवृद्धिरामवसुन्धराणां लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... | ८६ |
| सुदृकलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... | ८७ |
| वृद्धच्छाललक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... | ८७, ८८ |
| सर्वदेवसाधारणेष्वन्येषु विंशतिप्रासादेषु मेरुलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... | ८९ |
| मन्दरलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... | ९० |
| कैलासलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... | ९१-९३ |
| त्रिविष्टपलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... | ९३-९५ |
| पृथिवीजयलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... | ९५-९८ |
| शक्तिभूषणलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... | ९८ |
| सर्वतोभद्रलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... | ९९-१०१ |
| विमानप्रासादलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... | १०१, १०२ |
| नन्दनलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... | १०३ |
| वस्तिकलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... | १०३, १०४ |
| सुस्तोत्रलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... | १०४-१०६ |
| विवत्सलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... | १०६-१०८ |
| सलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... | १०८ |

विषयः

पृष्ठम्.

| | | | | | |
|-------------------------------|-----|-----|-----|-----|---------|
| रुचकवर्धमानयोर्लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | १०९ |
| गरुडगजसिंहप्रासादानां लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ११० |
| पद्मकलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | १११ |
| नन्दिवर्धनलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ११२-११४ |

५८. प्रासादस्तवनाध्यायोऽष्टपञ्चाशः—

विश्वकर्मेणे ब्रह्मणा दत्तेषु विमानादिचतुष्पष्टिप्रासादेषु

| | | | | | |
|---|-----|-----|-----|-----|-----|
| वास्तुदेवतापूजनादिकम् | ... | ... | ... | ... | ११४ |
| एषां प्रासादानां विनियोगः | ... | ... | ... | ... | ११५ |
| तत्र शिवस्य समुद्दिष्टा अष्टौ प्रासादाः | ... | ... | ... | ... | ” |
| विष्णोः प्रासादाः | ... | ... | ... | ... | ” |
| ब्रह्मणः प्रासादाः | ... | ... | ... | ... | ” |
| सूर्यस्य प्रासादाः | ... | ... | ... | ... | ” |
| चण्डिकायाः प्रासादाः | ... | ... | ... | ... | ” |
| विनायकस्य प्रासादाः | ... | ... | ... | ... | ” |
| लक्ष्म्याः प्रासादाः | ... | ... | ... | ... | ” |
| सर्वदेवसाधारणाः प्रासादाः | ... | ... | ... | ... | ११६ |

५९. विमानादिचतुष्पष्टिप्रासादलक्षणाध्याय एकोनपष्टितमः—

| | | | | | |
|--|-----|-----|-----|-----|---------|
| समनन्तरोक्तचतुष्पष्टिप्रासादेषु विमानलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ११६-११८ |
| सर्वतोमद्रलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ११८ |
| गजपृष्ठप्रासादलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ११९ |
| पद्मकवृषभमुक्तकोणनलिनप्रासादानां लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | १२० |
| मणिकगरुडप्रासादयोर्लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | १२१ |
| वर्धमानशङ्खवर्तयोर्लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | १२२ |
| पुष्पकगृहराजस्वस्तिकप्रासादानां लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | १२३ |
| रुचकलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | १२४ |
| पुण्ड्रवर्धनभैरवमन्दिरप्रासादानां लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | १२५ |
| कैलासदंतमद्रुद्रप्रासादानां लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | १२६ |

| विषयः | पृष्ठम्. |
|---|----------|
| मिश्रकगवयचित्रकूटकिरणप्रासादानां लक्षणम् | १२७ |
| सर्वाङ्गसुन्दरनन्द्यावर्तवलम्बप्रासादानां लक्षणम् | १२८ |
| सुपर्णश्रीवत्सप्रासादयोर्लक्षणम् | १२९ |
| पद्मनाभवैराजवृत्तकपासादानां लक्षणम् | १३० |
| सिंहचित्रकूटयोर्लक्षणम् | १३१ |
| योगपीठघण्टानादपत्ताकिनगुहाघरप्रासादानां लक्षणम् | १३२ |
| शालाकवेणुककुञ्जरप्रासादानां लक्षणम् | १३३ |
| हर्षणमहापद्महर्म्यप्रासादानां लक्षणम् | १३४ |
| उज्जयन्तगन्धमादनशतशृङ्गविभ्रान्तमनोहरप्रासादानां लक्षणम् | १३५ |
| वृत्तवृत्तायतत्रैत्यकिङ्किणीकलयनपट्टिसविभवप्रासादानां लक्षणम् | १३६ |
| तारागणप्रासादलक्षणम् | १३७ |

६०. श्रीकूटादिपट्टत्रिंशत्प्रासादलक्षणाध्यायः पण्डितमः—

| | |
|---|-----|
| नागरक्रियाणां श्रीकूटादिपट्टत्रिंशत्प्रासादानां नामनिर्देशः | ” |
| तत्र श्रीकूटलक्षणम् | १३८ |
| श्रीमुखलक्षणम् | १३९ |
| श्रीधरवरदप्रियदर्शनकुलनन्दनान्तरिक्षाणां लक्षणम् | १४० |
| पुष्पाभासविशालकसङ्कीर्णमहानन्दनन्द्यावर्तसौभा- ग्याख्यानां लक्षणम् | १४१ |
| विमङ्गकविभवचीमत्सश्रीतुङ्गमानतुङ्गानां लक्षणम् | १४२ |
| सर्वतोमद्रवाद्योदरनिर्भूदोदराणां लक्षणम् | १४३ |
| मद्रकोशचित्रकूटविमलहर्षणमद्रसङ्कीर्णमद्रविशालक मद्रविष्कम्भाणां लक्षणम् | १४४ |
| उज्जयन्तलक्षणम् | १४५ |
| चित्रकूटादुज्जयन्ताच्चोत्पन्नाः प्रासादाः | ” |

| | | | | |
|--|-----|-----|-----|----------|
| विषयः | | | | शृष्ठम्. |
| विमानादीनां श्रीकूटादीनां च साधारणा नियमाः | ... | ... | ... | १४६ |
| उत्तमादिप्रासादानां मानम् | ... | ... | ... | " |

६१. पीठपञ्चकलक्षणाध्याय एकपष्टितमः—

| | | | | |
|--|-----|-----|-----|-----|
| द्राविडप्रासादयोग्यानि पञ्च पीठानि | ... | ... | ... | १४७ |
| तेषु पादबन्धपीठस्य लक्षणम् | ... | ... | ... | " |
| श्रीबन्धवेदीबन्धप्रतिक्रमपीठानां लक्षणम् | ... | ... | ... | १४८ |
| धुरबन्धपीठस्य लक्षणम् | ... | ... | ... | १४९ |
| पद्मादयः पञ्च तलच्छन्दप्रासादाः | ... | ... | ... | " |
| तेषु पद्मतलच्छन्दलक्षणम् | ... | ... | ... | " |
| महापद्मवर्धमानस्वस्तिकतलच्छन्दानां लक्षणम् | ... | ... | ... | १५० |
| सर्वतोमद्रतलच्छन्दलक्षणम् | ... | ... | ... | १५१ |
| एवमेव सान्धारणां लक्षणम् | ... | ... | ... | " |

६२. द्राविडप्रासादलक्षणाध्यायो द्विपष्टितमः—

| | | | | |
|---|-----|-----|-----|----------|
| भूमिकायुक्तेषु द्राविडप्रासादेषु एकभूमिकस्य लक्षणम् | ... | ... | ... | १५२ |
| द्विभूमिकस्य लक्षणम् | ... | ... | ... | १५३ |
| त्रिभूमिकस्य लक्षणम् | ... | ... | ... | १५४-१५७ |
| चतुर्भूमिकस्य लक्षणम् | ... | ... | ... | १५८-१६० |
| पञ्चभूमिकस्य लक्षणम् | ... | ... | ... | १६०-१६५ |
| षड्भूमिकस्य लक्षणम् | ... | ... | ... | १६५ |
| सप्तभूमिकस्य लक्षणम् | ... | ... | ... | १६६ |
| अष्टभूमिकनवभूमिकयोर्लक्षणम् | ... | ... | ... | १६७ |
| दशभूमिकैकादशभूमिकद्वादशभूमिकानां लक्षणम् | ... | ... | ... | १६८, १६९ |

६३. मेवादिर्विशिकानागरप्रासादलक्षणाध्यायः त्रिपष्टितमः—

| | | | | |
|--|-----|-----|-----|---------|
| मेवादयो विशतिर्नागरप्रासादाः | ... | ... | ... | १७० |
| एषु भूमिकादिफलपननियमादयः | ... | ... | ... | १७०-१७२ |
| पक्षान्तरेणैषां मानप्रदर्शनम् | ... | ... | ... | १७२ |
| भूमिकाएकस्य मानं, एभक् पृथक् तदवयवकल्पनं च | ... | ... | ... | १७३-१७९ |

६४. दिग्भद्रादिप्रासादलक्षणाध्यायः चतुष्पष्टितमः—

| | | | |
|--|-----|-----|---------|
| दिग्भद्रादीनां द्वादशवावाटप्रासादानां नामानि | ... | ... | १७९ |
| तेषु दिग्भद्रलक्षणम् | ... | ... | ” |
| श्रीवत्सलक्षणम् | ... | ... | १८० |
| वर्धमानलक्षणम् | ... | ... | १८०-१८२ |
| नन्द्यावर्तनन्दिवर्धनयोर्लक्षणम् | ... | ... | १८२ |
| विमानलक्षणम् | ... | ... | १८३ |
| पद्ममहाभद्रयोर्लक्षणम् | ... | ... | १८४ |
| श्रीवर्धमानलक्षणम् | ... | ... | १८५ |
| महापद्मपञ्चशालपृथिवीजयानां लक्षणम् | ... | ... | १८६ |

६५. भूमिजप्रासादलक्षणाध्यायः पञ्चपष्टितमः—

| | | | |
|---|-----|-----|----------|
| भूमिजप्रासादेषु निषधादयश्चत्वारश्चतुरश्रप्रासादाः | ... | ... | १८७ |
| तेषु निषधलक्षणम् | ... | ... | ” |
| मलयोद्गिरिलक्षणम् | ... | ... | १८८ |
| माल्यवतो लक्षणम् | ... | ... | १८९ |
| नवमालिकस्य लक्षणम् | ... | ... | १९० |
| कुमुदादयः सप्त वृक्षजातिप्रासादाः | ... | ... | १९१ |
| तेषु कुमुदलक्षणम् | ... | ... | १९२, १९३ |
| कमललक्षणम् | ... | ... | १९३ |
| कमलोद्भवलक्षणम् | ... | ... | १९४ |
| किरणशतशृङ्गयोर्लक्षणम् | ... | ... | १९५ |
| निरवधलक्षणम् | ... | ... | १९६ |
| सर्वाङ्गसुन्दरलक्षणम् | ... | ... | १९७ |
| भूमिजातिष्वेव स्वस्तिकादयः पञ्चाष्टशालप्रासादाः | ... | ... | १९८ |
| तेषु स्वस्तिकलक्षणम् | ... | ... | ” |
| वज्रस्वस्तिकलक्षणम् | ... | ... | १९९ |
| हर्म्यतललक्षणम् | ... | ... | २०० |

विषयः

पृष्ठम्.

| | | | | | | |
|--|-----|-----|-----|-----|-----|-----|
| उदयाचललक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... | २०१ |
| गन्धमादनलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... | २०२ |
| नागरादिप्रासादगतानां पञ्चविंशतिरेखाणां संज्ञाः, तत्करणविधिश्च | ... | ... | ... | ... | ... | , |

६६. मण्डपलक्षणाध्यायः षट्पष्टितमः—

| | | | | | | |
|--|-----|-----|-----|-----|-----|---------|
| सामान्यतो मण्डपस्य द्वैविध्यं, तदर्थो वास्तुपदविभागश्च | ... | ... | ... | ... | ... | २०३ |
| भद्रादयोऽष्टौ मण्डपाः | ... | ... | ... | ... | ... | ” |
| सर्वेषां मण्डपानां सामान्यविधिः | ... | ... | ... | ... | ... | ” |
| तत्र भद्रमण्डपलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... | २०४-२०६ |
| नन्दनमहेन्द्रवर्धमानाख्यानां लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... | २०६ |
| स्वस्तिकसर्वतोभद्रमहापद्मगृहराजानां लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... | २०७ |
| अन्ये मण्डपनिर्माणसम्बद्धा विशेषाः | ... | ... | ... | ... | ... | २०८ |

६७. सप्तविंशतिमण्डपलक्षणाध्यायः सप्तपष्टितमः—

| | | | | | | |
|--|-----|-----|-----|-----|-----|---------|
| सन्निवेशविशेषेण भिन्नेष्वन्येषु सप्तविंशतिमण्डपेषु उत्तमाधम- मध्यमकल्पननियमाः | ... | ... | ... | ... | ... | ” |
| तेषु पुष्पकलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... | २०९ |
| अन्येषां मण्डपानां नामानि | ... | ... | ... | ... | ... | ” |
| मिश्रकादिमण्डपानां लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... | २१०-२१७ |

६८. जगत्यङ्गसमुदायाधिकाराध्यायोऽष्टपष्टितमः—

| | | | | | | |
|---|-----|-----|-----|-----|-----|---------|
| जगतीस्वरूपकथनम् | ... | ... | ... | ... | ... | २१८ |
| पीठात् पृथग् जगतीसम्भवे कारणम् | ... | ... | ... | ... | ... | ” |
| जगतीनां सन्निवेशाः | ... | ... | ... | ... | ... | ” |
| प्रासादेषु जगत्या निवेशनस्थानम् | ... | ... | ... | ... | ... | ” |
| उत्तमादीनां जगतीनां विनियोगप्रकारः | ... | ... | ... | ... | ... | ” |
| कर्णोद्भवादयः षट्प्रकाराः शालाः, तदङ्गं च | ... | ... | ... | ... | ... | २१९ |
| उत्तमादिजगतीपीठानां लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... | २२०-२२२ |

विषयः

पृष्ठम्.

६९. जगतीलक्षणाध्याय एकोनसप्ततितमः —

| | | | |
|---|-----|-----|---------|
| चतुरथाकाराणामेकोनचत्वारिंशतो जगतीनां संज्ञाः | ... | ... | २२२ |
| तासु वसुधाद्येकभद्रान्तानां लक्षणम् | ... | ... | २२३ |
| द्विमादिकादिअमरावल्यन्तानां लक्षणम् | ... | ... | २२४ |
| स्वस्तिव्यादिमन्दारनालिकान्तानां लक्षणम् | ... | ... | २२५ |
| अनङ्गलेसादिनन्यावर्तान्तानां लक्षणम् | ... | ... | २२६ |
| ताममूयादिकर्षमन्त्रार्थन्तानां लक्षणम् | ... | ... | २२७ |
| शिथन्त्यादिमुभद्रान्तानां लक्षणम् | ... | ... | २२८ |
| भित्तपञ्चमदिदेवयन्त्रिकान्तानां लक्षणम् | ... | ... | २२९ |
| अष्टाशयानां यम्यादित्रिपथान्तानां लक्षणम् | ... | ... | २२९-२३२ |
| दृष्टाकाराणां वय्यादिचन्द्रमण्डलान्तानां लक्षणम् | ... | ... | २३३-२३६ |
| दृष्टाकाराणां मातृदृष्ट्यादिकादिद्वयन्तानां लक्षणम् | ... | ... | २३६ |
| अष्टाशयानां मातृकादित्रयतीनां लक्षणम् | ... | ... | २३७-२३९ |

७०. विश्वपीठप्रतिमालक्षणाध्यायः सप्ततितमः—

| | | | |
|--|-----|-----|---------|
| विश्वपीठसंज्ञायाः प्रमाणं, द्रव्याणि, लक्षणोद्गादि च | ... | ... | २४०-२४२ |
| विश्वपीठसंज्ञायाः प्रमाणं, द्रव्याणि, लक्षणोद्गादि च | ... | ... | २४३-२४५ |
| विश्वपीठसंज्ञायाः प्रमाणं, द्रव्याणि, लक्षणोद्गादि च | ... | ... | २४६ |
| विश्वपीठसंज्ञायाः प्रमाणं, द्रव्याणि, लक्षणोद्गादि च | ... | ... | २४७ |
| विश्वपीठसंज्ञायाः प्रमाणं, द्रव्याणि, लक्षणोद्गादि च | ... | ... | २४८-२५० |
| विश्वपीठसंज्ञायाः प्रमाणं, द्रव्याणि, लक्षणोद्गादि च | ... | ... | २५० |
| विश्वपीठसंज्ञायाः प्रमाणं, द्रव्याणि, लक्षणोद्गादि च | ... | ... | २५१ |
| विश्वपीठसंज्ञायाः प्रमाणं, द्रव्याणि, लक्षणोद्गादि च | ... | ... | २५२ |

विषयः

पृष्ठम्

७१. चित्रोद्देशाध्याय एकसप्ततितमः —

| | | | | | | |
|----------------------------|-----|-----|-----|-----|-----|-----|
| चित्रप्रशंसा | ... | ... | ... | ... | ... | २५२ |
| चित्रलेखनाधिष्ठाननि | ... | ... | ... | ... | ... | ” |
| चित्रोद्देशः | ... | ... | ... | ... | ... | २५३ |
| चित्रकर्माज्ञानां निर्देशः | ... | ... | ... | ... | ... | ” |

७२. भूमिवन्धाध्यायो द्विसप्ततितमः —

| | | | | | | |
|--|-----|-----|-----|-----|-----|-----|
| वर्तिकावन्धनोपयोगिन्यो मृदः, तत्संस्करणं च | ... | ... | ... | ... | ... | २५४ |
| वर्तिकालक्षणं, भूमिवन्धनप्रकारश्च | ... | ... | ... | ... | ... | २५५ |
| कुड्यभूमिवन्धनक्रमः | ... | ... | ... | ... | ... | २५६ |
| पट्टभूमिवन्धनक्रमः | ... | ... | ... | ... | ... | २५७ |
| पटभूमिवन्धनक्रमः | ... | ... | ... | ... | ... | २५८ |

७३. लेप्यकर्मादिकाध्यायः त्रिसप्ततितमः —

| | | | | | | |
|---|-----|-----|-----|-----|-----|-----|
| लेप्यकर्मादिचिताया मृदो लक्षणं, तत्संस्करणं च | ... | ... | ... | ... | ... | ” |
| तामिल्लेपनक्रमः, कूर्चकलक्षणं च | ... | ... | ... | ... | ... | २५९ |
| कूर्चकैल्लेखाकरणनियमाः | ... | ... | ... | ... | ... | २६० |

७४. अण्डकप्रमाणाध्यायः चतुःसप्ततितमः —

| | | | | | | |
|--|-----|-----|-----|-----|-----|-----|
| आलेख्यकर्मणि मुखाण्डकवृत्ताण्डकयोरालेखनविधिः | ... | ... | ... | ... | ... | ” |
| अलसाण्डकादीनामालेखनविधिः | ... | ... | ... | ... | ... | २६१ |

७५. मानोत्पत्त्यध्यायः पञ्चसप्ततितमः —

| | | | | | | |
|---|-----|-----|-----|-----|-----|----------|
| मानगणनम् | ... | ... | ... | ... | ... | २६२ |
| देवादीनां शरीरप्रमाणप्रदर्शनम् | ... | ... | ... | ... | ... | २६२, २६३ |
| देवासुरनरादीनां रूपविशेषाः, गजवाजिसिंहव्यालकुक्कुटा- दीनां जातिभेदाश्च | ... | ... | ... | ... | ... | २६४ |
| चित्रकर्मापक्रमनियमाः | ... | ... | ... | ... | ... | २६५ |

विषयः

पृष्ठम्.

७६. प्रतिमालक्षणाध्यायः षट्सप्ततितमः —

| | | | | |
|---|-----|-----|-----|----------|
| प्रतिमाद्रव्याणि, तत्प्रयुक्ताः फलभेदाश्च | ... | ... | ... | २६६. |
| प्रतिमानिर्माणोपक्रमविधिः | ... | ... | ... | ” |
| पुरुषप्रतिमावयवेषु नेत्रश्रवणनासापुटचिबुको- | | | | |
| ष्टसुकृनासिकानां तदंशभूतानां च पृथक् पृथक् | | | | |
| प्रमाणप्रदर्शनम् | ... | ... | ... | २६६, २६७ |
| ललाटगण्डग्रीवावक्षोनाभिमेढ्रोरुजानुजङ्घापादाङ्गुलि- | | | | |
| नखानां प्रमाणपरिमाणादिकम् | ... | ... | ... | २६८, २६९ |
| बाह्योस्तदङ्गुलीनां च प्रमाणादिकम् | ... | ... | ... | २६९ |
| स्त्रीप्रतिमानामङ्गप्रत्यङ्गप्रमाणादिकम् | ... | ... | ... | २७० |

७७. देवादिरूपप्रहरणसंयोगलक्षणाध्यायः सप्तसप्ततितमः —

| | | | | |
|---|-----|-----|-----|-----|
| प्रतिमाविशेषेषु ब्रह्मणो लक्षणम् | ... | ... | ... | ” |
| शिवस्य लक्षणम् | ... | ... | ... | २७१ |
| कार्तिकेयस्य लक्षणम् | ... | ... | ... | २७२ |
| वलभद्रस्य लक्षणम् | ... | ... | ... | २७३ |
| विष्णोर्लक्षणम् | ... | ... | ... | २७४ |
| महेन्द्रादीशानान्तानां लोकपालानां लक्षणम् | ... | ... | ... | ” |
| लक्ष्म्या लक्षणम् | ... | ... | ... | ” |
| कौशिक्या लक्षणम् | ... | ... | ... | २७५ |
| अश्विनोर्लक्षणम् | ... | ... | ... | ” |
| पिशाचादीनां लक्षणम् | ... | ... | ... | ” |
| यक्षनागगन्धर्वादीनां सामान्यलक्षणम् | ... | ... | ... | ” |

७८. दोषगुणनिरूपणाध्यायोऽष्टसप्ततितमः —

| | | | | |
|--------------------------------------|-----|-----|-----|----------|
| दुष्टाः प्रतिमाः, तत्पूजनफलं च | ... | ... | ... | २७६, २७७ |
| शुभावहानां प्रतिमानां सामान्यलक्षणम् | ... | ... | ... | २७८ |

विषयः

पृष्ठम्.

७९. ऋज्वागतादिस्थानलक्षणाध्याय एकोनाशीतितमः—

प्रतिमानान् ऋज्वागतादिकाः स्थानविशेषाः, तत्परा-

| | | | | |
|--|-----|-----|-----|----------|
| वृत्तानि, तद्यन्तराणि च ... | ... | ... | ... | २७८ |
| तेषु ऋज्वागतार्धज्वागतयोर्लक्षणम् | ... | ... | ... | २७९-२८१ |
| साचीकृतलक्षणम् | ... | ... | ... | २८२-२८४ |
| अध्यर्षालक्षणम् | ... | ... | ... | २८४-२८८ |
| पार्श्वगतलक्षणम् | ... | ... | ... | २८८ |
| ऋज्वागतपरावृत्तलक्षणम् | ... | ... | ... | २८९ |
| परावृत्तान्तराणां लक्षणसंक्षेपः | ... | ... | ... | २९० |
| एषु तत्तदवयवविभागप्रमाणनिर्णयार्थः सूत्रपातविधिः | ... | ... | ... | २९०, २९१ |

८०. वैष्णवादिस्थानकलक्षणाध्यायोऽशीतितमः—

| | | | | |
|---|-----|-----|-----|-----|
| वैष्णवादिकानि चेष्टास्थानानि तल्लक्षणं च ... | ... | ... | ... | २९२ |
| सर्वेष्वपि स्थानकेषु जायमानानि द्रुतादिकानि गम- नानि, तल्लक्षणं च ... | ... | ... | ... | २९३ |
| अन्येषामपि क्रियाविशेषाणां प्रतिपत्त्यर्थं पातनीयानि त्रीणि सूत्राणि, तत्पातनविधिश्च ... | ... | ... | ... | २९४ |

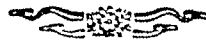
८१. पञ्चपुरूपस्त्रीलक्षणाध्याय एकाशीतितमः—

| | | | | |
|-------------------------------|-----|-----|-----|-----|
| हंसादयः पञ्च पुरुषविशेषाः ... | ... | ... | ... | २९५ |
| तेषु हंसलक्षणम् | ... | ... | ... | ” |
| शशलक्षणम् | ... | ... | ... | २९६ |
| रुचकलक्षणम् | ... | ... | ... | ” |
| भद्रलक्षणम् | ... | ... | ... | २९७ |

८२. रसदृष्टिलक्षणाध्यायो द्व्यंशीतितमः—

| | | | | |
|---------------------------------------|-----|-----|-----|-----|
| चित्रशास्त्रप्रसिद्धा एकादश रसाः ... | ... | ... | ... | २९८ |
| तेषु शृङ्गाराद्यद्भुतान्तानां लक्षणम् | ... | ... | ... | ” |
| शान्तरसलक्षणम् | ... | ... | ... | २९९ |

| विषयः | पृष्ठम्. |
|---|----------|
| अवहित्थस्य लक्षणं कर्माणि च | ३२० |
| वर्धमानलक्षणम् | ” |
| एषां प्रयोगाश्रिता नियमाः | ३२१ |
| चतुरश्रादय एकोनत्रिंशन्तहस्ताः | ३२१ |
| तेषु चतुरश्रविप्रकीर्णयोर्लक्षणम् | ” |
| पञ्चकोशलक्षणम् | ३२२ |
| अरालखटकामुखलक्षणम् | ” |
| आविद्धवक्रकलक्षणम् | ” |
| सूचीमुखलक्षणम् | ” |
| रोचिहस्तलक्षणम् | ” |
| उत्तानवञ्चितलक्षणम् | ” |
| अर्धरोचितलक्षणम् | ३२३ |
| पल्लवलक्षणम् | ” |
| केशवन्धलक्षणम् | ” |
| लताहस्तलक्षणम् | ” |
| करिहस्तलक्षणम् | ” |
| पक्षवञ्चितकलक्षणम् | ” |
| पञ्चप्रच्योतकलक्षणम् | ” |
| गरुडपक्षलक्षणम् | ३२४ |
| दण्डपञ्चोर्ध्वमण्डलिपार्श्वमण्डलिनां लक्षणम् | ” |
| उरोमण्डलिलक्षणम् | ” |
| ऽरःपार्श्वार्धमण्डललक्षणम् | ” |



शुभं भूयात् ॥

॥ श्रीः ॥

श्रीगणेशाय नमः ।

महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचितं
समराङ्गणसूत्रधारापरनामधेयं

वास्तुशास्त्रम्

(द्वितीयः संपुटः ।)

अथ मेर्वादिषोडशप्रासादादिलक्षणो नाम
पञ्चपञ्चाशोऽध्यायः ।

प्रासादानामतो लक्ष्म षोडशानां विशेषतः ।
ज्येष्ठमध्यकनिष्ठानां यथावदभिदध्महे ॥ १ ॥
विभज्यते यथा येन प्रागश्चोर्ध्वे विधीयते(?) ।
यावद् यस्य प्रमाणं तु तथा तत् तस्य कथ्यते ॥ २ ॥
मेरुः प्रासादराजश्च कैलासश्च हरप्रियः ।
सर्वतोभद्रकश्चैव विमानच्छदनन्दनौ ॥ ३ ॥
स्वस्तिको मुक्तकोणश्च श्रीवत्सो हंससंज्ञितः ।
रुचको वर्धमानश्च गरुडश्च गजस्तथा ॥ ४ ॥
मृगराजश्च पञ्चश्च बलभी चेति ते स्मृताः ।
न त्रयस्त्रिंशतोऽधस्तान्नापि पञ्चाशतः परा ॥ ५ ॥
सङ्ख्या भवति हस्तानां मेरोरिति पुराविदः ।
विभज्य दशधा क्षेत्रं शृङ्गं कुर्याद् द्विभागिकम् ॥ ६ ॥
कृत्वा षड्भागिकं मध्यं निर्गमस्तत्र दीयते ।
भागस्य षोडशांशेन विधेयं सलिलान्तरम् ॥ ७ ॥

१. 'या प्रायः प्राये चोर्ध्वे वि'(?), २. 'दस्य', ३. 'न', ४. 'रि',

५. 'ओ गरुडस्त' क. पाठः ।

पदैः षोडशभिर्गर्भे विधेया चास्य विस्तृतिः ।
प्रासादभित्तिः(ः)पदिका पदविस्तृतमन्तरम्(?) ॥ ८ ॥

पदिका वाद्यभित्तिः स्यादित्येष स तदा स्मृतः ।
द्विपदो वेदिकावन्धो जङ्घा पञ्चपदोदया ॥ ९ ॥

पदार्धेन पदार्धेन मेखलान्तरपत्रके ।
शृङ्गोच्छ्रितिलिभिर्भागैर्नवभिः शिखरोच्छ्रितिः ॥ १० ॥

शिखरस्यास्य कर्तव्यास्तज्जैः षोडश भूमिकाः ।
स्कन्धांशैर्विस्तृतः पद्भिर्गणेशोच्छ्रितमण्डकम् ॥ ११ ॥

ग्रीवा वंशोच्छ्रिता कार्या शिखरस्यादिविस्तृता ।
पद्गुणेनैव सूत्रेण वेणुकोशं समालिखेत् ॥ १२ ॥

विस्तृतेरपि भद्रायाः कुर्याद् द्विगुणमुच्छ्रयम् ।
कुम्भं भागेन कुर्वीत प्रासादेऽप्यखिलेष्वपि ॥ १३ ॥

एवमेव चतुःशृङ्गश्चतुर्द्वारोपशोभितः ।
मेरुर्मरूपमः कार्यो वाञ्छता शुभमात्मनः ॥ १४ ॥

सर्वस्वर्णमयं मेरुं यद् दत्त्वा पुण्यमाप्नुयात् ।
तमिष्टकाशैलमयं कृत्वा तदधिकं भजेत् ॥ १५ ॥
मेरुः ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे सप्तविंशतिपाणिकम् ।
दशथा विभजेत् स स्यात् कैलासः पुण्यवर्धनः ॥ १६ ॥

ब्रह्मकोष्ठगतो गर्भः शेषं भित्त्यन्धकारिका ।
चतुर्भागं भवेद् भद्रं मूलकर्णौ त्रिभागिकौ ॥ १७ ॥

सप्तभागोच्छ्रिता जङ्घा मेखला चार्धभागिका ।
भागेनान्तरपत्रं स्याद् भागेनाण्डकमुच्छ्रितम् ॥ १८ ॥

ग्रीवार्यभागमुत्सेधाच्छिखरं दशकोच्छ्रितम् ।
अर्धपट्टांशविस्तारः स्कन्धः कैलाससंज्ञिते ॥ १९ ॥

१. 'वाटिका', २. 'त्रिभागोच्छ्रि', ३. 'पङ्कजा तेषु सू', ४. 'पद-
त्वात् पु', ५. 'वे', ६. 'धै' क. पाठः ।

अस्मिन्नन्तरपत्रे तु सूत्रं दत्त्वा मुतादितम् ।

त्रिगुणेन त्रिग्वेत् तत्र त्रिगुणोऽं मनोरमम् ॥ २० ॥

अष्टभूम्युच्छ्रयः श्रीमान् मञ्जर्या च विराजितः ।

उच्छ्रयश्चास्य कर्तव्यो द्विगुणः श्रियमिच्छता ॥ २१ ॥

कार्यं पदभूमिकं चास्य भद्रं भागार्थनिर्गतम् ।

पाकः सिद्धकर्णस्युः(?) यथाप्रितान्यत्रेण च ॥ २२ ॥

कैलान एष कथितो विशेषेण ह्यप्रियः ।

कैलानः ॥

इदानीं नयतोभद्रः प्रासादः पन्किर्नयते ॥ २३ ॥

स ख्यातं पवित्रानि हस्तान् परमः पन्क्याणनः ।

जटमं शालग्रामा च भिन्नयोः कल्पयन्किटाः ॥ २४ ॥

जटोन्मेषश्च कर्णां च यथा मेमंस्तथा स्तुत्याः ।

नर्थय भद्रविरतारः पार्थो भागार्थनिर्गतः ॥ २५ ॥

रथिनेया चतुर्भागा तत्रः सार्थद्विभाषितोः ।

तासां परमपरं द्वयोः भागसामं विभक्तये ॥ २६ ॥

पदभागाद् विभक्तुं पार्थं शिखरं सप्तमं च त्रिभुजं ।

पर्वतवर्जनिर्गमः ख्यातपुत्रता सप्तमं चतुर्भागां ॥ २७ ॥

श्रीशार्थभागसप्तमेवाहणयोः भागसामं चतुर्भागां ।

मुक्तमहातुशारेणशरीरः शैव्याश्च सप्तमं चतुर्भागां ।

अथ येन यथा यथा सप्तमं चतुर्भागां ॥ २८ ॥

मेमोरस्य च पदभागां सप्तमं चतुर्भागां ॥ २९ ॥

सप्तमं पदभागां सप्तमं चतुर्भागां ॥ ३० ॥

सप्तमं चतुर्भागां सप्तमं चतुर्भागां ॥ ३१ ॥

सप्तमं चतुर्भागां सप्तमं चतुर्भागां ॥ ३२ ॥

सप्तमं चतुर्भागां सप्तमं चतुर्भागां ॥ ३३ ॥

सप्तमं चतुर्भागां सप्तमं चतुर्भागां ॥ ३४ ॥

सप्तमं चतुर्भागां सप्तमं चतुर्भागां ॥ ३५ ॥

भद्रं मनोरमैश्चेह शिखरकर्मैश्चिभूयसेन ।

पञ्चध्यासेन सूत्रेण पञ्चकोर्णं समाहितं ॥ ४६ ॥

लतानयो(?)भवेदेपां ललाभिर्गन् प्रकल्पयेत् ।

मिश्रको मिश्रितैर्गैः शूद्रः स्याद् भूमिकान्वितः ॥ ४७ ॥

विमानः ।

नन्दनस्य भवेत् सीमा द्वात्रिंशद्दस्वनिमित्तः ।

अष्टाष्टकविभागेन चतुःषष्टिपदो हि सः ॥ ४८ ॥

भागैश्चतुर्भिर्गर्भोऽस्य शेषं भित्त्यन्धकारिका ।

भद्रं गर्भसमं कार्यं तदूर्ध्वेनास्य निर्गमः ॥ ४९ ॥

द्वौ रथौ पार्श्वतो भूयः सर्वतः कर्णमूत्रतः ।

पञ्चभागोच्छ्रिता जह्वा मेखला भागसंयिता ॥ ५० ॥

पद्(भ?भू)मिरेप भूमिः स्यादेकैका द्वादशांशका ।

रेखास्कन्धाण्डकादीनां कैलासे(न) समाकृतिः ॥ ५१ ॥

नन्दनो नन्दयत्येप समृ(द्धा?द्ध्या)हन्ति चापदः ।

नन्दनः ।

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे पञ्चविं(शति)हस्तके ॥ ५२ ॥

मूत्रपातं ततः कुर्यात् कर्मायतमुखायतम् (?) ।

ततः सीमार्थमूत्रेण सम्यग् वृत्तं समालिखेत् ॥ ५३ ॥

ततस्तदष्टाविंशत्या भजेद् भागैर्यथापदम् ।

निर्मापये(शालार्धेन?त् तदर्धेन शाला)दिक्मूत्रसंश्रिताः ॥ ५४ ॥

तासां तु मध्यगाः कार्या एकैकस्य रथास्त्रयः ।

अन्ये चार्धरथाः कार्याः शालाकर्णसमाश्रिताः ॥ ५५ ॥

भागपट्कोच्छ्रिता जह्वा भागार्धेन तु मेखलाः ।

भागान्तरपत्रं स्याद् भागं चोद्वृत्तमण्डकम् ॥ ५६ ॥

अर्धभागोच्छ्रिता जीवा विष्कम्भेन चतुष्पदाम् (?) ।

शिखरस्योच्छ्रयो भागैरेकादशभिरिष्यते ॥ ५७ ॥

सर्वेषामेव लतिना मात्रिश्च द्विगुणो हि सः (?) ।

विस्ताराद् द्विगुणं सूत्रं स्कन्धाद्यं चापि पद्गुणम् ॥ ५८ ॥

सुत्तानितं(?) समाकृष्य पञ्चकोशं समालिखेत् ।
स पञ्चविंशतिर्हस्ता ज्येष्ठः षोडश मध्यमः ॥ ५९ ॥
कनीयान् द्वादशकरच्छस्यो(?) विजानता ।
ज्येष्ठस्य भागसंख्येयमेतदर्थेन मध्यमः ॥ ६० ॥
मध्यमस्य तथार्थेन कनीयान् भागसंख्यया ।
भागपदकमिता जङ्घा ज्येष्ठस्य परिकीर्तिता ॥ ६१ ॥
सप्तभागोच्छ्रिता सा स्यान्मध्यमे सकनीयसि ।
सर्वेषां लतिनामेप क्षेत्रेण विधिरीरितः ॥ ६२ ॥
स्वस्तिकोऽयं समाख्यातः स्वस्तिश्रेयस्करो नृणाम् ।
इदानीं मुक्ताकोणस्य (मू?ल)क्ष्म ब्रूमः स तु त्रिधा ॥ ६३ ॥
षोडश द्वादशाष्टौ च हस्तसंख्या परस्य च ।
न्येष्ठः षोडशभिर्भागैर्मध्यो द्वादशभिर्भवेत् ॥ ६४ ॥
कनीयानष्टभिः प्रोक्तः प्रासादो मुक्तकोणकः ।
मुक्तकोणस्वस्तिकयोरिदमेवान्तरं भवेत् ॥ ६५ ॥
स्वस्तिको वर्तुलस्तत्र चतुरश्रोऽपरः स्मृतः ।
पञ्चभागोन्नता जङ्घा द्वौ भागौ रथिका भवेत् ॥ ६६ ॥
भागैश्चतुर्भिः कर्तव्या द्वितीया तस्य भूमिका ।
नेपास्त्वर्थाथभागेन विधेयास्त(द्वि?)स्य भूमिकाः ॥ ६७ ॥
विधाय नवधा गर्भस्तेस्त्रयोदशभिर्भवेत् ।
जङ्घापादोनपञ्चाशराद्यैकः षण्णिको(?) भवेत् ॥ ६८ ॥
मुक्तकोणः ।
विन्तारं दशधा कृत्वा पदभागं मध्यमालिखेत् ।
कणी द्विर्भागिको(?) मध्यं चतुर्था विभजेत् पुनः ॥ ६९ ॥
नद्वन्द्वे कृत्वा त्रयो भागिको वामदक्षिणौ ।
अङ्गुलीकरमंश्यात्तद्विधेयो रथनिगमः ॥ ७० ॥
प्राग्शीतैर्विक्रैः स्वष्टैः स्तन्मैः सदभूपकपीभिः(?) ।
एवं गुणसमायुक्तः श्रौतन्मः सुखदो भवेत् ॥ ७१ ॥

यदङ्गुलं त्र्यङ्गुलं वापि चतुरङ्गुलमेव च ।

उदकान्तरकं कार्यं श्रीच/गो नन्दनो?न्ये नन्दने/पिच ॥ ७२ ॥

श्रीचन्तः ॥

विष्णारैर्दशधा भक्तैः पद्मा/गा,मङ्गर्ग भवेत् ।

गर्वनोभद्रचन्मूलकर्णायस्य द्विभागिका ॥ ७३ ॥

उदकान्तरम/न्य?प्य,स्य श्रीचन्मस्येव कल्पयेत् ।

हंसोऽयं कीर्तितःसम्यक् शुभदो लक्षणाञ्चितः ॥ ७४ ॥

हंसः ॥

रुचकोऽप्येवमेव स्यादुदकान्तरवर्जित/ता?त,म् ।

भित्तयश्चतुरंशेन गर्भो व्यागार्धसंमतः ॥ ७५ ॥

रुचकः ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे विभजद् दशभिः पदैः ।

विदध्यादर्थमानारुच्यं तत्र भ्रान्तपनुक्रमात् ॥ ७६ ॥

भद्रस्य च भवेद् भागैश्चतुर्भिः परिविस्तृतम् ।

एकेनैकेन भागेन द्वौ रथौ वामदक्षिणौ ॥ ७७ ॥

द्विभागविस्तृतौ कर्णौ निर्गमः स्यात् करङ्गुलैः ।

वर्धमानः क्रियायुक्तो यशोलक्ष्मीं विवर्धयेत् ॥ ७८ ॥

रुचको वर्धमानो वा श्रीवत्सो हंस एव च ।

य एको रोचते तेषु न्यसेत् तं गरुडे सुश्रीः ॥ ७९ ॥

पक्षावितस्य कर्षव्यां प्रासादार्धविनिर्गमौ ।

नासिकां वैनतेयस्य त्रिगर्भा कारयेदपि ॥ ८० ॥

गरुडः ॥

चतुःपष्टिपदे क्षेत्रे प्रासादं विभजेच्छुभम् ।

क्षेत्रार्धेन च सूत्रेण पृष्ठतो वृत्तमालिखेत् ॥ ८१ ॥

भागैश्चतुर्भिर्जङ्घास्य मेखलाचार्यभागिका ।

पुरतः॥सूरसोयं(?) पृष्ठतश्च गजाकृतिः ॥ ८२ ॥

गजः ॥

चतुःपष्टिपदः सिंहो भद्रं भागचतुष्टयम् ।
 अंशकौ मूलकर्णौ च गर्भः षोडशभिः पदः ॥ ८३ ॥
 विस्तारार्थं भवेज्जङ्घा मेखला पदिका भवेत् ।
 एकैका रथिकाचास्य भवेद् भागत्रयोच्छ्रिता ॥ ८४ ॥
 सर्वतोभद्रवचास्या रेखाग्रीवाण्डकादिकम् ।
 सिंहाक्रान्तैस्तथा भद्रैः प्रासादः सिंह उच्यते ॥ ८५ ॥
 विक्रमार्जवशीलानां प्रासादोऽयं शुभावहः ।

सिंहः ॥

पद्मस्य हस्तसंख्या स्यात् षोडश द्वादशाथवा ॥ ८६ ॥
 वर्तुलः स च कर्तव्यः मूत्रं तु स्वस्तिके यथा ।
 सर्वे रथाः स्मृताः पद्मपत्राकृतिमनोरमाः ॥ ८७ ॥
 उदकान्तरकं कुर्याच्छ्रेयसे नन्दने यथा ।

पद्मकः ॥

स्वस्तिकस्य यथा पूर्वं कथितं मानलक्षणम् ॥ ८८ ॥
 तेनैव षुलक्षलितः सर्वो(?)विदधीत विचक्षणः ।
 यथामूलविभक्तस्तु लतिपु स्वस्तिकादिपु ॥ ८९ ॥
 यथास्कन्धविभागोऽपि रेखामध्यविभागतः ।
 स्वस्तिकाङ्को विधातव्यः शुकना(शो?सो)च्छयाच्छुभः ॥ ९० ॥
 प्रासादानां स भागैः स्यात् सप्तभिर्विहितः श्रिये ।
 विमाने स धरात्रयंशन्यूनः कार्यो विपश्चिता ॥ ९१ ॥
 कैला(सो च?साच्च)तुरंशोना विधे(ना?या) शुकनासिका ।
 सर्वतोभद्रसिंहाख्यौ मेरूणां तु विशेषतः ॥ ९२ ॥
 पद्मभिर्भागैर्विना कार्या शुकनासा विजानता ।
 प्रासादोच्चेन सन्धारो विमानाद्याः प्रकीर्तिताः ॥ ९३ ॥
 विस्तारार्थेन तद्गर्भो यच्छेषं तेन भित्तयः ।
 प्रासाद(सि?)जङ्घोच्छ्रेयेण तुल्यो गर्भतुलोद्भयः ॥ ९४ ॥

१, 'लतिकाः सर्वा' इति स्यात् ।

सभित्तिर्गर्भतुल्यः स्यात् सन्धारेषु तुलोदयः ।
स विधेयः पुनर्व्यासाद् यदि वा किञ्चिदुन्नतः ॥ ९५ ॥
मूलसूत्रं तु दशधा ++ (मश्य?)समालिखेत् ।
गर्भसूत्रं प्रतिष्ठाप्य सिंहकर्णं प्रकल्पयेत् ॥ ९६ ॥
सार्धभागेन सूत्रेण मध्यमस्य समालिखेत् ।
उरो द्विभागतुल्यं तु मस्तकं भागमुच्छ्रितम् ॥ ९७ ॥
अर्धेन त्र्योच्छ्रयस्तस्याः पक्षोच्छ्राया द्विभागिकाः ।
उरो (लेख्य?) च सीमान्ते सूत्रेणच्छन्दमादिशेत् ॥ ९८ ॥
नवधा दशधा चैव सिंहक(र्मा?र्णा?)बुभौ स्मृतौ ।
एकपङ्क्तिस्ततो भागा(?) उदयात् पञ्चभागिकः ॥ ९९ ॥
मूरसेनो द्वितीयस्तु स्वात् समोदयविस्तृतिः ।
उदयात् सार्धविस्तीर्णं सिंहकर्णस्त्रिसंकुला(?) ॥ १०० ॥
कामलान् मल्लकांश्चान्यान् सिंहकर्णात् प्र(लोप?कल्प)येत् ।
प्रासादानां हि सर्वेषां सर्वमेतद् विभूषणम् ॥ १०१ ॥
यस्य यत्रोचितं स्थानं तत् तत्र विनिवेशयेत् ।
निर्मितौ बलभेस्तिर्यक् सूत्रं कुर्वीत सप्तधा ॥ १०२ ॥
पञ्चभागांश्च मुखतस्त्वेनैवांशेन कल्पयेत् ।
मेखलान्तरपत्रे च जम्भाकुम्भकमेव च ॥ १०३ ॥
पञ्चभागोच्छ्रितं कुर्यात् तद्वच्छिखरमुच्छ्रितम् ।
कीर्तितानि विमानानि यान्येव सुरवर्त्मनि ॥ १०४ ॥
तान्येव स्थावरत्वेन प्रासादा इति विश्रुताः ।
महेश्वरस्य कैलासो विष्णोस्तु गरुडाभिधः ॥ १०५ ॥
कार्यः प्रजापतेः पद्मो गणनाथस्य च द्विपः ।
न खल्वेतेऽन्यदेवानां विधातुमुचिताः स्मृताः ॥ १०६ ॥
यस्तु त्रिविष्टपः स स्यात् सर्वदेवनिकेतनः ।
अस्मात् तु येऽन्ये प्रासादाः स्मृतास्तेऽनेकरूपिणः ॥ १०७ ॥
सर्वेषामेव देवानामभेदेन भवन्ति ते ।
जगत्प्यां विस्तरः कार्यः प्रासादोच्छ्रयसंमितः ॥ १०८ ॥

गर्भार्धेनोच्छ्रयस्तस्याः शुभदः परिकीर्तितः ।
 मण्डपस्य षडंशार्धो(?) पञ्चमांशादथ स्मृतः ॥ १०९ ॥
 कर्णप्रासादकाः कार्याः प्रासादस्य त्रिभागतः ।
 पूर्वापरमुखाः कार्या एते याम्योत्तराननाः ॥ ११० ॥
 ऐन्द्रे याम्ये वारुणे च क्रौंचे च यथाक्रमम् ।
 दिग्भागेषु चतुर्ष्वेषु बलभीं विनिवेशयेत् ॥ १११ ॥
 गर्भविस्तारविस्तीर्णा द्वौ त्रिभागौ मुखायताम् ।
 इति बाह्यपरीवारे जङ्घा प्रासादमानतः ॥ ११२ ॥
 तिर्यगायतमारोप्य मूर्त्तं गर्भेण मण्डपे ।
 (गुरुक्षोऽथ?) कर्तव्या गवाक्षस्तम्भसंयुताः ॥ ११३ ॥
 प्रासादविस्तरात् कार्या द्विगुणो मण्डपः सदा ।
 मण्डपस्य (सः?स्व)विस्तारा(द्) जगती द्विगुणा वहिः ॥ ११४ ॥
 कर्णप्रासादकाः कार्याः प्रासादस्यार्धतौऽपि वा ।
 तेषामध्यर्धतः कुर्याद् बलभीनां निवेशनम् ॥ ११५ ॥
 अनेन क्रमयोगेन बाह्याद् बाह्यं सुसंवृतम् ।
 य(दा?था) हि शोभते राजा केयूराङ्गदकुण्डलैः ॥ ११६ ॥
 तथा प्रासादराजोऽयं शोभते भूषणैर्निजैः ।
 ध्वास्यार्द्धास्यातिसौम्यस्य(?) श्रीकीर्तिविजयावहः ॥ ११७ ॥
 अनेन विधिना न्यस्तः प्रासादः स्यात् सदा नृणाम् ।
 आदित्यं पूर्वतो न्यस्येत् कुमारं पूर्वदक्षिणे ॥ ११८ ॥
 दक्षिणे मानुदे(वे?वां)स्तु गजास्यं दक्षिणोपरि ।
 विन्यसेद् वारुणे गौरीं वायव्येऽपि च चण्डिकाम् ॥ ११९ ॥
 विष्णुं कुबेरदिग्भागे तथैशान्यां महेश्वरम् ।
 अन्येषामपि देवानां कथ्यते तु क्रमोऽधुना ॥ १२० ॥
 तत्रैशान्यां दिशि न्यस्येदीयानं लोकनायकम् ।
 दानवानां निहन्तारं पूर्वस्यामपि वासवम् ॥ १२१ ॥
 वैश्वानरं तथाप्रेत्यां धर्मराजं च दक्षिणे ।
 नैऋत्यां निकृतिं न्यस्येत् प्रतीच्यां तु प्रचेतसम् ॥ १२२ ॥

वायुं वायव्यदिग्भागे कुवेरमपि चोत्तरे ।
 अष्टौ ह्येते महात्मानो लोकपालाः प्रकीर्तिताः ॥ १२३ ॥
 पालयन्ति जगत् सर्वं स्वस्वस्थाने प्रतिष्ठिताः ।
 पुर(कर्कट?कर्कट)दुर्गेषु ग्रामेषु नगरेषु च ॥ १२४ ॥
 क्रमेणानेन विन्यस्ताः स्युः प्रजानां सुखावहाः ।
 न यत्र देवतावाधस्तत्र द्वारं प्रकल्पयेत् ॥ १२५ ॥
 प्रासादस्यानुसारेण भवेद् द्वारं शुभावहम् ।
 अथातः प्रोच्यते सम्यग् द्वारमानसनुक्रमात् ॥ १२६ ॥
 ज्येष्ठमध्यकनिष्ठानां द्रव्यं स्तम्भानुसङ्गतम् ।
 एकहस्ते भवेद् द्वारं प्रासादे षोडशाङ्गुलम् ॥ १२७ ॥
 द्विकरे द्विगुणं तत् स्यात् त्रिकरे द्विकरं शुभम् ।
 चतुष्करे चतुःषष्टिरङ्गुलानि प्रशस्यते ॥ १२८ ॥
 अत ऊर्ध्वं प्रतिकरं त्र्यङ्गुला वृद्धिरिष्यते ।
 द्वारोदयकरंस्तुल्यान्यङ्गुलानि नियोजयेत् ॥ १२९ ॥
 (षोडशान्यालार्थ?) ध्रुवके चतुर(र?)ङ्गुले ।
 विस्तारो द्विगुणस्तस्य स्तम्भपिण्डं न एव हि ॥ १३० ॥
 एकद्वित्रिचतुष्पञ्चपदसप्तककरावधि ।
 द्वारविस्तारभागेन स्तम्भः सम्यग विधीयते ॥ १३१ ॥
 चतुर्भागैर्न कर्तव्या सीमास्तम्भः प्रमाणतः(?) ।
 तथा स्तम्भस्य बाहुल्याच्चतुर्भागविभागविना (?) ॥ १३२ ॥
 +भागौ तत्र कर्तव्यौ हीरप्रदणमुच्छ्रितम् ।
 भागत्रयेण कर्तव्यः पट्टस्य च समुच्छ्रितः ॥ १३३ ॥
 भागेनैकेन नीस्यात्प्यविरतारं भद्रिदागरच्यक्तिम्(?) ॥
 पट्टहस्ते विशादव्यसङ्गुलव्यवहितम् ॥ १३४ ॥
 + उ + + + स्तारः स्तम्भहृत्तः प्रशस्यते ।
 एकैकमस्युर्ध्वं (गर्भ)पट्टाभ्यामसिद्धमन्तः ॥ १३५ ॥
 पट्टस्य विस्तारः(?)शारेच्चतुर्भागविभाजितः ।
 भागेनैकेन चोत्तरेधस्तुलाशान्पानिष्यते ॥ १३६ ॥

तुलाधारणकोत्सेधाच्चतुर्भागविभाजितात् ।
 भागमेकं परित्यज्य पिण्डस्तस्य विधीयते ॥ १३७ ॥
 मात्राहीना भवेन्मेढ्र्यां तावन्न्यस्येच्छलान्तले (?) ।
 द्वौ भागौ मूलभागेन जयन्तीपिण्डविस्तरौ ॥ १३८ ॥
 इति हीरग्रहादीनां समासालक्ष्मकीर्तनम् ।
 पञ्चांशाभ्यधिकं स्तम्भविस्तारस्थेन कुम्भिका (?) ॥ १३९ ॥
 कुर्वीत स्तम्भतः सार्धा गर्ग(?)कुम्भस्य विस्तृतीः ।
 अथवा स्तम्भकर्णेन स्तम्भाग्रद्विगुणा क्वचित् ॥ १४० ॥
 पादोनस्तम्भविस्तारादग्रकुम्भे समुच्छ्रितः ।
 स्तम्भविस्तारकर्णाद् वा यद्वा पिण्डोऽग्रकुम्भके ॥ १४१ ॥
 तस्य भागान् प्रवक्ष्यामो यथाकुम्भं स युज्यते ।
 विभक्तोऽत्र त्रिधा पिण्डो भागेनैकेन पुत्तली ॥ १४२ ॥
 चतुर्भिस्तस्य मध्यस्य (द्वयं?) पद्मं समालिखेत् ।
 उच्छाले पञ्चधा भक्ते त्रिभिरावर्तनं ++ ॥ १४३ ॥
 वर्तनं योपव्येत्(?) किञ्चिन्न च खल्वं समाचरेत् ।
 वर्तने कुम्भकुम्भौ तु मूत्रं दत्त्वा सुतानितम् ॥ १४४ ॥
 पद्मनालासमा स स्यान्न भवेत् पङ्क्तिवर्जिता (?) ।
 नवाधोच्चाहा(?)लके भक्ते वीरगण्डस्तु भागिकः ॥ १४५ ॥
 एकेनैकेन भागेन विधेया पट्टिकट्टिका ।
 (ध्वसंछाकाल?)कर्तव्यं भागद्वितयसंमितम् ॥ १४६ ॥
 तलकुम्भकपिण्डं तु पञ्चधा प्रविभाजयेत् ।
 भागेनैकेन पद्मं स्याद् भागेन कलशं लिखेत् ॥ १४७ ॥
 द्वाभ्यां समालिखेत् कुम्भं भागेनैकेन पट्टिकाम् ।
 वर्तमाना चत्रा(?)कार्या शोभा स्यादस्य यावतः ॥ १४८ ॥
 एष कुम्भक्रमः प्रोक्तः स्तम्भपादे व्यवस्थितः ।
 तलपट्टस्य पिण्डस्तु भागपट्टसमो भवेत् ॥ १४९ ॥
 द्रव्येष्वत्र हि सर्वेषु सम्यक् शोभा चित्रक्षिता ।
 न्यूनातिरिक्तमप्यस्मान्मानेष्वङ्गुलमाचरेत् ॥ १५० ॥

द्वारामुदयविस्तारो द्रव्यसंस्थानमेव च ।

पूर्वमेव यथोद्दिष्टं (यत्)था सर्वमनुस्मरेत् ॥ १५१ ॥

पिण्डेन त मूलशाखाया द्वितीया प विधीयते ।

सपायते सपादन प्रत्ययदेनाथ सार्धेनरूपशाखा प्रशस्यते(?) ॥ १५२ ॥

अर्धेन मूलशाखाः समा चैव बाह्यशाखा शाखां प्रकल्पयेत्(?) ।

ऊर्ध्वपञ्चमशाखाया (दु?)सप्तमी नवमी च सा ॥ १५३ ॥

रूपशा++++स्यान्न न्यूना नाधिक्रापि च ।

विस्तरार्थं तु कर्तव्यः सर्वसामेव निर्गमः ॥ १५४ ॥

शाखाविस्तारविस्तीर्णा(नु?न्यु)त्तरङ्गानि कारयेत् ।

सार्धेन ध्रुवशाखानां पिण्डेनोद्दुम्बरोदयः ॥ १५५ ॥

उद्दुम्बरस्य पिण्डेन सिंहवक्राणि कारयेत् ।

तदर्थं विलसन्धिः स्यात् तत्समा भूमिरङ्गिका ॥ १५६ ॥

तलन्याससमः पट्टः पिण्डपूर्वव्यवस्थितः ।

कूटाकारैर्विचित्रैश्च शोभनै रूपकर्मभिः ॥ १५७ ॥

पत्रजातैरनेकैश्च कण्ठं कुर्याद् यथेप्सितम् ।

पाचकः कटुतीक्ष्णाद्यैरनुगाररसैर्यथा ॥ १५८ ॥

अन्वीक्ष्य विपचेत् तद्वत् स्थपतिः सर्वमाचरेत् ।

यदुक्तं यदनुक्तं च तत् समग्रमपि स्फुटम् ॥ १५९ ॥

(युक्ता)युक्तं समालोच्य यथाशोभं समाचरेत् ।

आरभ्य मेरोरिति षोडशैते प्रासादमुच्यन्ते कथिता यथावत् ।

संक्षेपतो लक्ष्य तथा जगत्यां द्वारादिसन्वन्धि च(द्वा?)दारमानम् ॥ १६० १/२ ॥

इति महाराजाधिराजधीमोलदेवविरचिते समराजगणेशधारावचनादि चामुद्राम्ने

मेर्वादिषोडशप्रासादलक्षणजगतीलक्षणद्वारादिकला नान

(पञ्चमोऽपञ्चपञ्चाशो)ऽध्यायः ॥

रुचका(द्य)ष्टादशैषां चतुरश्राः प्रकीर्तिताः ।
 भवश्च विभवश्चैव चतुरश्रायतोऽथवा ॥ १३ ॥
 पद्मो मालाधरश्चैव वृत्तावेतावुदाहृतौ ।
 मलयो मकरारख्योऽथ द्वौ तु वृत्तायताविमौ ॥ १४ ॥
 वज्रकः स्वस्तिकः शङ्कुरित्थमष्टाश्रयस्त्रयः ।
 ललिताः कथिता ह्येते म्रूमोऽन्यान् मिश्रकानथ ॥ १५ ॥
 सुभद्रो योक्त्रिदश्रु(?) सर्वतोभद्र एव च ।
 सिंहकेसरिसंज्ञोऽन्यश्चित्रकूटो धराधरः ॥ १६ ॥
 तिलकाख्यः स्वतिलकस्तथा सर्वाङ्गसुन्दरः ।
 नवामी मिश्रकाः प्रोक्ताः कथ्यन्ते (साधकारिकाः?) ॥ १७ ॥
 केसरी सर्वतोभद्रो नन्दनो नन्दिशालकः ।
 नन्दीशो मन्दिरारख्यश्च श्रीवृक्षश्चामृतोद्भवः ॥ १८ ॥
 हिमवान् हेमकूटश्च कैलासः पृथिवीजयः ।
 इन्द्रनीलो महानीलो भूधरो रत्नकूटकः ॥ १९ ॥
 वैडूर्यः पद्मरागश्च वज्रको मुकुटोत्कटः ।
 ऐरावतो राजहंसो गरुडो वृषभस्तथा ॥ २० ॥
 मेरुः प्रासादराजश्च देवानामालयो हि सः ।
 +संयोगे तु संधारान् कथयामो यथाविधि ॥ २१ ॥
 लतात्रिपुष्करारख्यां च पञ्चवक्रश्चतुर्मुखः ।
 नवात्मकश्च निर्यूढः प्रासादाः पञ्च संज्ञिताः ॥ २२ ॥
 आद्यः पञ्चाण्डकः कार्यः प्रासादः केसरीति यः ।
 सर्वतोभद्रको यस्तु विधेयः स नवाण्डकः ॥ २३ ॥
 त्रयोदशाण्डकस्तु स्यान्नन्दनो नाम यो भवेत् ।
 नन्दिशालस्तु यः प्रोक्तः स स्यात् सप्तदशाण्डकः ॥ २४ ॥
 अण्डकैरेकविंशत्या नन्दीशः परिवारितः ।
 पञ्चविंशाण्डकोपेतं मन्दरं कारयेद् वृषः ॥ २५ ॥
 श्रीवृक्षः शस्यते चैतेष्वेकोनविंशताण्डकैः ।
 स्यात् त्रयस्त्रिंशताण्डकस्तु प्रासादो म्रुमृतोद्भवः ॥ २६ ॥

हंसस्यैव यदा कुर्याद् भद्रस्यान्ते जलान्तरम् ।

तदा हंसोद्भवो नाम प्रासादः परिकीर्तितः ॥ ५३ ॥

हंसोद्भवः ॥

रथान्तकर्णयोश्चैवं यदा स्यादुदकान्तरम् ।

प्रतिहंसस्तदा प्रोक्तः प्रासादोऽयं मनोरमः ॥ ५४ ॥

प्रतिहंसः ॥

प्राग्ग्रीवा रुचकस्यैव सीमाविस्तारविस्तृताः ।

निर्गता भद्रमानेन तदा नन्दः स उच्यते ॥ ५५ ॥

नन्दः ॥

प्राग्ग्रीवैर्भद्रमानेन नन्दो यदि विभूष्यते ।

निर्गतैर्भागमानेन चतुरश्रैः समन्ततः ॥ ५६ ॥

प्राग्ग्रीवः पुरतः कार्यः एतम्भद्रयविभूषितः ।

नन्द्यावर्तस्तदा प्रोक्तः प्रासादो विजयावहः ॥ ५७ ॥

नन्द्यावर्तः ॥

नन्द्यावर्ते यदा कुर्याद् भद्रान्ते जलनिर्गमम् ।

धराधरस्तदा ज्ञेयः प्रासादो भुवनोत्तमः ॥ ५८ ॥

धराधरः ॥

दशधा भाजितं क्षेत्रं चतुरश्रं समन्ततः ।

भागद्वयेन कर्णः स्याद् भ्रंजच्छेषं च सप्तधा ॥ ५९ ॥

भागत्रयेण रथको मध्यमोऽस्य विधीयते ।

द्वाभ्यां द्वाभ्यां तु भागाभ्यां रथको वामदक्षिणौ ॥ ६० ॥

भागस्यैव त्रिभागेन भवेदस्य विनिर्गमः ।

कथितो वर्धमानोऽयं

वर्धमानः ॥

गिरिकूटोऽयं कथ्यते ॥ ६१ ॥

वर्धमानस्य भद्रस्थमध्यमूत्रेण योजयेत् ।

कर्णिचूवं नदग्राभ्यां न्यस्येत् मूत्रचतुष्टयम् ॥ ६२ ॥

तदुत्पन्नैस्तु भद्रस्थकर्णैः स्याच्चित्रकूटकः ।

गिरिकूटः ॥

कर्णान्ते च रथान्ते च यदि स्यात् सलिलान्तरम् ॥ ६३ ॥

वर्धमानस्य भवति श्रीवत्सः स्यात् तदा शुभः ।

श्रीवत्सः ॥

गिरिकूटस्य संस्थाने तद्रूपे विनिवेशिते ॥ ६४ ॥

कर्णा (न्) प्रतिरथेष्वस्य निखिलेष्वपि योजयेत् ।

प्राग्बत् प्रतिरथोद्भूतमूत्राभ्यां कर्णवर्त्मना ॥ ६५ ॥

त्रिकूटाख्यस्तद्वैव स्यात् प्रासादो देवतालयः ।

त्रिकूटः ॥

त्रिकूटस्यैव संस्थाने भद्रकर्णपरिच्युते ॥ ६६ ॥

स्वरूपभद्रसंस्थाने मुक्तकोणः प्रजायते ।

मुक्तकोणः ॥

चतुर्भिः (विं) स्तृतेर्भागैः क्षेत्रे पञ्चभिरायते ॥ ६७ ॥

भागेन भित्तिः कर्तव्या शेषं गर्भगृहं भवेत् ।

अस्य क्षेत्रार्धमूत्रेण पृष्ठतो वृत्तमालिखेत् ॥ ६८ ॥

पुरतः शूरसेनोऽस्य पृष्ठतोऽपि गजाकृतिः ।

प्रासादोऽयं गजो नाम गणेशस्य विधीयते ॥ ६९ ॥

गजः ॥

वर्धमानस्य संस्थाने गरुडं विनिवेशयेत् ।

तस्य पक्षां विधातव्यां प्राग्मादार्धेन निर्गता ॥ ७० ॥

पक्षयोस्तु दशस्तस्य (?) वर्धमानं विभाजयेत् ।

जानिशुद्धा रथाः कार्याः पार्श्वयोर्गण्डो भवेत् ॥ ७१ ॥

गरुडः ॥

वर्धमानस्य संस्थाने प्राग्बत् कर्णां नियोजयेत् ।

हिभागा रथिका द्वार्या शेषं भद्रं प्रकल्पयेत् ॥ ७२ ॥

जङ्घास्य पञ्चभिर्भागैः पीठं चास्य तदर्धतः ।
 विरण्ड्यर्धाशिकाद्भिश्च(?) भागश्चान्तरपत्रयोः ॥ ७३ ॥
 तयोत्सेधत्रिभागैश्च नवभिः शिखरोच्छ्रितः ।
 कुम्भश्चामलसारश्च सिंहऽ(स्मिद्रा?स्मिन् भा)गमा(ग?न)तः ॥ ७४ ॥
 सिंहः ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे चतुर्भिर्भाजितं पदं ।
 सीमाविस्तारमानेन रथांस्तस्य प्रकल्पयेत् ॥ ७५ ॥
 पादेनैकेन निर्यातान् दिक्षु सर्वास्वनुक्रमात् ।
 प्राग्ग्रीवान् पुनरस्यैव भागद्वितयविस्तृतान् ॥ ७६ ॥
 पदपद्भागनिर्यातान् विदधीत चतुर्दिशम् ।
 चतुर्भागायतो गर्भः कार्योऽस्य द्वयंशविस्तृतः ॥ ७७ ॥
 जङ्घोत्सेधश्च पीठं च यथा भद्रे तथा भवेत् ।
 प्रासादो भवसंज्ञोऽयं देवतात्रितयाश्रयः ॥ ७८ ॥
 भवः ॥

भवस्यैव यदा कुर्याद् रथान् सजलनिर्गमान् ।
 द्विभङ्गं संश्रयोऽन्यः सा(?)प्रासादो विभवाभिधः ॥ ७९ ॥
 (त्रिलिङ्गः?) ॥

अष्टधा भाजिते क्षेत्रे चतुरश्रे समन्ततः ।
 विदध्याद् गर्भसूत्राणि कर्णसूत्राणि च क्रमात् ॥ ८० ॥
 दिक्सूत्रेष्वखिलेष्वस्य सीमार्थं पदमेव च ।
 पदस्याष्टादशो भागस्तद्योगाद् वृत्तमालिखेत् ॥ ८१ ॥
 विस्तारार्थं भवेद् गर्भो गर्भार्धास्तस्य भित्तयः ।
 तद्वृत्तवाह्यसूत्रेण भागान् षोडश कारयेत् ॥ ८२ ॥
 दिक्सूत्रकर्णसूत्रेषु रथकान् सम्प्रकल्पयेत् ।
 द्विभागा रथिका कार्या सलिलान्तरभूषिता ॥ ८३ ॥
 सलिलान्तरमेतस्य श्रीवत्सस्यैव कल्पयेत् ।
 जङ्घोत्सेधे च पीठे च शिखरं(?) च तथा भवेत् ॥ ८४ ॥

मालाधारः स विज्ञेयः सवाह्याभ्यन्तरः समः ।

मालाधरः ॥

मालाधरस्य संस्थाने यत् क्षेत्रं पूर्ववत् स्थितम् ॥ ८५ ॥

उदकान्तरविच्छिन्नं पद्मं तत्र निवेशयेत् ।

तथाग्रे कारयेत् कर्णव्यासार्धेन विनिर्गमान् ॥ ८६ ॥

पद्मपत्रनिभाकाराञ् जतिशुद्धान् सलक्षणान् ।

पद्मः ॥

पद्मभागानायते क्षेत्रे विस्तारे चतुरश्रके ॥ ८७ ॥

द्विभागाद् विपुलो गर्भश्चतुर्भागायतो भवेत् ।

गर्भव्यासमितं सूत्रं पदपादसमन्वितम् ॥ ८८ ॥

वृत्तार्धं भ्रमयेत् तेन दक्षिणेनोत्तरेण च ।

सीमाविस्तारसूत्रेण पदपादयुतेन च ॥ ८९ ॥

पुरतः पृष्ठतश्चापि तद्दत्तमनुवर्तयेत् ।

वृत्तक्षेत्रमिदं तस्य भागेद्वादशभिर्भवेत् ॥ ९० ॥

द्विभागो भद्रविस्तारो भागिकी भागविस्तृतिः ।

भद्राणां च स्थान्मध्ये भागेनैकेन विस्तृता(?) ॥ ९१ ॥

उदकान्तरकं चात्र मालाधरवदाचरेत् ।

वृत्तायतस्तु कर्तव्यः प्रासादो मलयाभिधः ॥ ९२ ॥

मलयः ।

मलयस्यैव कर्णेषु रथिकान् यदि कल्पयेत् ।

उदकान्तरविच्छिन्नान् पदपद्मभागनिर्गतान् ॥ ९३ ॥

पीठोत्सेधश्च जङ्घा च शिखरं चात्र यद् भवेत् ।

एकमात्रासमायुक्तं लतिना ते(?) प्रतीयते ॥ ९४ ॥

नान्तद्विधायते त्र्यंशशाणां चतुरश्राणां कोणेष्वर्धपरिभ्रवान्(?) ।

अष्टार्थं जायते यत्र वाजाग्रमपि तां नरम् (?) ॥ ९५ ॥

अष्टार्थं चतुरो भागान् विद्वद्भ्याम् नत्र भागिकी ।

भित्तिविधेया भागाभ्यां भवेद् गर्भगृहं तवः ॥ ९६ ॥

रथिकासु विधेयोऽस्य परितो जलनिर्गमः ।

वज्रको नाम कथितः प्रासादः शुभलक्षणः ॥ ९७ ॥

वज्रकः ॥

वज्रकस्यैव संस्थाने सलिलान्तरवर्जिते ।

चत्वारिंशद्भागभक्ते रथिकाः स्युक्तिभागिकाः ॥ ९८ ॥

अष्टासु दिक्षु कर्णाश्च भवन्त्यस्य द्विभागिकाः ।

कर्णैः पद्मकतुल्योऽयं स्वस्तिकः समुदाहृतः ॥ ९९ ॥

स्वस्तिकः ॥

वज्रकस्यैव संस्थाने ये रथाः प्राक् प्रदर्शिताः ।

एकैकस्तेषु कर्तव्यश्चतुरश्वतुरोऽशकान् ॥ १०० ॥

भागद्वयेन मध्यः स्याद् रथकोशाद् विनिर्गतः ।

शङ्कुर्नामायमुद्दिष्टः प्रासादोऽष्टाभिरश्रिभिः ॥ १०१ ॥

शङ्कुः ॥

चतुरश्राः षोडश प्रोक्ताश्चतुरश्रायतद्वयम् (?) ।

वृत्तवृत्तायतौ द्वौ द्वावुक्ताश्चाष्टाश्रयस्त्रयः ॥ १०२ ॥

पञ्चविंशतिरित्येते प्रासादा ललिताः स्मृताः ।

मिश्रकाणामथ ऋमो लक्षणानि यथाक्रमम् ॥ १०३ ॥

भद्रकस्यैव संस्थाने भद्रे शृङ्गं यदा भवेत् ।

सुभद्रो नाम(?)संज्ञोऽयं कर्णकूटैः करीचसौ(?) ॥ १०४ ॥

पूर्वोक्तस्य यदा शृङ्गं भद्रं केसरिणो भवेत् ।

लताख्योक्तं(?) तदा स स्यात् सर्वतोभद्रसंज्ञितः ॥ १०५ ॥

भद्रे शृङ्गं परित्यज्य सिंहं तत्रैव कारयेत् ।

मिश्रयोगे तयोर्मिश्रः स भवेत् सिंहकेसरी ॥ १०६ ॥

श्रीवत्सस्यैव संस्थाने भद्रे कूटं निवेशयेत् ।

कर्णे तेनैव योगेन प्रतिशृङ्गोपशोभितम् ॥ १०७ ॥

कलशैः सप्तदशभिः पद्मघण्टामलैः सह ।

स च त्रिकूट इत्युक्तो विचित्रशिखरान्वितः ॥ १०८ ॥

कुर्याद् भागेन भागेन कुम्भं चामलसारकम् ।
भागार्धेन प्रकुर्वीत तदूर्ध्वं वीजपूरकम् ॥ १२२ ॥
प्रासादः कैसरी नाम सर्वतः सन्ततिप्रियः ।

कैसरी ॥

चतुरश्रं समं कृत्वा भूमिभागं विचक्षणः ॥ १२३ ॥

प्रासा(दोऽद)व्यासतः कुर्याज्जगतीं द्विगुणामिह ।
विदध्याज्जागतीपीठं प्रासादार्धसमुच्छ्रितम् ॥ १२४ ॥

पीठस्योपरि संस्थाप्य प्रासादं विभजेत् ततः ।
सर्वतोभद्रसंस्थानं हस्तसंख्या यदा भवेत् ॥ १२५ ॥

हस्तैः सप्तत्रिंशता तु ज्येष्ठः सार्धे(?) उदाहृतः ।
मध्यमः सप्तविंशत्या प्रासादः स्यात् कलाधिकैः ॥ १२६ ॥

कनीयान् पञ्चदशभिः प्रासादः समुदीरितः ।
तलच्छन्दो यदा ह्येषां तथाचैवोर्ध्वतो गतिम् ॥ १२७ ॥

ज्येष्ठमध्यकनिष्ठानां तथा सम्यङ् निगद्यते ।
चतुरश्रीकृते क्षेत्रे शतमूलविभाजिते ॥ १२८ ॥

न्यसेत् तन्मध्यतो गर्भं चतुर्वर्गपदान्वितम् ।
गर्भपादेन भित्तिः स्यात् तद्वदेवान्धकारिका ॥ १२९ ॥

बाह्यभित्तिस्त(थवाथैव) स्याद् दशशास्युर्द्विभागिका(?) ।
प्रतिवर्णपदांशेन(?) षोडशेन जलान्तरम् ॥ १३० ॥

शेषं भद्रं(?)प्रकर्तव्यं गर्भार्धेन विनिर्गतम् ।
भागार्धं क्षोभयेत् पार्श्वे निर्गमं च तथाचरेत् ॥ १३१ ॥

शेषः स्याद् भद्रविस्तारः पञ्चभागायतस्तथा ।
पीठं तस्यैव कर्तव्यं सार्धद्वयसमुच्छ्रितम् ॥ १३२ ॥

द्विगुणां च तथा जङ्गामुच्छ्रायेणास्य कल्पयेत् ।
मेखलामर्धभागेन भागेनान्त(र)पत्रकम् ॥ १३३ ॥

प्रथमा रथिका तत्र कार्या भागत्रयोच्छ्रिता ।
द्वितीया रथिका या सा सार्धभागेन चोच्छ्रिता ॥ १३४ ॥

भागे भागेऽन्तरं कार्यमुपर्युपरि चोभयोः ।
 पद्भागान् विस्तृतं कुर्याच्छिखरं सप्तमोच्छ्रितम् ॥ १३५ ॥
 एवं भूमिभिरष्टाभिः कुर्यादेनं विचक्षणः ।
 जलनिर्गमविच्छिन्ना रथाः प्रतिरथास्तथा ॥ १३६ ॥
 चतुर्गुणैः पृथक्स्त्रंःत्रैः) पन्नकोलं समालिखेत् ।
 मञ्जरी ललिता कार्या नीलोत्पलदलाकृतिः ॥ १३७ ॥
 ग्रीवा चैकार्धभागेन (भागेना)यलसारकम् ।
 पन्नशीर्षं च कर्तव्यं ग्रीवामानेन धीमता ॥ १३८ ॥
 सार्धभागेन सोष्णीपः पन्नस्योपरिकुम्भकः ।
 सर्वतोभद्र इत्युक्तो रेपानानाम्(?) एष शिखरः ॥ १३९ ॥
 विधाय सर्वतोभद्रं देवानामालयं शुभम् ।
 लभते परमं लोकं दिवि स्वच्छन्दभाषितम् ॥ १४० ॥
 सर्वतोभद्रः ॥
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे दशधा प्रथिभाजिते ।
 व्यासपादेन गर्भं(स्तस्यात् त)दर्शान्धकारिणा ॥ १४१ ॥
 जङ्घा स्कन्धश्च तं कर्णं(?) भद्रं चाप्यस्य यद् भवेत् ।
 सर्वतोभद्रवत् सर्वं तद् विधेयं चतुर्दिशम् ॥ १४२ ॥
 तस्य भद्राणि सर्वाणि भित्तिभिः परिवेष्टयेत् ।
 भद्रं भद्रे पुनश्चास्य वर्षमानं निवेशयेत् ॥ १४३ ॥
 पञ्चभागास्तथा सार्धाः शिखरयोदयो भवेत् ।
 सर्वतोभद्रकाकारा रथिकाश्चात्र कारयेत् ॥ १४४ ॥
 कुर्यात् पटंशा विस्तीर्णशिखरं प्रपञ्चोच्छ्रितम्(?) ।
 सर्वतोभद्रसंस्थानादेषां चास्वन्नं योजयेत् (?) ॥ १४५ ॥
 ग्रीवा चामलमारं च कुम्भश्चापि तथा भवेत् ।
 मानादो नन्दनो नाम कर्तव्यो देवतलयः ॥ १४६ ॥
 कृतेऽग्निम् नन्दति रथानी इतिवापि च निवेशेत् ।
 नन्दनः ॥
 भूक्ते हादगया क्षेत्रे चतुरश्रीकृते ततः ॥ १४७ ॥

समवर्गपदो गर्भो भित्त्या सह विधीयते ।
 सपादपादिका भित्तिगर्भे(?)कुर्याद् विचक्षणः ॥ १४८ ॥
 वाद्यभित्तिश्च तद्वन् स्वान् तद्वचाप्यन्धकारिका ।
 पीठोच्छ्रयस्तथा जङ्घा कर्णेषु रथिकाश्च याः ॥ १४९ ॥
 सर्वतोभद्रकाकारान्मूलकर्णाश्च योजयेत् ।
 एकैकां रथिकां चान्यां विन्यसेत् पञ्चयोर्द्वयोः । १५० ॥
 चतस्रो रथिकाश्चैवं कर्णं कर्णं निवेजयेत् ।
 शेषो भद्रस्य विस्तारः स्वाविस्ताराधेनिगेतः ॥ १५१ ॥
 भूपयेत् सिद्धकर्णेश्च भद्रव्याभार्धिमृत्तैः ।
 विन्यसेच्छिखरं तत्र भार्गविसृत्तमष्टभिः ॥ १५२ ॥
 चतुर्गुणेन सूत्रेण वेणुकोशं समाहित्वेत् ।
 मन्त्रकोशान्तरं चास्य त्रिभिर्भार्गवैर्भाजयेत् ॥ १५३ ॥
 ग्रीवायै भार्गवकोशमेवा द्वा? भार्गवनामलमारकः ।
 पञ्चशर्पि तथार्धेन भार्गवेन कलशः स्मृतः ॥ १५४ ॥
 त्रिसादा रथिकास्मिन् उच्छ्रायेण प्रकीर्तिताः ।
 सर्वतोभद्रकाकारो नन्दिशालः प्रकीर्तितः ॥ १५५ ॥
 नन्दिशालः ॥
 नन्दिशालस्य संस्थानं तद्वै नमवस्थितं ।
 तस्य भद्राणि सर्वाणि विनिर्त्तितः परिशेष्येत् ॥ १५६ ॥
 तद्रे भद्रे तस्य तस्य वर्धमानं निवेशयेत् ।
 ज्येष्ठश्रांस्यथा भागान् स्याद् भद्रशिवसोच्छ्रयः ॥ १५७ ॥
 श्रेष्ठोच्छ्रायं च जङ्घां च तथास्य शिखरसोच्छ्रयम् ।
 नन्दिशालमपाकारं समन्त्रं प्रकल्पयेत् ॥ १५८ ॥
 शार्ङ्गोच्छ्रयं सर्वदेवानां प्रासादां नन्दिवर्धनः ।
 नन्दिवर्धनः ॥
 नन्दिवर्धनसंस्थानं पूर्ववत् प्रकल्पयेत् ॥ १५९ ॥
 उच्छ्रायः कर्णसोच्छ्रायं ये तत्र रथिका विधीयते ।
 नन्दिशालस्य कर्णस्य शिखरं सप्तश्रांसोच्छ्रयम् ॥ १६० ॥

पडंशविस्तृतं चैतत् सार्धपद्मसमुच्चिद्रुतम् ।
चतुर्गुणेन सूत्रेण वेणुकोशं समालिखेत् ॥ १६१ ॥
ग्रीवा चामलसारं च कुम्भकस्याश्रयो भवेत् ।
कार्यः न सर्वतोभद्रमंस्थान इति निश्चयः ॥ १६२ ॥
मन्दिरोऽयमिति ज्ञ्यातः प्रामादः क्षितिभूषणः ।

मन्दिरः ॥

नन्दिवर्धनसंस्थाने तद्रूपसमवस्थिते ॥ १६३ ॥
दिक्सूत्रे कर्णसूत्रे च (कुम्भ?) रथिकाष्टकम् ।
रथिका अपि चैताः स्युद्धिभागायतविस्तृताः ॥ १६४ ॥
पद्भागविस्तृतिश्चास्य शेषं शिखरमाचरेत् ।
उच्छ्रयश्चास्य कर्तव्यो भागानां सार्धसप्तकम् ॥ १६५ ॥
पद्भागः स्कन्धविस्तारो ग्रीवा चास्य द्विभागिका ।
रेखा चामलसारं च कलशश्चात्र यो भवेत् ॥ १६६ ॥
सर्वतोभद्रवन् स स्याच्छ्रीःक्षोऽयमुदाहृतः ।

श्रीवृक्षः ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे चतुर्दशविभाजिते ॥ १६७ ॥
द्विभागविस्तृताः कर्णा रथिकास्तेषु कारयेत् ।
उदकान्तरविच्छिन्ना मूलवर्णेषु योजयेत् ॥ १६८ ॥
शेषं भद्रस्य विस्तारस्तदर्धमपि निर्गमः ।
सर्वतोभद्रमप्यस्य भद्रे भद्रे विभज्य च ॥ १६९ ॥
पूर्वैर्गुणैस्तु संयुक्ते चतुर्दिक्षु निवेशयेत् ।
तस्य गर्भस्तु कर्तव्यः (पदाष्टक?)विस्तृतः ॥ १७० ॥
सार्धभागप्रमाणः स्याद् भित्तिर्गर्भस्य मध्यतः ।
वागभित्तिस्तर्धवान्य शेषं अषणमाचरेत् ॥ १७१ ॥
जह्नापद्भागमुत्सेधान् पीठं तस्य तदर्थतः ।
वरुण्डी(ना?)मन्तरं पद्मं भागैश्चैतन् कारयेत् ॥ १७२ ॥
रथिकाद्वादशविस्तारानुषुपरि योजिता(?) ।
निस्रस्तित्तो निवे(नाः?)ऽय्याः, स्युः वर्णं वर्णं(त?)थाक्रमम् ॥ १७३ ॥

प्रथमा रथिकास्तस्य कुर्याद् भागत्रयोच्छ्रिताः ।
 कुर्याद्दु(पद्यु)पर्यन्याः पादपादविचजिताः ॥ १७४ ॥
 अष्टभिविस्तृतं भावेः सार्धैर्नेवभिरुच्छ्रितम् ।
 सचेतोमङ्काकारं विस्तरं तस्य कारयेत् ॥ १७५ ॥
 प्रामादोऽयं विमानान्वयः शक्यातशाम्तोद्भवः ।

विमान ॥

विमन्नायामविस्तरं विमन्तं विभाजयेत् ॥ १७६ ॥
 चतुर्धा रथिकाम्बत कर्णं कर्णं निवेशयेत् ।
 विभाजयिष्कुताः सर्वा उपर्यपरि कारयेत् ॥ १७७ ॥
 प्रथमा रथिका तस्य स्वात्त भागत्रयोच्छ्रिता ।
 पादपादविचजिताः क्रमणोपरिप्रथमः ॥ १७८ ॥
 अष्टिपादवृणोर्णोऽयं विस्तरं तत्र कारयेत् ।
 सचेतोमङ्काकारं विस्तरं तस्य कारयेत् ॥ १७९ ॥
 विमन्तं रथिकाम्बत स र्धैः सा भागत्रयोच्छ्रिताः ।
 विमन्तं रथिका र्धैः स र्धैः सा भागत्रयोच्छ्रिताः ॥ १८० ॥
 विमन्तं रथिका र्धैः स र्धैः सा भागत्रयोच्छ्रिताः ।

एष त्रिमूर्तिनिलयः कार्यो नान्यस्य कस्यचित् ।

हेमकूटः ॥

हिमवत्तुल्यसंस्थानं प्रासादं परिकल्पयेत् ॥ १८७ ॥

तस्य मध्ये विधातव्यः सर्वतोभद्रसंज्ञितः ।

वर्जनीयं तु तन्मध्ये वर्धमाननिवेशनम् ॥ १८८ ॥

ततः स्थानेषु सर्वेषु खण्डरेखा निवेशयेत् ।

व्यासोच्छ्रितैस्ततः सिंहकर्णभद्रं विभूषयेत् ॥ १८९ ॥

ऊर्ध्वं च शिखरं तस्य वर्जनीयं विचक्षणैः ।

द्वे द्वे च रथिके कार्ये सपादञ्चशकोच्छ्रिती ॥ १९० ॥

तयोश्चोपरि विस्ताराच्छिखरं चतुरश्रकम् ।

उच्छ्रयः पञ्चभिः सार्धंविधेयः शिखरस्य च ॥ १९१ ॥

दिक्मूत्रेषु च सर्वेषु क्रियामेवं प्रकल्पयेत् ।

बाह्यरेखा तु जङ्घा च हिमवत्सदृशी स्मृता ॥ १९२ ॥

कैलासोऽयमिति ख्यातः कर्तव्यः शूलपाणये ।

कैलासः ॥

एतस्यैव यदा भद्रमुच्छ्रितं सिंहकर्णकैः ॥ १९३ ॥

द्वे द्वे च रथिके तत्र दी(य?ये)ते सुमनोरमे ।

शेषः शिखरविस्तारः पञ्चभागसमुच्छ्रितः ॥ १९४ ॥

प्राग्ग्रीविकाश्च भद्रेषु भागभागविनिर्गताः ।

विस्तारेण चतुर्भागा दिक्षु सर्वास्वयं विधिः ॥ १९५ ॥

विमानसदृशी चास्य बाह्यलेखा विधीयते ।

गुणैरेभिस्तदा युक्तः प्रासादः पृथिवीजयः ॥ १९६ ॥

पृथिवीजयः ॥

भक्ते षोडशभिः क्षेत्रे चतुरश्रे समन्ततः ।

गर्भोऽष्टवर्गः स्यात् तस्य मध्ये भित्तिर्द्विभागिका ॥ १९७ ॥

भ्रमणं बाह्यभित्तिश्च तत्समे एव कीर्तिते ।

कर्णेषु रथिका कार्या सलिलान्तरभूषिता ॥ १९८ ॥

तत्तुल्यायामविस्तारा रथिकाः स्युस्तथापराः ।
 तद्वत् तृतीयरथिका भद्रं चतुष्पदायतम् ॥ १९९ ॥
 विस्तारार्धेन निष्कान्तं शोभयेद् वर्धमानतः ।
 वरण्ड्यन्तरपत्रे च सा(धै?धै) भागेन कारयेत् ॥ २०० ॥
 उपर्युपरि भागान् हि हीनाः स्युः क्रमशोभवः(?) ।
 भद्रे रथिकयोर्मध्ये सिंहकर्णो विधीयते ॥ २०१ ॥
 एतस्य चोच्छ्रयो भागैः पञ्चभिः परिकीर्तितः ।
 पार्श्वस्थे सिंहकर्णमथरार्थके ये निवेशिते ॥ २०२ ॥
 तयोरुपरि पद्मभागं विस्तृतं शिखरं भवेत् ।
 विधेयमुच्छ्रयेणैतन् त्रिभागान् स(साथ?स)वाधिकान् ॥ २०३ ॥
 पश्चयोरुभयोस्तस्य रथिके (च) तदूर्ध्वतः ।
 सिंहं निवेशयेद् दिक्षु निग्नित्वास्वप्ययं विधिः ॥ २०४ ॥
 मूलकर्णे ततश्चार्थं शिखरं दशविस्तृतम् ।
 एकादशोच्छ्रितं कार्यं क्रमवृत्त्या मनोरमम् ॥ २०५ ॥
 चतुर्गुणेन सूत्रेण वेणुकांशं ततो लिखेत् ।
 पूर्वोक्ता सातरंभागेऽमुष्या (?) विभजेत् त्रिभिः ॥ २०६ ॥
 शीवार्थभागमुन्मेषादृण्डकं भागमुच्छ्रितम् ।
 पद्मशीर्षं तथार्धेन कल्पश्रांशकादयः ॥ २०७ ॥
 देवानामालयः स स्यादिन्द्रनीलोऽप्यधीगितः ।
 इन्द्रनीलः ॥
 एतस्यैव यदूर्ध्वस्थं शिखरं क्रियतेऽन्यथा ॥ २०८ ॥
 चतुर्थी रथिका चास्य दीयतेऽतिमनोरमा ।
 पूर्वोक्तेन विधानेन पादं वि + + वज्रिता ॥ २०९ ॥
 शिखरस्याष्ट विस्तारा नव भागान्मथोच्छ्रयः ।
 इन्द्रनीलस्य सदृशं वेपथन्यद्वि विधीयते ॥ २१० ॥
 महार्नलोऽप्यमानुषादः प्राप्ताद्विद्वानालयः ।
 महात्तिलः ॥
 इन्द्रनीलस्य संस्थाने दिङ्मूर्ध्वेऽप्यसन्नतः ॥ २११ ॥

सर्वतोभद्रशिखरं हित्वा(हो+?) निवेशयेत् ।
 विधिरेष समस्तासु ककुप्सु प्रविधीयते ॥ २१२ ॥
 भद्रेषु वर्धमानस्य विन्यासं परिवर्जयेत् ।
 व्यासोच्छ्रितैः सिंहकर्णैर्भद्रमस्य विभूषयेत् ॥ २१३ ॥
 महानीलस्य सदृशं सर्वमस्य प्रकल्पयेत् ।
 इन्द्रगोपनिभाकारः प्रासादो भूधरः स्मृतः ॥ २१४ ॥
 सुरेश्वरस्य कर्तव्यो नान्येषां कथमप्यसौ ।

भूधरः ॥

भूधरस्य तु संस्थाने तद्रूपे समवस्थिते ॥ २१५ ॥
 भद्रे भद्रे पुनः प्राज्ञो वर्धमानं निवेशयेत् ।
 चतुर्भागमितव्यासं सार्धचतुःसमुच्छ्रितम् ॥ २१६ ॥
 रत्नकूटः समाख्यातः प्रासादः श्रीपतेरयम् ।

रत्नकूटः ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे विंशत्या भाजितेऽशकैः ॥ २१७ ॥
 कुर्याद् द्विभागविस्तारा रथिकाः पञ्च कर्णगाः ।
 पञ्चोपरि पुनः पञ्च दद्यादेकां तदूर्ध्वतः ॥ २१८ ॥
 प्रथमा भूमिका चास्य कार्या भागत्रयोच्छ्रिता ।
 पादपादविहीनास्तु क्रमेणापरभूमयः ॥ २१९ ॥
 भद्रकर्णान्तरस्थे द्वे रथिके ये तदूर्ध्वतः ।
 शिखरं दशविस्तारं कुर्यात् सार्धदशोच्छ्रितम् ॥ २२० ॥
 मूलकर्णानुसारेण शिखरं तत्र यद् भवेत् ।
 तस्य द्वादशविस्तारं त्रयोदशसमुच्छ्रितम् ॥ २२१ ॥
 भद्रं विभूषयेत् पत्रैः सिंहकर्णैर्मनोरमैः ।
 पञ्चव्यासेन सूत्रेण वेत्रकोशं समालिखेत् ॥ २२२ ॥
 स्कन्धकोशान्तरं चास्य त्रिभिर्भागैर्विभाजयेत् ।
 पद्मशीर्षं तथा ग्रीवां सार्धभागेन कारयेत् ॥ २२३ ॥
 कुर्याद् भागेन भागेन कुम्भं चामलसारकम् ।
 त्र्यम्भागोच्छ्रितां जह्वां तदूर्ध्वखरपिण्डकाम् ॥ २२४ ॥

वरण्ड्यन्तरपत्रं च कुर्याद् भागद्वयेन च ।

वैदूर्योऽयं समाख्यातः प्रासादां दानवद्विपः ॥ २२५ ॥

वैदूर्यः ॥

एतस्यैव यदा भद्रं भद्रं स्याद् वर्धमानकः ।

पद्मरागस्तथैव स्याद् कार्योऽयं पद्मरागतः ॥ २२६ ॥

पद्मरागः ॥

पद्मरागस्य भद्रेषु वर्धमानं विवर्जयेत् ।

भद्रस्य पार्श्वद्वितये प्रदद्याद् रथिकाद्वयम् ॥ २२७ ॥

व्यासोच्छ्रायैश्च भद्राणि सिंहकर्णं विभूषयेत् ।

यदन्यदस्य तत् सर्वं पद्मरागसमं भवेत् ॥ २२८ ॥

वज्रकोऽयं समाख्यातो विधेयस्त्रिपुरद्विपः ।

वज्रकः ॥

वज्रकस्यैव भद्रेषु पूर्ववद् रथिकास्थिता ॥ २२९ ॥

पद्मभागविस्तृतं तत्र शिखरं विनिवेशयेत् ।

सप्तभागसमुत्सेधं दिक्षु सर्वास्वयं विधिः ॥ २३० ॥

मुकुटोज्ज्वल इत्युक्तः प्रासादोऽयं सुरालयः ।

मुकुटोज्ज्वलः ॥

अस्यैव तु यदा स्थाने भद्रे भद्रे चतुर्दिशम् ॥ २३१ ॥

सिंहकर्णं परित्यज्य वर्धमानो विधीयते ।

ऊर्ध्वाभवत्तृतीयायाः(१) सप्तोच्छ्रायपडायताः ॥ २३२ ॥

ऐरावतोऽयं कर्तव्यः प्रासादस्त्रिदशे(सतिः?शितुः) ।

ऐरावतः ॥

ऐरावतस्य संस्थाने प्रासादं पूर्ववत् स्थिते ॥ २३३ ॥

वर्धमानं विहायोर्ध्वे यदा सिंहो निवेशयते ।

शिखराणि च चत्वारि दिक्षु सर्वासु वर्जयेत् ॥ २३४ ॥

क्षेत्राया(ष्टामे?)विस्तारं गर्भवेश्म निवेशयेत् ।

चतुर्भागायतं भद्रं निर्गमेण विभाजितम् ॥ २३५ ॥

भद्रत्रयं प्रयुञ्जीत भित्तिभागेन वेष्टितम् ।

द्वारोच्छ्रयं (सःस्व)विस्ताराद् (वःद्वा)रार्धेन समुच्छ्रयः ॥ २३६ ॥

गवाक्षस्तत्र कर्तव्यो यथा द्वारं न लङ्घ्यते ।

मध्ये चतुष्क्रिका कार्या द्विभागायामविस्तृता ॥ २३७ ॥

प्रासादो राजहंसोऽयं ब्रह्मादीनां प्रशस्यते ।

राजहंसः ॥

राजहंसस्य संस्थाने तृती(येऽय)रधिकोपरि ॥ २३८ ॥

यदा(रःस्य)शिखरं सप्तसमुच्छ्रयं पडायतम् ।

स्यात् तदा गरुडो नाम गरुडध्वजवल्लभः ॥ २३९ ॥

प्रासादः सर्व* + + + + कारयितुस्तथा ।

गरुडः ॥

अस्यैव मूलशिखरं त्यक्त्वा भागद्वयोन्मितम् ॥ २४० ॥

क्रियन्ते रथिकाः (पूःक)र्णे तदूर्ध्वं मूलमञ्जरी ।

क्रियते द्वादशोच्छ्रा(येऽया) दशभागायता यदा ॥ २४१ ॥

तदा स्याद् दृषभो नाम दृषभध्वजवल्लभः ।

दृषभः ॥

(सःश)तार्धहस्तविस्तारं ज्येष्ठं मेरुं प्रकल्पयेत् ॥ २४२ ॥

मध्ये हस्तसंख्या स्यात् (पट्ट्यं द्विकालाधिकः?) ।

दशत्रिगुणिता (हस्ताभ्यां?)संख्या प्रोक्ता कनीयसि ॥ २४३ ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे भागविंश(विःति)भाजिते ।

विस्तारार्थं भवेद् ग(र्भं गृहं?भृगृहं)भित्त्या समन्वितम् ॥ २४४ ॥

भागप्रमितविस्तारा गर्भभित्तिविधीयते ।

सार्धद्विभागान्या भित्तिस्तद्वदेवान्धकारिका(ः?) ॥ २४५ ॥

द्विभागा रथिका कार्या कर्णे कर्णे विजानता ।

चतुर्भागा रथा भद्रेष्वेतदर्थेन (वि?)निर्गता ॥ २४६ ॥

भद्रकर्णान्तयोः कार्या यदाष्टांशार्थं तदाष्टांशं जलान्तम् ।

भद्राणां रथिकाः कार्याः पार्श्वयोगनसोस्तथा ॥ २४७ ॥

* 'वामार्थः कर्णः' इत्येवंशतीर्थे २५४२२५३३३ दिव्येऽन्तम् ।

१. धनुःशतवर्त 'रुच' इति स्पष्टम् ।

रथिकानां च सर्वासां स्वभद्रं विस्तरार्थतः ।

भृङ्गं भद्रं यथैवैकं तथा सर्वाणि कारयेन् ॥ २४८ ॥

दिक्मूत्रेषु (च) सर्वेषु यथैवैकं निवेशयेन् ।

अष्टभागोच्छ्रिता जङ्घा गुरगिण्डं तदधतः ॥ २४९ ॥

(ये?मे)खलान्तरपत्रे च स्यानां भागद्वयोद्भवे ।

प्रथमा रथिकास्तत्र (सपादात्सु?)त्रयोच्छ्रिताः ॥ २५० ॥

पदपादविहीनाः स्युः क्रमेणोपरिभूमयः ।

दिक्मूत्रेषु सकर्णेषु क्रिया प्राग्वद् विधीयते ॥ २५१ ॥

शिखरं दशविस्तारं भा(गं?)दशकोच्छ्रितम् ।

चतुर्गुणेन मूत्रेण वेणुकोशं समालिखेन् ॥ २५२ ॥

स्कन्धकोशान्तरं चास्य त्रिभिर्भागैर्विभाजयेत् ।

श्रीवा च पञ्चशीर्षं च तावद् भागार्थमुच्छ्रियात् ॥ २५३ ॥

भा(गमामा?)गं चाम)लसारं स्यात् कलशो भागमेव च ।

(सा?)श)तमृत्जावृत्तो मेरुरयं प्रासाद् ईरितः ॥ २५४ ॥

प्रदक्षिणीकृते तस्या तत्पुण्यं कनकाद्रिणा(?)

शैलेष्टकामये तत् स्यात् कृतेऽस्मिन्नधिकं ततः ॥ २५५ ॥

मेरुः ॥

नन्दिशालस्य संस्थाने तद्रूपे समवस्थिते ।

द्वितीया रथिका कार्या भागद्वयविनिर्गता ॥ २५६ ॥

शेषो भद्रस्य विस्तारः स्वविस्तारोऽर्धनिर्गतः ।

अष्टांशायामविस्तारः स्वविस्तारोऽर्धनिर्गतः ॥ २५७ ॥

अष्टांशायामविस्तारोऽर्धः शाला स्यात् पुरतः पुनः ।

तस्या मध्ये भवेद् गर्भो द्विभागायामविस्तरः ॥ २५८ ॥

गर्भभित्तिर्भवेच्चास्य भागेनैकेन निर्गता ।

बाह्यभित्तिस्तथैव स्यात् तत्समा चान्धकारिका ॥ २५९ ॥

द्विभागा रथिकास्तस्य सलिलान्तरभूपिताः ।

शेषो भद्रस्य विस्तारो भागेनैकेन निर्गमः ॥ २६० ॥

जङ्घोत्सेधं (च) पीठं च त्रिदध्यान्नन्दि(सार? शाल)वन् ।
 राधिकास्तत्र कर्तव्याः कृ(र्ण?णै) भागत्रयोच्छ्रिताः ॥ २६१ ॥
 पडंशान् विस्तृ(तः?तं) कुर्याच्छिखरं सम(चोः?मो)च्छ्रितम् ।
 कार्या केसरिवचास्य रेखा नामलसारीका ॥ २६२ ॥
 एभिर्गुणैर्युतं चैनं पार्श्वयोरपि योजयेत् ।
 प्रामादोऽयं लनालयः स्यान् कर्तव्यो दानवद्विपः ॥ २६३ ॥
 लनालयः ॥

अग्रतनं यदा पश्चान्न्यस्येन सरिणं तदा ।
 भवेत् त्रिपुष्कराख्योऽयं प्रामादद्विदशाख्यः ॥ २६४ ॥
 त्रिपुष्कराख्यः ॥

नन्दिशाम्य सर्वागु दि(क्षु?क्ष्ण)यं केसरी यदा ।
 स्यान् तदा पञ्चवक्रोऽयं विधेयः पञ्चजन्मनः ॥ २६५ ॥
 पञ्चवक्रः ॥

यदा च पञ्चवक्रस्य मध्ये ग(र्भा?भो) न दीयते ।
 वाग्येत्वादिषु प्राग्यद् दिक्षु सर्वासु कल्पते ॥ २६६ ॥
 चतुःस्तम्भसमा कार्या मध्ये चारय चतुष्पिका ।
 वितानं चोपरि न्यस्येन्मध्यतरतरग रूपणम् ॥ २६७ ॥
 एते चतुर्गुणे स्थाप्या नाण्डेयो भवत्ययम् ॥ २६८ ॥
 चतुःस्तम्भः ॥

चतुःस्तम्भे चतुर्गुणे स्थाप्या नाण्डेयो भवत्ययम् ॥ २६९ ॥
 समवर्गपटो गर्भो भिन्ना एत विर्गपटो ॥ २७० ॥
 म्याद् गर्भविर्गपटो गर्भो भिन्ना एत विर्गपटो ॥ २७१ ॥
 पटुनामं वर्णविर्गपटो गर्भो भिन्ना एत विर्गपटो ॥ २७२ ॥
 पटुभिर्गपटो गर्भो भिन्ना एत विर्गपटो ॥ २७३ ॥
 शाला विर्गपटो गर्भो भिन्ना एत विर्गपटो ॥ २७४ ॥
 विर्गपटो गर्भो भिन्ना एत विर्गपटो ॥ २७५ ॥
 एते शाला विर्गपटो गर्भो भिन्ना एत विर्गपटो ॥ २७६ ॥

क्षोभयेदर्धभागे तु तदर्धेन जलान्तरम् ।
 मत्तवारणकैर्विद्यात् स्तम्भैरुपरि शोभिताः ॥ २७३ ॥
 रथिकैका त्रिभागेन पुनः सार्धद्विभागिका ।
 तासां परस्परक्षेपो भागो भागो विधीयते ॥ २७४ ॥
 शेषं शिखरविस्तारः सार्धपट्कं तदुच्छ्रयः ।
 पृथक्सूत्रैस्त्रिगुणितैर्वेणुकोशं समालिखेत् ॥ २७५ ॥
 स्कन्धकोशान्तरं भागैश्चतुर्भिस्तस्य भाजयेत् ।
 ग्रीवार्धभागमुत्सेधो भागेनामलसारकम् ॥ २७६ ॥
 पद्मशीर्षस्तर्षं तथा भागं कलशो भागसंमितः ।
 अर्धभागस(मोऽमु)त्सेधं कारयेद् बीजपूरकम् ॥ २७७ ॥
 सर्वकर्णेषु कर्तव्याः क्रियाश्चैवं विचक्षणैः ।
 दिक्सूत्रवाह्यभागेषु बलभीं सन्निवेशयेत् ॥ २७८ ॥
 निर्गमे पञ्चभागः स्यात् तिर्यक् प्रक्षिप्तभागिकाः(?) ।
 अस्या द्विभागिको गर्भो मध्ये भागत्रयोच्छ्रितः ॥ २७९ ॥
 भागार्धभागं भित्तिः स्यात् तत्समा चान्धकारिका ।
 तस्याश्वाग्रे विधातव्यः(?) पङ्कारुकसमन्वितम् ॥ २८० ॥
 एकैकां रथिकां सार्धभागां कर्णेषु योजयेत् ।
 शेषं भद्रस्य विस्तारो भागः स्यादस्य निर्गमः ॥ २८१ ॥
 एवं भद्रं (वि?द्वि)भागं स्यात् स्तम्भद्वयसमन्वितम् ।
 बलभावावर्तयोर्मध्ये भागमेकं च विस्तृतम् ॥ २८२ ॥
 तत्रोदकान्तरं कुर्याद् गुणद्वारविभूषितम् ।
 नवभागोच्छ्रिता जङ्घा पीठमस्य तदर्धतः ॥ २८३ ॥
 मेखलांन्तरपत्रे च कुर्याद् भागद्वयोन्मिते ।
 रथिका स्याद् द्विभागा च ततः सार्धैकभागिका ॥ २८४ ॥
 शेषं शिखरविस्तारः पञ्चांशं शिखरोच्छ्रयः ।
 उपर्युपरि कर्तव्यं सर्वतोभद्रकद्वयम् ॥ २८५ ॥

१. 'तस्याश्वाग्रं विधातव्यम्' इति स्यात् ।

रुचकादिचतुष्पष्टिप्रासादकः पदपञ्चाशोऽध्यायः ।

द्वे द्वे च सर्वतोभद्रे कर्णे कर्णे निवेशयेत् ।
 दिकसूत्रेषु समस्तेषु क्रियामेवं प्रकल्पयेत् ॥ २८६ ॥
 विस्तार शिखरस्याष्टौ भागात्स्यार्धसमुच्छ्रयः(?) ।
 पञ्चव्यासेन सूत्रेण ++++++ ॥ २८७ ॥
 वेणुकोशान्तरं चास्य त्रिभिर्भागैर्विभाजयेत् ।
 ग्रीवा च पद्मशीर्षं च भागेन स्यादिदं द्वयम् ॥ २८८ ॥
 प्रत्येकं भागिकौ कार्यौ कलशामलसारकौ ।
 (तान्)वात्मकोऽयं कथितः प्रासादस्त्रिदशालयः ॥ २८९ ॥
 नवात्मकः ॥

विन्यसे(द् दि?दी)शमैशान्यासग्रेय्यां पुरुषोत्तमम् ।
 ब्रह्माणं वायुदिग्भागे नैर्ऋते च दिवाकरम् ॥ २९० ॥
 मध्यगर्भे शिवः स्थाप्यः प्राच्यामपि पुरन्दरः ।
 धर्मो(यमां?याभ्यां) प्रतीच्यां च वरुणः सोम उत्तरे ॥ २९१ ॥
 (भक्ताठा?) शक्तिसम्पन्नः पूर्वायतनसन्निधौ ।
 प्रासादं कारयेद् यत्रात् तदाद्यं नैव पीडयेत् ॥ २९२ ॥
 उत्कृष्टमपकृष्टं वा यत्र स्थाने निवेशयेत् ।
 प्रासादं तत्र कर्माणि यानि तान्यभिदध्यहे ॥ २९३ ॥
 सम्मुखं नैव कुर्वीत हीनं वा यदिवाधिकम् ।
 वेदभागास्तं तव सश्रितस्तंस्या स्यात्प्रासादोऽतिविगर्हितः(?) ॥
 अन्योन्यं दक्षिणे वेधो हीन इत्यभिधीयते ।
 वेधभागामृते(?)मृत्युं हीने हानिं विनिर्दिशेत् ॥ २९५ ॥
 दूरो हिरण्यगर्भश्च हरिर्दिनकरस्तथा ।
 एते देवाः समाख्याताः परस्परविरोधिनः ॥ २९६ ॥
 एता न दक्षिणापाश्वं स्थापयेत् पुरसाश्रितान् (?) ।
 वामतो नान्यदेवानां नास्ति(?)पि हीनालयेषु च ॥ २९७ ॥
 नैतेषां दक्षिणे सुर्यादन्येषामपिचालयम् ।
 हीनं वा यदि बाह्येन यदीच्छेच्छिद्रय आत्मनः ॥ २९८ ॥

१. 'विरतारः शिखरस्याष्टौ भागाः स्यार्धसमुच्छ्रयः' इति स्यात् ।
२. 'वेणुकोशं चामलसारकौ' इति चतुर्विंशतः स्यात् ।

तेषामुत्तरतो (नूःही)नं य(दिःदी)च्छेद् देवतालयम् ।
 प्रासादपदमानेन नवपद्त्रिंश(दाःद)न्तरे ॥ २९९ ॥
 प्रासादं कारयेदन्यं मर्मवेधविवाजि(नानुःनम्) ।
 पुरतः पृष्ठतो वापि पार्श्वयोर्द्वयोरपि ॥ ३०० ॥
 महामर्माणि चत्वारि कुर्याद् यत्तावतोत्तरे(?) ।
 क्षणमध्येषु सर्वेषु द्रव्यमेकं न दापयेन् ॥ ३०१ ॥
 तदा युग्म + + + + वेधमर्म विवर्जयेन् ।
 क्षणमध्ये यदा द्रव्यमेकं मोहान् प्रदीयते ॥ ३०२ ॥
 कर्तृकारकयोः पीडा भवेन् पूजा न तादृशी ।
 तस्मात् सर्वप्रयत्नेन स्थपतिः कारकोऽपि च ॥ ३०३ ॥
 मर्माणि वर्जयेद् यत्नान् प्रासादस्य समीपतः ।
 अथ मर्मवियु(क्तोःक्तं) यः प्रासादं कर्तुमिच्छति ॥ ३०४ ॥
 प्रासादतः सदा तेन विधेयं महदन्तरम् ।
 (प्रासादां तूत्तरं कवः) कार्यं फलपुष्पैर्विभूषितम् ॥ ३०५ ॥
 य एतैर्लक्षणैर्युक्तं कारयेद् देवतालयम् ।
 धनधान्यमवामोति मोदते सुखमेव च ॥ ३०६ ॥
 हरो हिरण्यगर्भश्च हरिर्दिनकरोऽपि च ।
 एते देवाः समाख्याता देवानामपि पूजिताः ॥ ३०७ ॥
 पृथक्त्वेन च कर्तव्या एकरूपसमन्विताः ।
 अष्टबाहुश्चतुर्वक्त्रः कुण्डली मुकुटोज्ज्वलः ॥ ३०८ ॥
 दारकेयूरसंयुक्तो रत्नमालोपशोभितः ।
 ऋष्यागतपुरः कार्यः पद्महस्तो दिवाकरः ॥ ३०९ ॥
 शङ्खचक्रधरो देवो वामे च मधुमूदनः ।
 कण्ठाभरणसंयुक्तो मूर्धा च मुकुटोज्ज्वलः ॥ ३१० ॥
 ब्रह्मा पश्चिमतः कार्यो बृहज्जठरमण्डलः ।
 कुण्डिकामक्षमूत्रं च दधत् कूर्चविभूषितः ॥ ३११ ॥

१, 'यत्तावतोत्तरम्' इति स्यात् ।

प्रासादा रत्नकादयोश्च ललितताः प्राग्विंशतिः पञ्चयुक्तान्
नामन्तश्च ततोऽनु केनानिगुह्याः (यिन्यारक्ताः कीर्तिताः ।

मिश्राण्य नच पञ्च चानुकीर्तितारत्नचित्रुद्धान्यया

पष्टिः स्याच्चतुरन्वितेति विदिता संपा भवेत् सम्पदे ॥ ३१२ ॥

एति मदारजाधिराजधर्मोत्तरेवांशनिने समारादण्ययधारासर्नासि वाग्यशान्ते

रत्नकादिचतुःपष्टिभागादकां नाम

पदपञ्चाशोऽध्यायः ॥

अथ मेवादिविंशिका नाम सप्तपञ्चाशोऽध्यायः ।

अधान्यान् कथयिष्यामः समासात् सूक्ष्मलक्षणान् ।

पञ्चाशतमिहोत्कृष्टान् प्रासादाञ्च श्रीधरादिकान् ॥ १ ॥

श्रीधरो हेमकूटश्च सुभद्रो रिपुकेशरी ।

पुण्यो विजयभद्रश्च श्रीनिवासः सुदर्शनः ॥ २ ॥

भगवत्याः प्रिया ह्येते तथा कुसुमशेखरः ।

देवस्य शम्भोर्दयितः प्रासादः सुरसुन्दरः ॥ ३ ॥

नन्द्यावर्तश्च पूर्णश्च सिद्धार्थः (सिरवःशङ्ख)वर्धनः ।

त्रैलोक्यभूषणश्चेति पञ्च(सुःस्तु) ब्रह्मणः प्रियः ॥ ४ ॥

पक्षवाहुर्विशालश्च तथान्यः कमलोद्भवः ।

हंसध्वज इति ख्याताः प्रासादा ब्रह्मणः प्रियाः ॥ ५ ॥

लक्ष्मीधरा(क्षःख्यः) प्रासादो व(स्तःस)तौ मधुविद्विषः ।

महावज्रो रतितनुः सिद्धकामस्तथापरः ॥ ६ ॥

पञ्चचामरसंज्ञश्च नन्दिघोषाख्य एव च ।

अनुकीर्णः सुमभश्च सुरानन्दोऽथ हर्षणः ॥ ७ ॥

दुर्धरो दुर्जयश्चैव त्रिकूटो नवशेखरः ।

पुण्डरीकः सुनाभश्च महेन्द्रः शिखिशेखरः ॥ ८ ॥

वराटः सुमुखः शुद्धयत्वारिंशाद्वितीरिताः ।
 मिश्रकास्तु दश प्रोक्ता मिथः कर्मप्रमेदतः ॥ ९ ॥
 विज्ञेयो नन्दसंज्ञथ महायोपस्तथापरः ।
 वृद्धिरामाभिधानथ प्रासादोज्ज्वो वगुन्धरः ॥ १० ॥
 मुद्गकोऽथ बृहच्छालस्त(था?थि)व च गुधाधरः ।
 संवराख्यः शुकनिभस्तथा सर्वाङ्गगुन्द्रः ॥ ११ ॥
 पञ्चाशदेवं कथिता प्रासादानां यथाक्रमम् ।
 इदानीं लक्ष्मतो वृमः श्रीधरं सर्वकामिकम् ॥ १२ ॥
 बल्लभं सर्वदेवानां पुण्यानां कारणं परम् ।
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे चतुर्विंशतिभाजिते ॥ १३ ॥
 द्वादशाखिलकोणेषु कर्णशृङ्गाणि योजयेत् ।
 विस्तारं च चतुर्भागमेकैकस्य विनिर्दिशेत् ॥ १४ ॥
 परस्परं च (निष्कोऽसौ?विष्कम्भो) द्विपदोऽत्र विधीयते ।
 द्वयंशानि क(र्णि?र्ण)भद्राणि निर्गमश्चार्धभागिकः ॥ १५ ॥
 *कर्णकर्णपदेन्यस्यात् पदार्धाधेत(?)विस्तृतः ।
 वारिमक्षो विधातव्यो मध्यगः पूर्वमानयोः ॥ १६ ॥
 भद्रस्य मानमुद्दिष्टं विस्ताराद् दशभागिकम् ।
 निर्गमश्च त्रिभिर्भागैः समसूत्रसमाहितः ॥ १७ ॥
 द्विपादा बाह्यभित्तिस्तु द्विपादा चान्यकारिका ।
 भवेच्छतपदः कन्दो गर्भः पङ्क्तिदंशकः ॥ १८ ॥
 द्विपदः कर्णकन्दश्च प्रत्यङ्गं पदिकं स्मृतम् ।
 निर्गतं चार्धभागेन चतुर्दिक्षु व्यवस्थितम् ॥ १९ ॥
 भागेन निर्गता कार्या शाला चास्य चतुष्पदा ।
 अभ्यन्तरं बाह्यभित्तेः कन्दस्य च तथा वहिः ॥ २० ॥
 उभयोरन्तरं कार्यं विस्तारात् पञ्चभागिकम् ।
 अन्तरालं च कुर्वीत शृङ्गं तच्च चतुष्पदम् ॥ २१ ॥

* 'कर्णः कर्णपदेऽन्यः स्यात् पदार्धाधेत' इति स्यात् ।

तेषां च तुल्यता कार्या विस्तारादुच्छ्रयादपि ।
 चत्वार एककर्णे स्युरेवं सर्वेषु षोडश ॥ ३५ ॥
 सिंहकर्णस्य विस्ता(रा?र)मानं स्यादष्टभागिकम् ।
 षड्भागस्तु तथोत्सेधो रथिकश्च विभूषणम् ॥ ३६ ॥
 गुण(द्वा?ता)रसमायुक्तः शूरसेनाभिधानकः ।
 सिंहकर्णो विधातव्यः सर्वकर्मसमाकुलः ॥ ३७ ॥
 सिंहकर्णोदयादूर्ध्वमुरोमञ्जरिका भवेत् ।
 विस्तारादष्टभागासावुच्छ्रा(यन?यान्न)वभागिका ॥ ३८ ॥
 लतापञ्चकसंयुक्ता मञ्जरी स्यात् सुशोभिता ।
 ग्रीवा पादोनभागा स्यादण्डकं भागमुच्छ्रितम् ॥ ३९ ॥
 चन्द्रिका चार्धभागेन कलशश्चैव भागिकः ।
 कूटम्(ध्वे?त्रिं) द्वितीया स्यादुरोमञ्जरिका तथा ॥ ४० ॥
 (भागात्तद्वादशविस्तीर्णा तु सार्धा न त्रिदशावाच्छ्रिता?) ।
 भागमेकं भवेद् ग्रीवा सार्धभागेन चाण्डकम् ॥ ४१ ॥
 कपरि(?) चार्धभागेन कलशश्च द्विभागिकः ।
 उरःशिखरका(न्य?ण्य)ष्टौ भवन्त्येवं चतु(र्द?र्दि)शम् ॥ ४२ ॥
 द्वितीयकूटकस्योर्ध्वे कर्तव्या मूलमञ्जरी ।
 भागषोडशविस्तारा पदाष्टादशको द(यः?या) ॥ ४३ ॥
 स्कन्धमानं हि सर्वेषां यथोक्तं शतवास्तुनि ।
 ग्रीवा सार्धपदांशा स्यादण्डकं द्विपदान्वितम् ॥ ४४ ॥
 कङ्कतीफलतुल्यानि कुर्यात् सर्वाण्डकानि च ।
 द्विपदं (च?म)ण्डिकायुग्मं कार्यं सामलसारकम् ॥ ४५ ॥
 नस्योपरि स्यात् कलशो वर्तुलक्षिपदांच्छ्रितः ।
 तोरणमकरः पत्रैः साग्रैश्च स(च?म)रालकः ॥ ४६ ॥
 इस्तिमुष्टैः समाकीर्णम(ध?प्त)रांगणभूषितम् ।
 इदं श्रीवरं कुर्यात् सर्वाण्डकारभूषितम् ॥ ४७ ॥

1. 'भागात्तद्वादशविस्तीर्णा सार्धोत्सेधोत्सेधोच्छ्रिता' इति स्यात् ।

श्रीधरं कारयेद् यस्तु कीर्त्यर्थमपि मानवः ।
 इहैव ल(वसतः?)भते सौख्यममुत्रेन्द्रत्वमाप्नुयात् ॥ ४८ ॥
 भोगान् भुक्त्वा पुमान् स्वर्गं नीयते च परे पदे ।
 सर्वपापविनिर्मुक्तः शान्तश्च स्यान्न संशयः ॥ ४९ ॥
 श्रीधरः ॥

हेमकूटमथ ब्रूमः शुभलक्षणसंयुतम् ।
 सर्वविद्याधरस्थानमाश्रयः स पिनाकिनः ॥ ५० ॥
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे पङ्क्तिशत्यंशभाजिते ।
 तत्र स्युः षड्पदाः कर्णाः शाला द्वादशभागिकाः ॥ ५१ ॥
 निर्गताश्च त्रिभिर्भागैर्भवनत्येताश्चतुर्दिशम् ।
 अष्टभागायता भूयो निर्गमश्च त्रिभिः पदैः ॥ ५२ ॥
 चतुःस्तम्भाश्चतुष्पा(श्व?र्वा) दिक्षु सर्वास्वयं विधिः ।
 कर्णशालान्तरं कार्यं पदेनैकेन विस्तृतम् ॥ ५३ ॥
 प्रविष्टं तत् पदेनैकं तदेवात्र जलान्तरम् ।
 पदेन कर्णे कोणः स्यात् प्रत्यङ्गे पदविस्तृते ॥ ५४ ॥
 निर्गते चार्धभागेन सममाने मनोरमे ।
 द्विपदा रथिका भद्रे निर्गतार्धपदेन सा ॥ ५५ ॥
 चतु(क?ष्क)र्णेषु कर्तव्यं (मानमेवेवंधुनु?) धीमता ।
 बाह्यभिचेस्तु विस्तारस्त्रिपदः परिकीर्तितः ॥ ५६ ॥
 चतुःषष्टिपदो गर्भस्तद्विचित्रिपदा भवेत् ।
 त्रिपदं कर्णमानं स्याद् वारिमार्गेण संयुतम् ॥ ५७ ॥
 पदार्धं वारिमार्गः स्यात् पदमस्य प्रवेशकः ।
 शालाष्टपदविस्तीर्णा भागार्धेन विनिर्गता ॥ ५८ ॥
 चतुर्भागायता भद्रं पुनर्भागार्धनिर्गतम् ।
 तलन्या(सौ?सो) हेमकूटे विभक्तपदनिश्चयात् ॥ ५९ ॥
 अस्याग्रे मण्डपं कुर्यान्महान्तं गुणपूजितम् ।
 ऊर्ध्वं (तु) हेमकूटस्य द्विगुणं स्यात् कलाधिकम् ॥ ६० ॥

अधस्तादासनं तस्य सप्तभागसमुच्छ्रितम् ।
भागेनैकेन खुरके न मध्ये पूर्वमानयोः ॥ ६१ ॥

अत ऊर्ध्वं पुनर्धूमः पादमानमनुक्रमात् ।
सप्तभागोन्नतं कुर्याद् वेदीत्र(न्धे?न्धं) सुशोभनम् ॥ ६२ ॥

तस्यार्धं कुम्भकस्यार्धं(?) भागेन कलशोन्नतिः ।
पदार्धेनान्तरं पत्रं यथाशोभं विधीयते ॥ ६३ ॥

सार्धं पदं पुनः प्रोक्ता कपोताली सुशोभना ।
दशभागोच्छ्रिता जङ्घा कर्तव्यातिमुलक्षणा ॥ ६४ ॥

अस्योपरि विधातव्यं भर(णं?णं) द्विपदोच्छ्रितम् ।
मेखलान्तरपत्रे तु विधीयेते पदत्रये ॥ ६५ ॥

अधस्तान्मेखलायास्तु खुरकस्य तथोपरि ।
एकोनविंशतिं भागानन्तरं संप्रचक्षते ॥ ६६ ॥

कर्मप्रमाणमेतस्य पृथङ् मध्येऽभिधीयते ।
द्विपदं (राजासेनं स्याद्वेदा ++ चतुष्पदा (?) ॥ ६७ ॥

भवत्यासनपट्टस्य कल्पना भागमानतः ।
सार्धं भागद्वयं कार्यमूर्ध्वं चन्द्रावलोकनम् ॥ ६८ ॥

स्तम्भानासनपट्टार्धेन युञ्ज्यादष्टभागिकान(?) ।
भरणस्तम्भशीर्षे च प्रत्येकं पदके स्मृते ॥ ६९ ॥

द्विपदश्चार्धपट्टः स्याच्छाद्यकेन सुशोभितः ।
त्रिपदं छाद्यकं तत्र विस्तारेण प्रकीर्तितम् ॥ ७० ॥

एतन्मानं समाख्यातमलिन्देषु चतुर्दिशम् ।
ऊर्ध्वमन्तरपत्रस्य कथयामो यथाक्रमम् ॥ ७१ ॥

पदपदे कर्णविस्ता(रा?रे) सप्तांशा कर्णमञ्जरी ।
ग्रीवामर्धपदं कुर्यात् पदमेकं तथाण्डकम् ॥ ७२ ॥

अर्धांशा चन्द्रिका च स्यादेकांशः कलशोच्छ्रयः ।
अस्योरोमञ्जरी कार्या विस्तारेण चतुष्पदा ॥ ७३ ॥

१. 'राजासनं स्याद् वेदी चास्य चतुष्पदा' इति स्यात् ।

ग्रीवाण्डके विधात(व्यं?व्ये)भागेनार्धेन कुम्भकः ।

सिंहकर्णस्तु कर्तव्यो द्विपदोऽस्यैव मध्यतः ॥ ७४ ॥

इत्थं पञ्चाण्डकाः कर्णे हेमकूटेषु कीर्तिताः ।

अष्टांशविस्तृतं कुर्यादुदयेन च पट्पदम् ॥ ७५ ॥

अलिन्दस्योर्ध्वभाग(स्तं?स्थं) सिंहकर्ण मनोरमम् ।

सिंहकर्णे द्विभाग(स्थो?स्थां) द्वादशांशकविस्तृ(तः?ताम्) ॥ ७६ ॥

उरोमञ्जरिकां कुर्यात् त्रयोदशपदोच्छ्रिताम् ।

सप्तांशविस्तृतः स्कन्धो ग्रीवा च पदमुच्छ्रिता ॥ ७७ ॥

अण्डकं सार्धभागेन चन्द्रिकार्धपदा स्मृता ।

आकाशलिङ्गं कुर्वीत द्विपदं सुमनोरमम् ॥ ७८ ॥

विस्तारो मूलमञ्जर्या भागविंशतिसंमितः ।

उच्छ्रायोऽस्यैकविंशत्या स्कन्धो द्वादशभागिकः ॥ ७९ ॥

पञ्चभौमस्तु कर्तव्यो यथा चारुः स जायते ।

प्रथमा भूमिका तत्र पञ्चभागा विधीयते ॥ ८० ॥

परा परार्धभागेन न्यूना न्यूना विधीयते ।

स्कन्धमानं विधातव्यं पदेनैकेन चोन्नतम् ॥ ८१ ॥

विभज्य दशधा कुर्याल्लताः पञ्चात्तिमुन्दरीः ।

हेमकूटस्य कर्णेषु प्रत्यङ्गे नरकिन्नराः ॥ ८२ ॥

(म?अ)न्ये तिलककूटाश्च कर्तव्यास्तु निरन्तराः ।

ईदृशी मञ्जरी(हे?ह)मे विधेया कूटनिर्गता(ः?) ॥ ८३ ॥

ग्रीवा सार्धपदा प्रो(क्तो?क्ता) विस्तारादष्टभागिका(ः?) ।

अण्डकं द्विपदोत्सेधमेकादशपदायतम् ॥ ८४ ॥

दण्डिका सार्धभागो(ध?घा)विस्तारा (न?न्न)वभागिका ।

त्रिपदः कलशः कार्यो विस्तारेणोच्छ्रयेण च ॥ ८५ ॥

एवंविधं विधत्ते यो हेमकूटं मनोरमम् ।

स श्रीरतिं पुमान् स्वर्गे यावत् प्रीटा पिनाकिनः ॥ ८६ ॥

हेमकूटः ॥

सुभद्राख्यमथ ब्रूमः प्रासादं भद्रभद्रकम् ।

सुभद्रोऽयमतः प्रोक्तो भद्रे भद्रे यतोऽन्वितः ॥ ८७ ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे चतुर्दशविभाजिते ।

गर्भः षोडशभिर्भागैः (स्कःक)न्दः पद्पदविस्तृतः ॥ ८८ ॥

भित्तिः स्यात् पदविंशत्या तत्र कन्दसमाः (सुःस्मृ)ताः ।

कर्णाः प्रत्यङ्ग(कोःका)न्येषां प्रत्येकं पदविस्तरात् ॥ ८९ ॥

द्वयंशो मध्यगविस्तार उभयोर्निर्ग(तःम)ः पदम् ।

द्वयंशः सरसि(?)विस्तार आक्रान्तपदनिर्गमैः ॥ ९० ॥

द्विपदा वाद्यभित्तिः स्याद् विस्तारेण सुशोभिता(ः?) ।

चतुष्पदायतः कर्णो भद्रं तस्य द्विभागिकम् ॥ ९१ ॥

निर्गमोऽस्यार्धभागेन स्यादेवं सुन्दरं कृतम् ।

कर्णे कोणा(सुःस्तु) पदिका दिक्षु सर्वासु शोभनाः ॥ ९२ ॥

निगूढविस्तरः कार्यः सा(र्धैर्ध)पञ्चपदोन्मितः ।

द्विपदो निर्गमस्तत्र सर्वदिक्षु विधीयते ॥ ९३ ॥

सलिलान्तरकं कुर्यादन्तरे कर्णभद्रयोः ।

प्रविष्टं पदमानेन पदपादेन विस्तृतम् ॥ ९४ ॥

ऊर्ध्वमानमर्थतस्य यथावदभिधीयते ।

राजपीठं विद्यातव्यं भागार्धेनातिमुन्दरम् ॥ ९५ ॥

ऊर्ध्वभागेन सुरकपीठं स्याच्चतुरंशकम् ।

द्विपदः कुम्भकोत्सेधः पादोनं (सोमःस्यान्म)मूरकम् ॥ ९६ ॥

भागार्धेनान्तरं पत्रं पादोनांशेन मेखलाः ।

पट्टभागमुच्छ्रिता जङ्घा भागेन ग्रासपट्टिकाः(?) ॥ ९७ ॥

मेखलान्तरपत्रे च प्रत्येकं पदके स्मृते ।

पट्टादथरसुरादूर्ध्वं भागा सर्कां दद्यान्तरम् (?) ॥ ९८ ॥

राजासनं पदं प्रोक्तमुत्से(धै?धे)नानिशांभनम् ।

अर्धेनात्यधिके कार्ये द्वे पदे वेदिकाच्छ्रयः ॥ ९९ ॥

१. 'पट्टादथः सुरादूर्ध्वं भागास्त्वेकादद्यान्तरम्' इति स्याद् ।

पदार्धमासनं कार्यं अंशं चन्द्रावलोकनम् ।

ऊर्ध्वमासनपट्टस्य स्तम्भः पञ्चपदान्वितः ॥ १०० ॥

(पञ्चपदान्वितः?)

भरणं स्तम्भशीर्षं च पदेन स्यात् समुच्छ्रितम् ।

छाद्यकेनावृतं कुर्यात् पदेनैकेन पट्टकम् ॥ १०१ ॥

द्विपद(स्थः प्रःश्छाद्य)विस्तारः पदेनैकेन लम्बनम् ।

ऊर्ध्वमन्तरपत्रस्य कथयामो यथास्थितम् ॥ १०२ ॥

चतुष्पदेषु कर्णेषु ये कर्णाः पदिकाः स्थिताः ।

तेषु (पिखरकाः?) कार्या विस्तारोच्छ्रायतः पदम् ॥ १०३ ॥

कलशोनं तथा ग्रीवा पदार्धेन समुच्छ्रिता ।

द्विपदः सिंहकर्णस्तु विस्तारोच्छ्रायतः समः ॥ १०४ ॥

(शिविरोऽधः) विधातव्या त्रिपदी कर्णमञ्जरी ।

ऊर्ध्वं च त्रिपदा (सःसा) स्याद् द्विपदा स्कन्धविस्तृतिः ॥ १०५ ॥

सार्धभागेन कर्तव्यं सग्रीवं कलशाण्डकम् ।

सिंहप्रासादवत् कर्णा विधेयाः शुभलक्षणाः ॥ १०६ ॥

मूलमानेन विस्तीर्णा नि(र्गु?गू)ढस्योपरि स्थिताः ।

द्वितीयश्च तृतीयश्च तदूर्ध्वं च समुच्छ्रितः ॥ १०७ ॥

कर्णस्थकलशादूर्ध्वं कर्तव्या मूलमञ्जरी ।

विस्तारो दशभा(गांशानुःगःस्याद्)च्छ्रायो द्वादशांशकः ॥ १०८ ॥

लताभिः पञ्च(वि?)भिर्युक्ता विचित्रैश्चापि कर्मभिः ।

पदपदोऽस्य स्मृतः स्कन्धो ग्रीवा चास्य चतुष्पदा ॥ १०९ ॥

विस्तारेण समा ख्याता पादोनं पदमुच्छ्रिता ।

अण्ड(कां?कं) साङ्घ्रिभागेन (भवि?)पद्भागविस्तृतम् ॥ ११० ॥

पादोनं चन्द्रिकाभागं कलशश्च द्विभागिकः ।

प्रासादं ये सुभद्राख्यं कारयन्ति सुलक्षणम् ॥ १११ ॥

कल्पकोटिसहस्राणि भद्रं तेषां शिवाग्रतः ।

सुभद्रः ॥

सर्वपापक्षयकरस्त्रिषु लोकेषु कीर्तितः ॥ ११२ ॥

जेस्मिन् (?) विजयमिच्छन्ति भोगान् सुविपुलानपि ।
सर्वपापप्रणाशं च कार्यो वा रिपुकेसरी ॥ १४० ॥

रिपुकेसरी ॥

इदानीं (प्रेषःपुष्प)कं नाम प्रासादमभिदध्महे ।
निर्मि(तं:तो) धनदस्यार्थे (यः) पूर्वं विश्वकर्मणा ॥ १४१ ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे चतुर्दशविभाजिते ।
विभज्यस्त्रिपदाकीर्णं (?) चत्वारोऽपि विदि(ग्र?ग)ताः ॥ १४२ ॥

कर्णमकर्णगर्भाद्य(?) सूत्रं तेन समानि च ।
रक्तानि दत्त्वा मृत्राणि तदग्रद्वितयः(?) स्मृताः ॥ १४३ ॥

सूत्रेण चतुरः कर्णान् दिक्स्थानुत्पा(त?द)येत् ततः ।
चत्वारोऽन्ये पुनः कर्णाः संसिद्धाः सर्व(मे?ए)व हि ॥ १४४ ॥

एवमष्टदला(न्) कर्णान् वृत्ताने(वं?व) प्रकल्पयेत् ।
भागप्रवेशविस्तारं कर्णान्ते च जलान्तरम् ॥ १४५ ॥

शाला स्यात् षट्पदायामा त्रिपदोऽस्याथ निर्गमः ।
द्विपदा वाद्यभित्तिः स्यात् षट्पदा कन्दविस्वृतिः ॥ १४६ ॥

कन्दगर्मस्थितं तन्त्रं भ्रामयेत् कर्णकंवत(?) ।
उत्पद्यते ततो वृत्तं समसूत्रं मुशोभनम् ॥ १४७ ॥

कुर्वीत तस्य मध्ये तु कन्दं षोडशपत्रकम् ।
भित्तिकन्दान्तराले यच्छेषं+स्याद्धमन्तिका(?) ॥ १४८ ॥

पुष्पकस्य तलन्यासः पञ्चपुष्पाकृतिर्भवत् ।
इदानीमूर्ध्वमस्यैव कथ्यते मानपूर्वकम् ॥ १४९ ॥

(एकानत्रिंशदन्वृध्यं सा स्युः पदान् पूर्व?) यथाक्रमम् ।
अतो वह्निर्विधानव्यः पीठवन्धः पदत्रयम् ॥ १५० ॥

(नयो?) कुम्भः सपादांशः पादांशः स्यान्मसूरकः ।
अर्थेनान्तरपत्रं स्यात् कपोतार्थी च तत्समा ॥ १५१ ॥

मान्वा विद्याधरी कायो पुष्पहस्तेरलङ्कृता ।
पदद्वादशकोत्सेधः (नगुरः?) स्यात् तुल्योदयः ॥ १५२ ॥

१. 'अथ भ्रामयेत् कर्णकन्दतः' इति खान् ।

अस्य मध्ये विधातव्यो वेदीवन्धस्त्रिभागिकः ।
 पदार्थं खुरकं कुर्याद् भागेनैकेन कुम्भकम् ॥ १५३ ॥
 मन्त्रकं पदार्थेन मेखला पदमानतः ।
 षड्भागमुच्छ्रिता जङ्घा पुष्पके परिकीर्तिता ॥ १५४ ॥
 (वःम)रालग्रा(सःह)मकरैः पुष्पत्रिधाधरैरपि ।
 मूढमकर्णसमा कर्णा (?) चास्य जङ्घा विधीयते ॥ १५५ ॥
 भागेनैकेन भरणं भागेनैकेन पट्टिका ।
 मेखलान्तरपत्रं च भागेनैकेन चोच्छ्रितम् ॥ १५६ ॥
 ऊर्ध्वतस्तलपट्टस्य पट्टस्योर्ध्वस्य मस्तकम् ।
 भागैकादशका तावद् विधेया कर्णचर्चिता(?) ॥ १५७ ॥
 भागेन राजसेनं स्याद् द्विभागो वेदिकोच्छ्रिताः(?) ।
 भवेदासनपट्टश्च भागार्थेन समुन्नतः ॥ १५८ ॥
 चन्द्रावलोकनं कुर्याद् भागिकं त्र्यंशलम्बितम् ।
 आसनस्योर्ध्वतः कुर्यात् स्तम्भं पञ्चपदं शुभम् ॥ १५९ ॥
 हीरग्रहणकं शीर्षं द्वयं सार्धैकभागतः ।
 (गुलाःगल)पट्टश्च भागेन मल्लकाद्यं द्विभागिकम् ॥ १६० ॥
 भागेन लम्बितं तत् स्यात् सुसृष्टं सुमनोरमम् ।
 एतस्योपरिभागेन कर्तव्या (छेदःछाद्य)पट्टिका ॥ १६१ ॥
 पदेनैकेन चास्योर्ध्वं कपोतालयन्तरच्छदे ।
 भागपट्टकेन विस्तीर्णे पञ्चभागसमुन्न(तंते) ॥ १६२ ॥
 शूरसेनं प्रकुर्वीत मध्यवर्तालितोरणम् ।
 वरालग्रासमकरैर्वराहगजसुण्डकैः(?) ॥ १६३ ॥
 एवमादिभिराक्षीर्णमालिन्दस्योपरिस्थितम् ।
 कोणं कुर्यात् पुष्पकूटं पुष्पकर्मनिरन्तरम् ॥ १६४ ॥
 चतस्रो भूमयोऽस्य स्युस्ताश्च न्यूनाः पुरः पुरः ।
 प्रथमा भूमिका + + + + + स्यात् परा परा ॥ १६५ ॥

१. 'द्विमकर्णसमाकर्णा' इति स्यात् । २. 'द्विभागाद् वेदिकोच्छ्रिता' इति

भागस्य कोणस्य च विभक्तित्वात् सप्तः ।
 पर्यां पुनरेव स्थान् कर्मात्सोऽप्यपिणा विष्णा ॥ १६६ ॥
 यावान् पश्यन् वेदवर्षीनां विभक्तित्वात् ।
 मध्ये लतास्य कर्तव्यं भाग्यं च विष्णा ॥ १६७ ॥
 स्वन्ते विपश्चिन्तारं विष्णात्सोऽप्यपिणा ।
 पद्गुणं मन्मथाय लताभिर्यं यमादिभिरु ॥ १६८ ॥
 आलेखं च तनः कवीन् सुष्णं भाग्यं च मम् ।
 भागेन वेदिहोत्रेणाः पदस्यः सप्तमविष्णु र्देवः ॥ १६९ ॥
 भागेनैकेन च श्रिता द्वाभ्यां सामन्तमारुहम् ।
 विशालपत्रसदृशं विभेयं पत्रशीपितम् ॥ १७० ॥
 चन्द्रिका पत्रपत्राभा द्वयमेतन् पदोच्छ्रितम् ।
 व्यंशः स्यात् (कलशोर्मत्या जगत्करनकृष्णलः?) ॥ १७१ ॥
 एवंविधं विधत्ते यः पुष्पकं गुमनोरुमम् ।
 तुष्येत् तस्य धनाधीशः शुभं याति व्रजेव सः(?) ॥ १७२ ॥
 पुष्पकः ॥

वृषो विजयभद्रस्य सुभद्रस्य च लक्षणम् ।
 वल्लभः पण्डुखस्यायं बहुपुण्यविधायकः ॥ १७३ ॥
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे साष्टविंशतिभाजिते ।
 कुर्यादष्टपदं कर्णः(र्ण)भद्रं वास्य चतुष्पदम् ॥ १७४ ॥
 पदेनैकेन निर्यातं सर्वक्रोणेऽप्ययं विधिः ।
 उदकान्तरकं कार्यं पदकलत्रं पदायतम् ॥ १७५ ॥
 दशभागायतं भद्रं कार्यं त्रिपदनिर्गतम् ।
 दिक्षु(येव?) विधेयः स्यान्मुखतो मुखमण्डपः ॥ १७६ ॥
 त्रिपदा वाद्यतो भित्तिस्त्रिपदा चान्धकारिका ।
 मध्ये प्रासादमानं तु कर्तव्यं षोडशांशकम् ॥ १७७ ॥
 कर्णा चतुष्पदा(?) कन्दे भद्राण्येषां पदद्वयम् ।
 निष्क्रान्तानि पदेन स्युः कन्दकर्णाश्रितानि हि ॥ १७८ ॥

१, 'कर्णाश्चतुष्पदाः' इति स्यात् ।

द्विपदश्चास्य निर्गमः ।
त् (सा गन्धसार्गे?) विधीयते ॥ १७९ ॥

पाद् गर्भो द्वादशभागिकः ।
द्वेगुणं द्विकलाधिकम् ॥ १८० ॥

पुलोच्छ्रायस्य मध्यतः ।
क्तं ग्रीवाण्डाद्यं ततो वहिः ॥ १८१ ॥

च? वेदीवन्धोऽशसप्तकम् ।
म्त्रं(?) सार्धभागो मसुरकः ॥ १८२ ॥

यात् सार्धभागेन मेखला ।
र्मिद्वर्चशा वा गल्पट्टिका(?) ॥ १८३ ॥

भागार्धं सार्धभागा वरण्डिका ।
स्याद् रूपकर्मसमाकुलम् ॥ १८४ ॥

र्मि(ध्वे?ध्व)भागो भागैकविंशतिः ।
द्विधातव्यं द्विपदं गजसेनकम् ॥ १८५ ॥

दा प्रोक्ता भागेनासनपट्टकः ।
सार्धेन कार्यं चन्द्रावलोकनम् ॥ १८६ ॥

च्छितः स्तम्भः पत्रकर्मसमाकुलः ।
न भरणं शीर्षकं च द्विभागिकम् ॥ १८७ ॥

कस्तुसौ भागो दारग्रहणमासिकम् (?) ।
पट्टोच्छ्रितिभागचतुष्का बालविस्मृतिः ॥ १८८ ॥

शास्यालवदनोर्ध्वे तु रूपकं चक पट्टिकाः(?) ।
च भागत्रयेण स्यात् तुश्चिष्टा नाधुचित्रिता ॥ १८९ ॥

वर्णेषु भ्रूवाणां विस्मृतिशिपदा श्वेत ।
समानं शिवागं स्याद् ग्रीवाण्डाद्यैः स्त ॥ १९० ॥

ध्वे चतुष्पदा कर्मिणो ह्येकविंशति भावे ।
वन्धायः पदपदस्य इतिहासं द्विपदोच्छ्रितम् ॥ १९१ ॥

भागेन कलसोत्तरेण स्यादेवं कर्णनिति तितिः ।
कृपा + पिरिका प्राया भद्रदेवो तसोच्छ्रितः ॥ १९२ ॥

आद्यस्य कोणकूटस्य विस्तारस्त्रिपदः स्मृतः ।
 परेषां पुनरेषं स्यात् क्रमादूनोऽङ्घ्रिणाङ्घ्रिणा ॥ १६६ ॥
 बाह्यात् परस्परं क्षेपमंशेनांशेन योजयेत् ।
 मध्ये लतास्य कर्तव्या भागपट्केन विस्तृता ॥ १६७ ॥
 स्कन्धे द्विपदविस्तारां विदध्वान्गध्यमञ्जरीम् ।
 पद्गुणं सूत्रमादाय लतारेखां समालिखेत् ॥ १६८ ॥
 आलेखं च ततः कुर्यात् सुशुद्धं भागसुन्दरम् ।
 भागेन वेदिकोत्सेधः पद्भागः स्कन्धविस्तरैः ॥ १६९ ॥
 भागेनैकेन च ग्रीवा द्वाभ्यां सामलसारकम् ।
 विशालपत्रसदृशं विधेयं पत्रशीर्षिकम् ॥ १७० ॥
 नन्दिक्ता पत्रपत्राभा द्वयमेतत् पदोच्छ्रितम् ।
 व्यंशः स्यात् (कलशोर्मृत्या जनकैरवकुड्मलः?) ॥ १७१ ॥
 पत्रंविधं विधत्ते यः पुष्पकं गुणनोपमम् ।
 तुष्येन् तस्य धनाधीशः शुभंयति व्रजेच सः(?) ॥ १७२ ॥

कर्तव्यः सप्तभिर्भागैः सिंहकर्णः सुचर्चितः ।
 कर्णद्वये तथा शृङ्गे तयोरूर्ध्वं चतुर्दिशम् ॥ १९३ ॥
 उरोमञ्जरिकायामादुदया(?)दश पञ्च च ।
 तस्याश्वाष्टपदः कन्दो ग्रीवा भागसमुन्नता ॥ १९४ ॥
 द्विभागमण्डकं कार्यं चन्द्रिका पदमुच्छ्रिता ।
 त्रिपदाः कलशास्तेपां मध्यगान्तरमञ्जरी ॥ १९५ ॥
 (तला?लता)पञ्चकसंयुक्ता चरटकिययान्विता ।
 भागविंशतिविस्तीर्णा कर्तव्या मूलमञ्जरी ॥ १९६ ॥
 द्वाविंशतिसमुत्सेधा स्कन्धो द्वादशभागिकः ।
 मध्या लता (मृःशू)रसेनकर्मरूपसमाकुला ॥ १९७ ॥
 ग्रीवा सार्धपदोत्सेधा कार्या द्विपदमण्डकम् ।
 भागेन (च?म)ण्डिकां कुर्यात् कलशं तु चतुष्पदम् ॥ १९८ ॥
 एकोनत्रिंशदण्डोऽयं प्रासादः शुभलक्षणः ।
 षट्पदं पीठमाख्यातं चरितं पूर्वकर्मवत् ॥ १९९ ॥
 आरोग्यं पुत्रलाभश्च भवेद् विजयकारिणाम् ।
 तेषां तुप्यति षड्वक्रो भक्त्या ये विदधत्यमुम् ॥ २०० ॥
 विजयभद्रः ॥
 अधुना श्रीनिवासाख्यः प्रासादः सम्यगुच्यते ।
 तृप्त्यर्थमेव क्रियते जयश्रीस्तत्र तिष्ठति ॥ २०१ ॥
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे भक्तेऽष्टादशभिः पदैः ।
 भन्धारिका च भि(त्ति?त्ति)श्च पदं द्वे द्वे यथाक्रमम् ॥ २०२ ॥
 गर्भश्च षट्पदः कार्यः श्रीनिवासस्य सुन्दरः ।
 कन्दे स्युद्विपदाः कर्णा भागेन सन्निधान्तरम् ॥ २०३ ॥
 भद्रं चतुष्पदं कार्यं पदेनैकेन निर्गतम् ।
 वाद्याः स्युन्निपदाः कर्णा भद्रंश्च द्विपदैर्गुताः ॥ २०४ ॥
 भद्रं चतुर्थकर्णं(पू?तु) पदेनैकेन निर्गतम् ।
 कोणकोणाश्च कर्तव्याः पदस्यार्धं समायताः ॥ २०५ ॥

पदेनाम्बुधरः कार्यः प्रवेशाद् विस्तृतेरपि ।
 विस्तारात् षट्पदं भद्रं पदद्वितयनिर्गमम् ॥ २०६ ॥
 नीरस्यालान्तरे(?) कार्या(?) तिलका द्व्यंशविस्तृताः ।
 पदेनैकेन निष्क्रान्ताः शोभिताश्चारुकर्मणा ॥ २०७ ॥
 ऊर्ध्वमानमथ ब्रूमः श्रीनिवासे यथाक्रमम् ।
 खुरकस्योच्छ्रितिः पीठे पादोनं पदमिष्यते ॥ २०८ ॥
 कुर्यात् सपा(दोःदे)नांशेन जाड्यकुम्भ(ः?)समुच्छ्रितिम् ।
 भागेनान्तरपत्रे तु भागेनैकेन मेखलाम् ॥ २०९ ॥
 पीठोत्सेधश्चतुर्भागः श्रीनिवासे भवेदिति ।
 वेदीवन्धस्य खुरको भागार्धेन समुन्नतः ॥ २१० ॥
 कुम्भकः सार्धभागेन तदर्धेन म + + + ।

[इत ऊर्ध्वमादर्शग्रन्थे द्वे पत्रे (१६८, १६९ तमे) लुते । तयोराहत्य उपपञ्चाद्याः
 श्लोका नष्टाः संभाव्यन्ते ।]

+ + + + + + + + + + पञ्जरात् ॥
 त्रिभागेन तु भागस्य अष्टशृङ्गस्य(?) पक्षकः ।
 नष्टशृङ्गस्य (?) शृङ्गस्य चान्तरे संलिलान्तरम् ॥
 अन्योन्यं शृङ्गानिष्कासो भागेनैकेन शस्यते ।
 दशभागायतं भद्रं चतुर्थांशेन निर्ग(म)नम् ॥
 एवमेष तलच्छन्दः कथितः सुरसुन्दरे ।
 ऊर्ध्वमानमथ ब्रूमो भागशुद्धया यथाक्रमम् ॥
 पीठादारभ्य विस्ता(रोःराद्) द्विगुणा स्यात् समुन्नतिः ।
 उपपीठेऽप्यलङ्कुर्याद् भागमेकं समुन्नतम् ॥
 पदेन पादहीनेन (गजा?)द्वारसमुन्नतिः ।
 उच्छ्रितिर्जाट्यकुम्भस्य सार्धभागा विधीयते ॥
 फलशोत्तरपत्रे च पादहीनपदांजने(ः?) ।
 अस्यादूर्ध्वं तु कर्तव्या पदार्थं शान्तपट्टिका (?) ॥

१. 'मदरुम्' इति एतात् ।

का नाम सप्तपञ्चाशोऽध्यायः

सार्धमुच्चैः पदद्वयम् ।

क स्यात्(?) तत्पदं वांगदण्डकम् ॥

श्रायो भद्रे स्यात् छत्रविस्तृतिः ।

न्तश्चा(?) शोभितश्चारुकर्मणा ॥

: कार्यः सिंहकर्णो मनोरमः ।

रुमञ्जर्याश्चतुर्दशपदो भवेत् ॥

तेषु तु मातृभिः(?) पत्रकोशवत् ।

पदः प्रोक्तो ग्रीवा सार्धपदोच्छ्रिता ॥

डकोत्सेधश्चन्द्रिकार्धपदोन्न(तः?)ता ।

त्रेपदं प्राहुर्मातुलिङ्ग(स्य?)समुद्भवम् ॥

सु मूलमञ्जर्याः कुर्वीत शिखरत्रयम् ।

सुप्रसन्नं च सर्वदेशिविभूषितम् ॥

श्चाशं(?) भवेदस्मिन्नण्डकानां शतद्वयम् ।

श्रेष्ठोऽयमारुह्यातः प्रासादोऽण्डरूपानतः ॥

सप्तशतमेकान्नसप्तत्या युतं स्यान्मध्ये पुनः ।

एकोत्तरं श(रं?)तंप्राहुरण्डकानां कनीय(साम?)सि ॥

मन्दारकुसुमाकारा(ण्या?)ण्येतानि सुरसुन्दरे ।

कुर्याद् (य) एनं प्रासादमीदृशं सुरसुन्दरम् ॥

स वैरिञ्चं (यु)गशतं सूर्यलोके महीयते ।

सुरसुन्दरः ॥

नन्द्यावर्तमथ ब्रूमः प्रासादं नृपद्विदम् ॥

भूषितं (मना?)नाग)कन्याभिर्वल्लभं पृथिवीयुजाम् ।

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे दशधा प्रविभाजिते ॥

पदद्वयमिदं यत्र नादाय(?) ब्रह्मणः पदात् ।

दृत्तं समालिखेद्गर्भा वस्मैलं च तुलं(?) भवेत् ॥

भागेन च तुलो(?)भित्तिर्भागेन स्याद् भ्रमन्तिका ।

भागेन वाल्मिक्तिः स्यात् पदपञ्चकवजिता ॥

1. 'पलादादाय' इति स्यात् ।

कन्दे (वि?द्वि)भागं कुर्वीत पुष्पशेखरकं ततः ।
 द्विपदा बाधतः कर्णा विधातव्यास्तु वर्तुलाः ॥
 यथागात्रं विधातव्याः स्वस्तिकाकृतयश्च ते ।
 चत्वारो रथिका(कन्दो कोणे कर्णे?) चतुष्टयम् ॥
 पञ्चभागायतं भद्रं सार्धभागविनिर्गमम् ।
 भद्रान्नपातिनी कुर्यान् प+ञ्जे पदसंमिते ॥
 शेषं भद्रं तु कर्तव्यं विस्तारेण त्रिभागिकम् ।
 भागस्यार्धेन विस्तीर्णं तथा भागप्रवेशकम् ॥
 एतन्प्रमाणं कर्तव्यमिदं प्राज्ञैर्जन्यान्तरम् ।
 तल्ललन्दानुगं भद्रं नन्द्याव(र्ते?ते) यथाक्रमम् ॥
 ऊर्ध्वपानमथ श्रुप्तो नन्द्याव(र्ते?ते)यथाक्रमम् ।
 सार्धभागद्वयोच्छ्रा(या)पारगं तस्य(?)दूर्ध्वतः ॥
 (कार्यतुल्योदयस्य+?) मध्ये भागैस्त्वथाष्टभिः ।
 तुल्योदयस्य मध्ये स्याद् वेदीविन्धो द्विभागि(के?क): ॥
 भागिकः कुम्भकां गेनः(येथो) मेगलाकलशान्वितः ।
 चतुर्भागा भवेज्जहा नागिकं भरणं भवेत् ॥
 मेगलान्नमपत्रं तु भागेनैकेन कल्पयेत् ।
 पादेन गजमेनं स्याद(वद्वत्तच पट्टतः?) ॥
 वेदी साष्टपदात्मैः सा भागपादेन चागनम् ।
 भागैरेन नरे कुर्यात् भागं (पित्रवल्कोकते?) ॥
 पादोनविपदः स्यस्यः पट्टवैरुपशांपिनः ।
 शैरुप्रदशर्यापि च कुर्यात् भागसमुच्छ्रिति ॥
 पट्टवैरुपदोन्मेषं चाशकं द्विपदायदम् ।
 भागेन कुर्याद्दूरैः पश्चिमां चारु दर्षणा(प?) ॥
 वेदीवैरुच्छ्रितः सिद्धयः स्यात्तुल्ययतः ।
 पश्चिनेः ऋग्मेन्दो, स च शर्या(र्ते?ते)दोद्वतः ॥

१. - क्व चत्वारो रथिकाः कन्दो कोणे कर्णे चतुष्टयम् इति भावः ।

२. - चत्वारो रथिकाः इति भावः ।

विस्ताराद् द्विपदे शृङ्गे सार्धभागद्वयोच्छ्रिते ।
 अस्योर्ध्वमन्यशृङ्गं स्यात् सदृशो(च्छ्रि?)परिस्तुति(ः?) ॥
 प्रत्य(ङ्गस्तु व?ङ्गेषु च) कूटानि सार्धांशोच्छ्रायवन्ति च ।
 द्वितीयः सिंहकर्णः स्यान् सिंहकर्णस्य मस्तके ॥
 (तंतो शृङ्ग?) तृतीयः स्याच्चतुर्थस्तस्य चोपरि ।
 पद्भागविस्तृता कर्ण(ः?)कूटस्था मूलमञ्जरी ॥
 सप्तभागोच्छ्रिता च स्यात्(स्कन्धस्यच शोच्छ्रितिः?) ।
 स्यादुरोमञ्जरी मूलमञ्जर्या मध्यसंश्रया ॥
 भागैश्चतुर्भिविस्तारः पद्मिश्चास्याः समुच्छ्रितः ।
 कलाण्डकसंयुक्ता कर्णाभ्यन्तरमञ्जरी ॥
 स्यादण्डककविशत्या नन्द्यावर्तः सुलक्षणः ।
 भक्त्या ये कारयन्त्येनं नन्द्यावर्तमनुत्तमम् ॥
 विमानं शुभमास्त्र शक्रलोकं व्रजन्ति ते ।

नन्द्यावर्तः ॥

प्रामादमथ वक्ष्यामः पूर्णं पूरितवाञ्छितम् ॥
 वन्दि(तैः?)तं किञ्चरैर्यक्षैर्मनुष्यपितृवह्लभम् ।
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे दशभागविभाजिते ॥
 विस्तर(र?राद्) द्विपदो गर्भः कार्या भित्तिस्तु भागिका ।
 द्विपदं कन्दभद्रं च निर्गमोऽस्यार्धभागिकः ॥
 शोभना दि(पु?क्षु) सर्वास्तु द्विपदा च भ्रमन्तिवा ।
 पदिका दायभिच्चिस्तु द्विपदा कर्णविग्रहदिः ॥
 आयत्या चतुरो (भागदण्डभिर्बोदिनिर्गमाः) ।
 भद्रं सुशोभनं तरया द्विदि 'नन्द्यावर्तं' द्विभागिकम् ॥
 पर्णस्तु पदिका(?) पद्मभद्रं भागाभित्तित्वम् ।
 जलान्तरं तु भागादेस्मात्कयोवनेः समम् ॥
 चतुर्भागा बलस्वारदा नन्द्या भित्तिस्तु भागिका ।
 नामाष्टदिशोर्वाणां चतुर्णां दीर्घिचारपेक्षु ॥

१. 'एतः शरी' इति खपा. २. 'एतः शरी' इति खपा. ३. 'एतः शरी' इति खपा.

पूर्वतः कारयेद् द्वारं चतुर्गर्भेऽत्र मन्दिरे ।
 ऊर्ध्वमानं तु वक्ष्यामः प्रासादस्यास्य सम्प्रति ॥
 पीठं द्विभागिकं कार्यं वेदीयन्थो द्विभागिकः ।
 जङ्घा पदचतुष्कं च शोभिता रूपकर्मणा ॥
 पदद्वयं तु कर्तव्यं (हीनरं?)सातपत्रकम् ।
 कलशाण्डकयुक्तानामुच्छ्रायस्त्रिपदो बुधैः ॥
 कर्तव्यः कर्णशृङ्गाणां सर्वेषामपि मानतः ।
 चतुष्पदोच्चा बलमी वण्टाकलशसंयुता ॥
 मलच्छाद्यत्रयं कुर्यात् कर्णशृङ्गस्य चोपरि ।
 युक्तमन्तरपत्रेण भागोच्छ्रायं पृथक् पृथक् ॥
 भागेनैकेन वण्टा स्याद् (भद्रा/भागा)भ्यां कलशाण्डके ।
 समूलकलशे कर्णे मूत्रं सम्पातयेद् बुधः ॥
 मलच्छ्रायं विधातव्यं मूत्रेणैकेन लाञ्छितम् ।
 प्रासादमेवं पूर्णायुष्यैः कुर्याद् भक्तिमानिमम् ॥
 (सप्तकामः+?) पुरुषः (स?श)र्षलोके महीयते ।

पूर्णः ॥

सिद्धार्थमथ वक्ष्यामः सर्वकामार्थसिद्धि(क?द)म् ॥
 कामाः सिध्यन्ति यत्कर्तुरिहृल्लोके परत्र च ।
 चतुरश्रे समे क्षेत्रे विभक्ते दशभिः पदैः ॥
 कुर्वीत पदपदं गर्भं ++ चास्य चतुष्पदम् ।
 भागेनैकेन रमणीं वाद्यभिनिं च भागिकीम् ॥
 कुर्वीत द्विपदान् कर्णाच्च शाल्यां पदभिः पदैर्बु(धै?धः) ।
 तदूर्ध्वं कर्णशृङ्गाश्च(हं च) यथाशोभं प्रकल्पयेत् ॥
 त्रिपदं निर्गमं तस्याश्चतुष्कीश्च चतुर्दिगम् ।
 मध्ये बहिश्च कुर्वीत नन्या द्वारचतुष्टयम् ॥
 उन्नतं भागविद्यान्या मानस्योर्ध्वतो भवेत् ।
 त्रिपदः पीठयन्त्रः स्याद् द्विगुणोच्छ्रायवादनः ॥

सार्धं भागद्वयं कार्यो वेदिवन्धस्तु शोभनः ।

अर्धकुम्भेकमर्देच मेखलां समसूरकः(?) ॥

जङ्घा सार्धचतुर्भागा कार्योच्छ्रायेण शोभना ।

मेखलान्तरपत्रे च भागेनैकेन कारयेत् ॥

खुरका(द) मेखला यावत् सप्तभागान्तरं भवेत् ।

भागार्भ्यां राजसेनं च कुर्याद् वेदीं च सासनाम् ॥

त्रिभागं स्तम्भमुत्सेधाद् भागस्यार्धेन हीरकम् ।

भागार्धं स्तम्भशीर्षं स्याद् भागः पट्टस्य चोन्नतिः ॥

सूर्यच्छाद्यो द्विभागः स्याद् भागेनैकेन लम्बना(ः?) ।

शृङ्गोत्सेधस्त्रिभागश्च कलशाण्डवासंयुत(सूः) ॥

चतुर्भागोन्नतः सिंहकर्णः पट्टभागविस्तृतः ।

कुर्यात् शृङ्गयोर्द्वयं शोभनां मूलमञ्जरीम् ॥

अष्टाभागप्रविस्तीर्णा नवभागसमुच्छिद्र(तर्धनाम्) ।

स्कन्धः पञ्चपदो ज्ञेयो ग्रीवा चार्धपदोच्छिद्रता ॥

अण्डकं भागमात्रं स्याद्द्वयं भागेन चन्द्रिका ।

वर्तुलः समविस्तारः कालशस्तु द्विभागिकः ॥

भद्रे वराटकाश्चेष्ट वर्तव्या हेमकूटवत् ।

यः कुर्यात् कारयेद् यस्तु सिद्धार्थं सर्वकामदम् ॥

स भवेत् सर्वकामामिः शिघ्रलोके च जायतेः ।

सिद्धार्थः ॥

अथाभिधीयते सर्वपापघ्नः केशवर्धनः ॥

आलयः सर्वदेवानां प्रासादो ससूतां प्रियः ।

चतुश्चरं नसे द्वेष्टे गभी कर्णेः प्रियोचितम् ॥

वर्तुलं कारयेत् पश्चान् सर्वकामेषु वाञ्छितम् ।

विस्तारार्थं भवेत् गभी कर्णेः च तं प्रियः ॥

द्विशृणुं कारयेद्दुर्गं भागविस्तीर्णमाजिते ।

तुलोदशोऽष्टभागः स्याद् भागार्भागा च सञ्जरी ॥

कुम्भकं कलशं द्वाभ्यां कपोतालीं च कल्पयेत् ।
 पञ्चभागोच्छ्रिता जङ्गा मध्येऽस्या ग्रासपट्टिका(म्) ॥
 मेखलान्तरपत्रे च भागेनैकेन कारयेत् ।
 भागार्धं कारयेत् प्रातः (संख्या?शङ्खा)वर्तकमञ्जरीम्
 गङ्गावर्तककूटांश्च विदधीत+विस्तरात् ।
 शतवाम्नुविभक्तेऽस्मिन् या+मानानुमारतः ॥
 स्कन्धो विधेयो ग्रीवा च भागार्धेन समुच्छ्रिता ।
 चन्द्रिका शिरसा मूर्धं कार्या सार्धपट्टोन्नता ॥
 द्विपदः कलशोच्छ्रायः कर्तव्यः शङ्खवर्धने ।
 गर्भ(श्वा?स्या,च्छादनं कुर्यात् (संख्या?शङ्खा)वर्तवितानक
 यः शङ्खवर्धनं कुर्यात् स भुनक्ति चिरं महीम् ।
 वशगा चास्य सततं भवेच्छम्भीजलाञ्चलिः (?) ॥
शङ्खवर्धनः

त्रैलोक्यभूपणं वृषो वन्दितं त्रिदशैरपि ।
 आश्रयं सर्वदेवानां पापस्य च दिनाशनम् ॥
 त्रिंशद्धस्तः कनीयान् स्यान्मध्यमस्त्रिदशाधिकः ।
 पञ्चाशद्धस्त उत्कृष्टस्त्रिभि(धं?धो) हस्तसंख्यया ॥
 चतुरथे समे क्षेत्रे त्रिंशद्(क्तोप?क्ते प्र)कल्पयेत् ।
 दशभागायतं गर्भं कन्दं द्विगुणसप्तकम् ॥
 चतुष्पदं कन्दक(र्त?र्ण) भद्रं चास्य द्विभागिकम् ।
 कुर्वति पदपदां शालां भागेनैकेन निर्गताम् ॥
 अन्धोऽर्धद्विपदे चास्य द्विपदाश्चात्र भित्तयः ।
 शृङ्गमेकं भवेन्मध्ये विस्तारेण चतुष्पदम् ॥
 मध्ये शृङ्गस्य चान्तः + + + पङ्कदारुकं भवेत् ।
 द्वयंशा द्वितीया रमणी(या?) वाद्यभित्तिद्विभागिका ॥
 कर्णशृङ्गद्वयं कार्यं विस्तारेण चतुष्पदम् ।
 द्वादशांशमिना शाला निर्गमोऽस्याः पदत्रयम् ॥

१. 'छम्भीः कृताञ्चलिः' इति स्वात् ।

प्राकर्णशृङ्गमष्टांस्तिस्यादुर्जनफलोपमम् (?) ।
 ++ द्विशृङ्गभागेन विनिष्क्रान्तं चतुष्पदम् ॥
 द्विपदं तस्य भद्रं च निर्गमो द्विपदं भवेत् ।
 शृङ्गयोरुभयोर्मध्ये पदार्थं पक्षभद्रकम् ॥
 पदार्थं वारिमार्गश्च प्रक्षेपः पदसंमितः ।
 ऊर्ध्वमानमथ ब्रूमः पष्टिभागसमुच्छ्रितम् ॥
 तुलोदयस्ततो (विंशपञ्चमृदनुमञ्जरी?) ।
 (स नृसंसत्यदोच्छ्रायो?) भागेष्वेव विधीयते ॥
 तुलोदयस्य मध्ये तु वेदी पञ्चपदोदया ।
 तदर्थं कुम्भकं कुर्यात् तद्वत् कलशमेखला ॥
 एकादशपदा जह्या हीरकं तु पदत्रयम् ।
 द्वां भागां मेखला तद्वद् द्वितीयापि सतारका ॥
 ऊर्ध्वतस्तल्पद्वयस्य प+पोडशभिः पदैः ।
 राजसेनं सार्धभागं वेदी कार्या द्विभागिका ॥
 पदार्थमाननं सार्धपदं चन्द्रावलोकनम् ।
 स्तम्भः सप्तपदो(दूर्ध्वद्वार?) सार्धत्रिभागिकम् ॥
 शीर्षं सार्धपदोत्प्रेथं पक्षस्तु द्विपदो भवेत् ।
 त्रिपदं आद्यकं कुर्याद् भागेनैकेन लम्बितम् ॥
 द्विपदां लेद्वदारां तु(?) द्वयंशा वा सन्तु पष्टिपदाः ।
 तदूर्ध्वं मञ्जरीं कुर्याद् द्वाविंशत्यभूषितम् ॥
 सप्तोच्छ्रितं कोणकूटं त्रयण्डकलशाण्डकम् ।
 द्वितीयामेतदूर्ध्वं च तन्मानेनैव कारयेत् ॥
 कर्णे कर्णं समाश्रित्य पदपदानि तु कारयेत् ।
 (पंष्टाण्डकः) द्वे कुर्यात् पदसंज्ञितम्) वाचतुष्पदम् ।
 एवं कर्णाण्डकानि सप्तधत्तार्थिभ्यं सन्तान्ततः ।
 शतमांशवादिनारहृत्तानामालम्बभागिकम् ॥

१. 'दूर्ध्वद्वार' इति स्थाने 'दूर्ध्वद्वार' इति वाच्यं ।

आद्यक्रमे विजानीयाद् द्वाविंशतिभक्रियान्वितम् ।
अष्टाण्डकं समुत्सेधाद् विस्ताराद् दशभागिकम् ॥

भद्रक्रमं द्वितीयं तु विद्यात् कर्मविभूषितम् ।
विस्तारो मूलमञ्जर्या द्वाविंशत्यंशसंमितः ॥

त्रयोविंशतिरुच्छ्रायः स्कन्धाश्चैव त्रयोदश ।
ग्रीवा प(द्वःद)द्वयोत्सेधात् त्रिपदोन्नतमण्डकम् ॥

कर्परं द्विपदं भागचतुष्कं कलशोच्छ्रयः ।
प्रासा(दा?दे)द्वादशतस्मिन्पुरोमञ्जरिका मताः ॥

अण्डकानां तु विज्ञेयं त्रिसप्तत्यधिकं मतम् ।
त्रैलोक्यभूषणं कृत्वा त्रिदशानन्दकारकम् ॥

कल्पान्तं यावदध्यास्ते पुरुषस्त्रिदशालयम् ।

त्रैलोक्यभूषणः ॥

प्रासादमथ पद्माख्यं कथयामोऽश्विनोः प्रियम् ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे सप्तभागविभाजिते ।

त्रीन् भागान् मध्यमे त्यक्त्वा द्वौ (द्वौ) कोणेषु लाञ्छयेत् ॥

(सा द्वयेद्वभिः)गष्टौ च पश्चादपि च षोडश ।

विस्तारार्थेन गर्भः स्याद् विस्तारार्थं तथा वहिः ॥

ऊर्ध्वमानमथ त्रूमः पद्माख्यस्य यथाक्रमम् ।

विस्ताराद् द्विगुणोत्सेधं भागविंशतिभाजितम् ॥

वेदी जङ्घा तथैतस्मिन् कार्या मालाथ मञ्जरी ।

ग्रीवाण्डकलशाश्चैह शङ्खवर्धनवर्त्मना ॥

पद्माख्यः कारितो येन प्रासादो द(शःस्र)वृष्टभः ।

आत्मा समुद्धृतस्तेन पापपङ्कमहोदधेः ॥

पद्माख्यः ॥

पक्षवाहुमथ त्रूमः प्रासादं कुलनन्दनम् ।

सर्वरोगहरं पुण्यं सर्वलोकक्षणं भवं(?) ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे द्वादशांशविभाजिते ।

अष्टभागायतं गर्भं कुर्याद् भित्तिर्दिभागिका ॥

द्विपदं कारयेत् कर्णं भागार्थमुदकान्तरम् ।
 प्रत्यङ्गं सार्धभागे (साऽस्यात्) शाला चैव चतुष्पदा ॥
 निष्क्राम(मुऽ)भयोर्भागाद् भागार्थेन पृथक् पृथक् ।
 कर्ते(व्याऽव्या) पक्षयोर्वाहू विस्तारे(प्त्रऽणा)ष्टभागिकौ ॥
 चतुष्पदस्तयोर्गर्भो द्विपदा भित्तिविस्तृतिः ।
 चतुर्भागं भवेद् भद्रं कोणश्चैव द्विभागिकः ॥

ऊर्ध्वमानमथ ब्रूमश्चतुर्विंशतिभागिकम् ।
 त्रिपदो वेदिकावन्धो जङ्घा पञ्चपदोन्नता ॥
 द्वौ भागौ कलशः कार्यो द्वौ भागौ चन्द्रिकाण्डकम् ।
 मध्ये तु मञ्जरी कार्या घण्टा(वधऽवद्धा) च पार्श्वयोः ॥
 पक्षवाहुः कृतो येन त्रिगर्भः कर्मभूपितः ।
 स त्रिनेत्रप्रतापः स्या(चऽत्) तुरङ्गव्रातनायकः ॥

पक्षवाहुः ॥

विशालं सम्प्रवक्ष्यामि विशालैरन्वितं गुणैः ।
 दयितं कृत्तिकामूनोः पूजितं गणकिञ्चरैः ॥
 क्षेत्रे(त्रं) दशांशं कुर्वीत पद्मभागा मध्यमञ्जरी ।
 भागिकयो भित्तयः कार्यो भ्रम(न्त्यभिःन्त्योऽपि) तथाविधाः ॥
 भागद्वयं भवेत् कर्णो वारिमागंण संयुतः ।
 पदेन तिलकं कुर्याद् भागार्थेन विनिर्गतम् ॥
 आयामनिर्ग(माऽमौ) चास्य चतुर्भागा चतुष्पिका ।
 चतुष्पदो मध्यग(र्भऽर्भः) चतुर्द्वारस्य शस्यते ॥
 विस्ताराद् द्विगुणोन्नता(यान्गृऽयम्)र्ध्वमानं विधीयते ।
 विदध्याद् वेदिकावन्धं सार्धभा गयनेन संमितम् ॥
 सार्धैधतभिः कुर्वीत भागैर्जङ्घोच्छ्रितं द्युयः ।
 मान्दान्तरपत्रं च भागैर्नेकेन कारयेत् ॥
 सार्धद्विभागिकं शृङ्गं कलशाण्डकर्मयुतम् ।
 तन्सार्धमपरं शृङ्गं तावन्मानं विधीयते ॥

द्विपदं कलशं कुर्यात् साञ्जपत्रं सपल्लवम् ।
आरोग्यं स्यात् पुरोदेशे कारिते कमलोद्भवे ॥

आयुःश्रीवृद्धिपुत्राः स्युरपयानां(?) च संख्यया ।

कमलोद्भवः ।

हंसध्वजमथ ब्रूमो हंसक्रीडाविभूषितम् ॥

सेवितं सुरसङ्घेन वल्लभं पद्मजन्मनः ।

विभज्य दशधा क्षेत्रमारभ्य ब्रह्मणः पदात् ॥

आदाय पार्श्वयोर्भागांस्त्रींस्त्रीन् वृत्तं प्रकल्पयेत् ।

एवं गर्भो विधातव्यश्छाद्यस्य (जगतालुभिः?) ॥

द्विपदा बाह्यतो भित्तिः कर्णः कार्यो द्विभागिकः ।

भद्रं पञ्चपदं कार्यं पदार्धमुदकान्तरम् ॥

द्वौ भागौ निर्गतं भद्रं स्तम्भद्वयसमान्वितम् ।

मध्ये तुच्छाद्यकं कुर्याद् वातोच्छ्रायं(?) द्विविस्तृतम् ॥

कुर्याद् भागं सविस्तारं तोरणं चतुस्त्रतम् ।

वरालमकरैर्युक्तं स्तम्भेषु स्यात् तथेष्टिकाः ॥

पुरस्तान्मण्डपं प्राज्ञो (रवाय?रचये)न्मानपूर्वकम् ।

ऊर्ध्वमानमथ घृमः सूत्रं स्याद् भागविंशतिः ॥

मेखलावेदिकाजङ्घाः शङ्खवर्धनवन्मताः ।

कर्तव्याः कर्णरथिकास्त्रिपदाः कलशान्विताः ॥

चतुष्पिका पञ्चपदा वराटीघट्यान्विता ।

कार्या कलशसंयुक्ता विस्तारोच्छ्राययोः समा ॥

काणभृङ्गोर्द्वयः(?) कुर्यादष्टांशां मृत्मञ्जरीम् ।

उन्दिता नवभिर्भर्गिः पञ्चभौमान्तु संघताः ॥

प्रथमा द्विपदा भूमिरेमद्वयक्रियोपमा ।

अन्यास्तु पदपादार्धरीनाः कार्या यथोत्तरम् ॥

१. 'भागोच्छ्रायम्' इति स्यात् । २. 'वर्णशङ्खोर्द्वयः' इति स्यात् भावि ।

महारत्नपुनः(?) कार्यो भूमिकापरिवर्तने ।
भागेन वेदिकोच्छ्रायः स्कन्धस्तु शतवास्तुवत् ॥

ग्रीवाण्डकसमुत्सेधं विदधीत पदद्वयम् ।
अण्डके वर्तना कार्या कङ्कतीफलसन्निभा ॥
चन्द्रिका भागमेकं च द्वौ भागौ चेत् + + + + ।
हंसध्वजः कृतो येन वल्लभः पञ्चजन्मनः ॥
स याति विविधैर्यानिर्देहान्ते वसु+गतिम् ।

हंसध्वजः ॥

अथ लक्ष्मीधरं ब्रूमो यं कृत्वा विजयं नरः ॥
राज्यमायुष्यपूजां च गुणानामोति चैश्वरान् ।
चतुरश्रीकृते क्षेत्रे भक्ते षोडशभिः पदैः ॥
कर्तव्यः पदपदः कन्दो गर्भसूत्रचतुष्पदः ।
चतसृष्वपि दिक्षु स्यात् त्रिभिर्भागैर्भ्रमन्तिका ॥
द्विपदा वाह्यभित्तिः स्याच्छुभा कार्या चतुर्दिशम् ।
कर्णेषु शृङ्गमेकैकं द्वे द्वे शृङ्गे तु मध्यगे ॥
द्वयंशानि तानि विस्ताराद् दशशृङ्गाणि दि(क्रयेत्?कत्रये) ।
पदशालाश्च विधातव्याः शुभा दिक्षु तिसृष्वपि ॥

१) याम्येन (च) चतुर्भागा भागद्वितयनिर्गताः ।
तलच्छन्दोऽयमुद्दिष्टो मण्डपः पुरतो भवेत् ॥
विस्ताराद् द्वि(गुणा सासः?णो यामः)प्रासादस्यास्य चोच्छ्रायः ।
स्यात् त्रयोदशभागोऽत्र ग्रामाणेन तुलोदयः ॥
ऊर्ध्वं च विंशतिपदं वेदीवन्धः(?) पदत्रयम् ।
उत्सेधात् पदपदा जङ्घा भागेन भरणं भवेत् ॥
भागैस्त्रिभिर्मेखले द्वे शृङ्गं च कलशं त्रिभिः ।
उच्छ्रायेण विधातव्यः सिंहकर्ण(च?श्च)तुष्पदः ॥
दश शृङ्गाणि कुर्वीत घण्टा(पक्कं?)च (विक्र?दिक्र?)ये ।
चतुर्दशांशविस्तारा पञ्चगा(?) मूलमञ्जरी ॥

१. 'मदान् यत्नः पुनः' इति स्यात् ।

ऊर्ध्वं सप्तदशांशा च त्रीदोच्छ्रायः पदद्वयम् ।

अण्डकं द्विपदं कार्यं भागेनैकेन कर्परम् ॥

कलशं त्रिपदं मूर्ध्नि वर्तयेत् सुमनोरगम् ।

लक्ष्मीधराख्यं प्रासादं यः कुर्याद् वसुधातले ॥

अक्षये स पदे तच्चे लीयते नात्र संशयः ।

लक्ष्मीधरः ॥

महावज्रमथ वृमः (प्र?प्रे,त्यपापहरं शुभम् ॥

प्रासादे का(रये?रिते) यत्र सुरेन्द्रः परितुष्यति ।

अष्टौ हस्तान् कनीयान् स्यान्मध्ये द्वादश मानतः ॥

उत्तमः षोडश प्रोक्तस्त्रिधेवं करसंख्यया ।

स्वविस्तारस्य चतुष्टये + + क्षेत्र)मालिभ्य वर्तुलम् ॥

कोणेषु लाञ्छितं कृत्वा जानैः पदत्रिंशता भजेत् ।

द्विपदाः कर्णिकाश्चेह कार्यौ द्वादशसंख्यया ॥

कर्णिकाद्वयमध्ये तु स्तम्भो भागे च वर्तुलः ।

शतपत्राकृतिः कार्या ह्यै भागौ सूक्ष्मानतः ॥

अधस्तान्मेखलायाश्च कमलोद्भववद् भवेत् ।

स्तम्भयेत् कर्णिकायध्ये तेषु कूटानि कारयेत् ॥

कुर्याद्दालेभ्युपरि कर्णिकायाः सुशोभनम् ।

कर्तव्या भूमयः पञ्च क्रमेषाचनयान्विता (?) ॥

स्याद् भागार्थेदया त्रीदा विस्तारेण चतुष्पदा ।

अण्डकं त्वाधेभागेन विधातव्यं त्रिकर्परम् ॥

भागद्वयं तु कलशः शृङ्गकर्णैः सप्तद्वयैः ।

यः करोति महाप्रज्ञं प्रासादं पुररक्षणम् ॥

तुष्टौ विधिं स्वान्पञ्चो रत्ने तेभ्यस्तरोजयैः ।

महावज्रः ॥

रतिदेवमथ वृमः प्रासादं सुमनोरगम् ॥

अप्सरोगणसंकीर्णं प्रासादेदयं समिधसम् ।

अष्टभागीद्वये कर्णे सप्तभागे सप्तद्वये ॥

घण्टायाः सार्धभागेन ग्रीवायाश्च पदा(दि?धि)का ।
कर्तव्यामलसारी तु (पादोनांशायवण्डिकाम्?) ॥

द्विपदः कलशः कार्यो वीजस्वरसमन्वितः ।
पञ्चघण्टावृतं कृत्वा विमा(ना?नं) पञ्चचामरम् ॥

(अतीतविस्त्वयान सर्वान् लोकः प्राप्नोति सम्भव?) ।

पञ्चचामरः ॥

नन्दिघोषमथ व्रूमो विपक्षभयनाशनम् ॥

य एनं भक्तितः कुर्याद् रु भवेदजरामरः ।
चतुरश्रे समे क्षेत्रे चतुर्भागविभाजिते ॥

भद्रं द्विभागविस्तारं कुर्याद् भागविनिर्गमम् ।
भित्तिरत्र न कर्तव्या दिशि कस्यामपि ध्रुवम् ॥

कुर्वीत राजसेनं तु वेदिचन्द्रावलोकनम् ।
दिक्षु क्रमोऽयं सर्वासु त्यक्त्वा मार्गचतुष्टयम् ॥

विस्तारसदृशोच्छ्राया कर्तव्या पूर्वभूमिका ।
वक्ष्यमाणैर्विभागैश्च विप्रभज्यासजाः ++(?) ॥

भागेन राजसेनं स्याद् वेदिर्भागद्वयेन च ।
भागेन चन्द्रालोकः स्यादर्धेनासनपट्टकः ॥

स्तम्भोच्छ्रायस्त्रिभिर्भागैस्ततो भागेन शीर्षकम् ।
पट्टोच्छ्रायो भागमेकं स्याच्चतुर्विंशतिर्धराः ॥

नानासङ्घैः पट्टैश्च चारुकर्मकराननं ।
द्वितीया भूमिका कार्या स्तम्भैः षोडशभिर्युता ॥

एवं भूमौ द्वितीयायामपि क्रमं विधीयते ।
स्तम्भैश्चतुभिः संयुक्ता तृतीयायां चतु(धि?ष्कि)का ॥

नन्दिघोषः कृतो येन (मूयं तेजो?) स जायते ।
कर्मक्ष(या तुतुं?द् तनुं) त्यक्त्वा प्राप्नोति परमं पदम् ॥

नन्दिघोषः ॥

अथ हर्षं प्रवक्ष्यामि सर्वलोकप्रहर्षणम् ।
 नित्यं वसति यत्र श्रीः स्थानं यद् विश्वकर्मणः ।
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे भक्तेऽष्टादशभिः पदैः ।
 प्रतिकोणं विधातव्याः (कणेभागो?) स्त्रिभिस्त्रिभिः ॥
 द्विपदं कर्णभद्रं च भागेनैकेन निर्गतम् ।
 वारिमा(र्गैर्गै) पदं कुर्यात् प्रवे(श्यैशा)यामतः समम् ॥
 त्रिभागमस्य प्रत्यङ्गं पदद्वितयनिर्गमम् ।
 वेदिचन्द्रावलोकाभ्यां प्रत्यङ्गे कर्म कल्पयेत् ॥
 चतुष्पदं मध्यभागं द्विपदं चास्य भद्रकम् ।
 विनिर्गतं च भागेन विदधीत विचक्षणः ॥
 वलभ्यश्च द्विभागाः स्युः(स्वा?स्वा)नुरूपाश्चतुर्दिशम् ।
 गर्भो भागैश्चतुर्भिस्तु वलभीनां विधीयते ॥
 द्विपदा वाह्यतो भित्तिद्विपदा च भ्रमन्तिका ।
 स्कन्धः स्याद् दशभिर्भागैर्गर्भः पट्त्रिंशता पदैः ॥
 ऊर्ध्वप्रमाणमेतस्य स्याच्चत्वारिंशता पदैः ।
 भागैः षोडशभिश्चास्य विदध्याच्छादनं शुभम् ॥
 वेदीबन्धः पञ्चपदो जङ्घा चाष्टपदा भवेत् ।
 शा(ला?लां) चान्तरपत्रं च कुर्याद् भागत्रयाद् बुधः ॥
 ऊर्ध्वमन्तरपत्रं स्याद् विधातव्यं यथाक्रमम् ।
 वलभीसंवृतिः प्राज्ञैरुच्छ्रयात् पञ्चभागिकी ॥
 (सा?स)शृङ्गैः सिंहकर्णैश्च का(र्यो?र्या) भागसमुच्छ्रितिः ।
 वर्धमानेन कर्तव्या त्रिपदा कर्णमञ्जरी ॥
 ऊर्ध्वं पदेभ्यस्त्रिभ्यः स्याद् भागेन कलशाण्डकम् ।
 विस्तारात् षोडशपदा कर्तव्या मूलमञ्जरी ॥
 ऊ(र्ध्वै?र्ध्वै)विंशतिभागास्य स्कन्धो नवपदायतः ।
 ग्रीवा सार्धपदं कार्या ततो द्विपदमण्डकम् ॥

चन्द्रिकेकेन भागेन कल्मषस्त्रिपदान् नतः ।
 हर्षणः क्रियते यत्र स देशः सुखमेधते ॥
 क्षेमं गोत्राङ्गणानां स्यात् पूर्णकामश्च पार्थिवः ।

हर्षणः ॥

इदानीं दुर्धरं द्रुमः प्रासादं शुभलक्षणम् ॥
 चतुरश्रे समे क्षेत्रे चतुर्विंशतिभाजिते ।
 कर्णाः (पडापदाः कार्यो प्रतिरथं च?) द्वयं भवेत् ॥
 कर्तव्याष्टपदा शाला निर्गमोऽस्य चतुष्पदः ।
 पदद्वयं विनिष्क्रान्ता सवेतः कर्णशोभिता ॥
 द्विपदा बाह्यभित्तिः स्याच्चतुर्भागान्धकारिका ।
 द्विपदा कन्दभित्तिस्तु गर्भश्चाष्टपदायतः ॥
 पदपदा कन्दशाला च कन्दकर्णाः पदत्रयम् ।
 ऊर्ध्वप्रमाणं विस्ताराद् द्विगुणं द्विपदाधिकम् ॥
 (विंशत्यम?) तुलोच्छ्रायाः शिखरं त्रिंशता पदैः ।
 कुम्भः सार्धद्विभागश्च कलशो भागमुच्छ्र(ति?)तः ॥
 भागार्धेनान्तरं पत्रं भागेनैकेन मेखला ।
 दशभागोच्छ्रिता जह्वा हीरकं भागिकं भवेत् ॥
 भागैश्चतुर्भिः कर्तव्यं मेखलाद्वितयं ततः ।
 अधस्तादूर्ध्वपट्टस्य तलपट्टस्य चोपरि ॥
 भवेत् षोडशभिर्भागैरनयोरन्तरं द्वयोः ।
 द्विपदो वेदिकावन्धो वेदी कार्यो चतुष्पदा ॥
 आसनं चैव भागेन स्तम्भः पञ्चपदैर्भवेत् ।
 भागेनैकेन भरणं शीर्षकं भागमुन्नतम् ॥
 पट्टो भागद्वयोत्सेधच्छाद्यं च त्रिपदायतम् ।
 मूलभरणानि(?) चत्वारि कोणभद्राणि (कं भवेत्?) ॥
 कर्णशृङ्गाणि द्वा च द्वयम(ध?)स्मिश्चतुर्दिशम् ।
 (श्रीर्वाः-भगवन्तानां?) शृङ्गाणां त्रिपदोच्छ्रितिः ॥

षट्पदाः कर्णमञ्जर्यः सप्तभागसमुच्छ्रिताः ।
 ग्रीवार्थभागिकी भागः स्यादुच्छ्रायोऽण्डकस्य (तत्?) ॥
 पदत्रयोन्नता कार्या सिद्धकर्णश्चतुष्पदा (?) ।
 मध्ये भद्रे तदुत्सेधो विस्तारादर्धभागिकः ॥
 विस्तारो मूलमञ्जर्याः पदेः षोडशभिर्भवेत् ।
 अष्टादशभिरुच्छ्रायो ग्रीवा सार्धपदोच्छ्रिता ॥
 अण्डकं द्विपदं कार्यं चन्द्रिका पदमुच्छ्रिता ।
 कलशं त्रिपदं विद्यात् सर्वलक्षणसंयुतम् ॥
 अण्डकैः सप्तदशभिः प्रासादो दुर्धरो भवेत् ।
 दुर्धरं यः करोतीह (भागाभर्गा)च्छक्तिं स(माआ)प्नुयात् ॥
 कालेन शिवसायुज्यं (निगधिश्च प्रचने?) ।

दुर्धरः ॥

इदानीं दुर्जयं वृमः प्रासादं शत्रुमर्दनम् ॥
 यं कृत्वा (दुर्जयं लोके?) भवेत् क्रीडति च क्षिणा ।
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे पञ्चभागविभाजिते ।
 गर्भं नवपदं कुर्यात् भित्तिः षोडशभागिकी ।
 भागेन कर्णरथिका भागाभ्यां मध्यमे रथः ॥
 भागेन निर्ग(मंस्त)स्य वि(धि)रेष चतुर्दिशम् ।
 भद्रकर्णान्तरे कुर्यात् वारिमाणं पदाधिकम् ॥
 ऊर्ध्वमानं विधातव्यं (न्यमम्मि?) दशभागिकम् ।
 वेदिवन्धः सपादांशो जङ्गामो पादसंयुतो ॥
 मेख्यानन्तरपत्रे तु पदाश्रितं प्रकल्पयेत् ।
 शिखरः (स्विग्विरे?) सार्धं भागपदकोच्छ्रितो भवेत् ॥
 त्रिपदः स्कन्धविम्बारो ग्त्रे पद्मदन्ताकृतिः ।
 भूमयः पञ्च कतव्या न्यूनमाना यथाक्रमम् ॥
 प्रथमा नाथभागान्ता पदपादांनिता क्रमात् ।
 स्कन्धः (पादोन्नभागेन स्याद् ग्रीवाधैध, पदेन च ॥

१. 'निवृत्ते च प्रचने' इति न्यायः । २. 'दुर्जयं लोके' इति न्यायः ।

अण्डकं त्वेकभागेन कर्परं चार्धभागिकम् ।
भागोत्सेधस्तु कलशः समवृत्तः सुशोभनः ॥
दुर्जयः क्रियते यत्र पुरे वा नगरेऽथवा ।
न भवेत् तत्र दुर्भिक्षं न च व्याधिकृतं भयम् ॥

दुर्जयः ॥

ब्रूमस्त्रिकूटं ब्रह्माद्यैः सेवितं त्रिदशैस्त्रिभिः ।
फलं क्रतुसहस्रस्य येन मोक्षं च विन्दति ॥
(संसाध्यतुल्यन्निभजं?)क्षेत्रमिष्टप्रमाणतः ।
ततोऽस्य बाहुभेकैकं चतुर्भिर्विभजेत् पदैः ॥
द्विभागं मध्यमं भद्रं भागिकीं कर्णप(क्षि?द्वि)काम्) ।
अर्धेन गर्भमर्धेन कुर्याद् भित्तित्रयं बुधः ॥
विस्तारं पञ्चधा भ(क्ता?वत्वा) कुर्याद् द्विगुणमुच्छ्र(यःयम्) ।
वेदिवन्धो विधातव्यः सपादं भागमुच्छ्रितः ॥

जह्वा सपादौ भागौ द्वौ कार्या तस्य समुच्छ्रितिः ।
मेखलान्तरपत्रे च भागस्यार्धेन कारयेत् ॥

मञ्जरी भागपटकेन पञ्चभागविभाजिता ।
आसमन्तात् (स्तम्भस्कन्धः?) कार्यः पूर्वोक्तवर्त्मना ॥

पादभागेन तु ग्रीवामर्धभागेन चाण्डकम् ।
चन्द्रिका भागपादेन कलशं भागमुच्छ्रितम् ॥

त्रिकूटं कारयेद् यस्तु ब्रह्मेशानहरिप्रियम् ।
सि(द्धा?द्धो)भूत्वा पुरीं तेषां यात्यसौ नात्र संशयः ॥

त्रिकूटः ॥

इदानीमभिधास्यामः प्रासादं नवशेखरम् ।
चतुरश्रं भजेत् क्षेत्रं विंशत्यैकोनया पदैः ॥
कर्णाश्रतुप्पदाः कार्यास्तेषां भद्रं द्विभागिकम् ।
विनिर्गतं पदार्धेन जलमार्गस्त + + + ॥

The first part of the document discusses the importance of maintaining accurate records of all transactions. It emphasizes that every entry should be supported by a valid receipt or invoice. This ensures transparency and allows for easy verification of the data.

In addition, the document highlights the need for regular audits. By conducting periodic reviews, any discrepancies can be identified and corrected promptly. This proactive approach helps in maintaining the integrity of the financial information.

Furthermore, it is noted that clear communication is essential. All parties involved should be kept informed of the current status and any changes that may affect the records. This collaborative effort is key to successful financial management.

Finally, the document concludes by stating that adherence to these guidelines will not only improve the accuracy of the records but also enhance the overall efficiency of the organization's financial operations.

भागैर्नकेन रथिका मूलच्छन्दोऽयमीरितः ।
 ऊर्ध्वमानं भवेद् यस्य द्विगुणो दशभागिकम् (?) ॥
 भागेनोच्छालकं विद्याद् भागार्धेन तु मेखला ।
 वेदिवन्धं न कुर्वीत जङ्घा सार्धद्विभागिका ॥
 मेखला चार्धभागेन भवेत् सान्तरपत्रका ।
 पदानि पञ्च सार्धानि मञ्जर्याः स्यात् समुच्छ्रितः ॥
 त्रिपदः स्कन्धविस्तारो ग्रीवा वा (पदसादिकाः?) ।
 अण्डकं स्यात् पदार्धेन भागपादेन चन्द्रिका ॥
 भागोच्छ्रायस्तु कलशः कर्तव्यः शुभलक्षणः ।
 मध्येन मूलमञ्जर्यास्त्रिपदा भद्रमञ्जरी ॥
 सार्धात्त्रिपदोच्छ्राया ग्रीवा भागसमुच्छ्रिता ।
 अण्डकं च त्रिभागेन कलशो भागमुच्छ्रितः ॥
 पञ्चाण्डः पुण्डरीकोऽयं कर्तव्यः शुभवर्धनः ।

पुण्डरीकः ॥

सुनाभ(स)मथ ब्रूमो वन्दि(तोःतं) देवदानवैः ॥
 वल्लभं लोकपालानां पुण्यमुत्कृष्टलक्षणम् ।
 विभजेत् सप्तदशभिः समक्षेत्रं चतुर्थ्यजम् ॥
 पञ्चभागायताः कोणा गर्भः कार्यस्त्रिभिः पदैः ।
 उभयोः कोणयोर्मध्ये सप्तभागिकमन्तरम् ॥
 व्यक्षेपात्(?) कर्णयोर्मध्ये (प्रा?प्रो)ञ्जयेत् पदमन्तरम् ।
 भागप्रवेशं भागार्धे(र्ध)त्रिस्ता(रा?र)मुदकान्तरम् ॥
 द्विपदा वाल्मिक्तिः स्यात् त्रिपदाथ भ्रमन्तिका ।
 पञ्चभागायतो मध्ये भवेत् प्रासादनायकः ॥
 त्रिपदस्तस्य गर्भस्तु भित्तिर्भागं विधीयते ।
 त्रिपदं कर्णभद्रं च भागेनैकेन निर्गतम् ॥
 पदप्रमाणकोणांस्तु च(त्या?तु)रो(स?त्रि)निवेशयेत् ।
 यथा ऋदस्तथा कोणा विभागैः स विधीयते ॥

पञ्च गर्भास्तु कर्तव्याः सममानप्रकल्पिताः ।
 द्विगुणं चोर्ध्वमानं स्याद् ग्रीवाण्डकविवर्जितम् ॥
 त्रिभिः पदैर्वेदिवन्धो जङ्घा सप्तपदा भवेत् ।
 पदत्रयेण कर्तव्यं मेखलाद्वितयं बुधैः ॥
 ऊर्ध्वतो बाह्यच्छन्द(स्यास्य) कर्तव्या कर्णमञ्जरी ।
 पदपदाः कर्णमञ्जर्यो द्विपदं कलशाण्डकम् ॥
 (द्वादशा सप्तविस्ताराः?) कर्तव्या मूलमञ्जरी ।
 त्रयोदशपदोच्छ्राया ग्रीवास्या भागमुच्छ्रिता ॥
 अण्डकं द्विपदोत्सेधं भागोत्सेधा तु चन्द्रिका ।
 कलशस्त्रिपदोत्सेधो बतुलः शुभलक्षणः ॥
 यावत् क्षितिर्यावदन्धिर्यावच्छशिदिवाकरौ ।
 कर्तास्य तावद् दिव्यास्ते यावत् सुग्गुरुः सुराः ॥

मुनाभाः

माहेन्द्रमथ वक्ष्यामः प्रासादं भूषणं क्षितेः ।
 सेवितं यक्षगन्धर्वैः फणीन्द्रैश्च महाप्रभैः ॥
 माहेन्द्रं पञ्चदशभिर्भागैः प्राज्ञो विभाजयेत् ।
 नवभागायतं गर्भं कुर्याद् भित्तिं त्रिभागिकीम् ॥
 विस्तारेणास्य विख्याता तज्जः शाला पदत्रयम् ।
 शालायाः पार्श्वयोः कार्यौ रथौ सार्धपदा बुधैः ॥
 रथशालान्तरेणैव कर्तव्यमुदकान्तरम् ।
 (रथस्यामातः पञ्चारि गृहकार्यं पदार्धकम्?) ॥
 प्रत्यङ्गानि पदं सार्धं + + + + जलान्तरम् ।
 द्विपदं कर्णमानं च कार्यं कोणचतुष्टयं(यं?) ॥
 भागेनान्योन्यमेतेषां विश्रान्तव्यां विनिर्गमः ।
 ऊर्ध्वमानं तु कर्तव्यं द्विगुणं सीमाविस्तृतं ॥
 तुलादयो दद्यान्तः स्याद् विंशत्यंशा च मञ्जरी ।
 वेदिवन्धं प्रकुर्वीत सार्धभागद्वयं बुधैः ॥

जङ्घयोस्तु सगुच्छ्रायसर्धपञ्चमभागिकम् ।
 भागेन भरणं कुर्याद्वाञ्छितं पत्रभङ्गिभिः ॥
 तदूर्ध्वं मेखला कार्या भागद्वितयमुच्छ्रिता ।
 ऊर्ध्वतो मञ्जरी कार्या क्रमेणैव मनोहरा ॥
 नवभागायनं (रुद्धोः?) ग्रीवा भागसमुत्थता ।
 श्रण्डकं द्विपदोत्सेधं चन्द्रिका भागमुच्छ्रिता ॥
 द्विपदं कल्यं कुर्याद् विरतारोत्सेधतः समाः ।
 लताः सम विधातव्या (रेषा द्रुम कुलाकृति?) ॥
 मध्ये लतायाः कर्णभ्य वेल्कः पट्टविधः क्रमः ।
 प्रन्यजे निलका कृताः पञ्चालार्था द्विपक्षकः (?) ॥
 कोणे वगादका(?) कृताः कार्या माहेन्द्रमन्दिरं ।
 कृत्वा महेन्द्रं राजा ग्याद माहेन्द्रम्य(?) वसेद् दिवि ॥

चतुर्भागोच्छ्रितां जङ्घां हीरकं चार्धभागिकम् ।
 मेखलान्तरपत्रं च कुर्याद् भागसमुच्छ्रितम् ॥
 त्रिपदं शृङ्गमुत्सेधाद् ग्रीवा च कलशाण्डकम् ।
 (पःत)दूर्ध्वं पञ्चविस्तारा स्यादुरोमञ्जरी शुभा ॥
 ग्रीवा कार्या पदार्धेन भागैकैकैः चण्डकम् ।
 कलशोऽशोच्छ्रितोऽष्टांशविस्तारा मूलमञ्जरी ॥
 तस्याः कार्यः समुत्सेधः प्रमाणान्नवभागि(का?क): ।
 स्कन्धः पञ्चपदो ग्रीवा पादहीनं पदं भवेत् ॥
 सपादं पदमञ्जर्या(?) पदस्यार्धेन चन्द्रिका ।
 कलशो द्विपदोच्छ्रायः प्रासादे स्याद् वराटके ॥
 वराटं कारयेद् यस्तु प्रासादं भक्तिमान् नरः ।
 स याति यानैर्विविधैः स्वर्गं प्राप्नोति चाक्षयम् ॥

वराटः ॥

सुमुखस्याधुना लक्ष्म प्र(का?क)मागतमुच्यते ।
 भागैरेकोनविंशत्या चतुरश्रे विभाजिते ॥
 तत्रैकादशभिर्गर्भश्चतुर्भिर्भित्तिरंशकैः ।
 कोणो द्विभागिकस्तत्र भागपादो जलान्तरम् ॥
 भागार्धेन प्रवेशोऽस्य चतुरंशकविस्वृतम् ।
 भद्रमेवं विनिर्दिष्टमर्धभागेन निर्गतम् ॥
 पादान्भागद्वितयादन्तरे कर्णभद्रयोः ।
 त्रयः प्रनिरथाः कार्याः सद्विनाः सलिलान्तरैः ॥
 अर्धभागोऽर्धभागश्च मिथस्तेषां विनिर्गमः ।
 ऊर्ध्वमानं भवेदस्य द्विगुणं द्विकलाधिकम् ॥
 अंशकैः पञ्च(म?भि)र्ध्वं विधेयोऽस्य तुल्योदयः ।
 विभागैः पञ्चविंशत्या तदूर्ध्वं मञ्जरी भवेत् ॥
 वेदीवन्यां विधेयोऽस्य नार्धभागचतुष्टयाद् ।
 जङ्घांशप्रतिभिः सा(र्ध?धैः)वरपदी तु द्विभागिका ॥

लताभिर्नवभिर्युक्ता प्राग्बत् कार्यास्य मञ्जरी ।
 स्यादेकादशभिर्भागैरेतत्स्कन्धस्य विस्तृतिः ॥
 चतुर्गुणेन सूत्रेण वेणुकोशं संपालिखेत् ।
 कोणासन्नप्रतिरथो द्वाविडोऽस्य विधीयते ॥
 भूमिका नव कर्तव्याः शेषं कार्यं महेंद्रवत् ।
 पादोनभागद्वितया ग्रीवास्य च विधीयते ॥
 सार्धभागद्वयमितं विदध्यादण्डकं शुभम् ।
 चण्डिका सार्धभागेन कलशश्राण्डकस्त्रिभिः ॥
 इत्येष कथितः सम्यक् प्रामादः सुमृष्टाभिधः ।
 य एनं कारयेद् भक्त्या स कागानश्नुतेऽग्निलान् ॥
 भुवत्वेद् विपुलान् भोगान् पद्मभ्येति जाश्वतम् ।

सुमृष्टाभिधः ।

+++++ प्रपन्ना नापि जन्यानि जन्मनि(?) ।

नन्दः ।

महाघोषाभिधानोऽथ प्रासादः कथ्यतेऽपरः ॥
 नन्दियोपस्य संस्थाने रूपे चास्य व्यवस्थितः ।
 अस्य क(र्तृ?र्णे)षु सर्वेषु भद्राणि विनिवेशयेत् ॥
 भद्रे चतुष्पिका कार्या द्विपदायामनिर्गमा ।
 भागिकी भित्तिरन्तश्च शेषं गर्भगृहं स्मृतम् ॥
 शृङ्गाणि कर्णे कुर्वीतेत्येषा प्रथमभूमिका ।
 द्वितीया तु पुनः कार्या भित्तिविन्यासवर्जिता ॥
 चतुर्दिशं विधातव्यं वेदीचन्द्रावलोकनम् ।
 विदधीत चतुःस्तम्भां तृतीयामपि भूमिकाम् ॥
 छौद्यकैरुर्ध्वेन तस्या कार्या संवरणा बुधैः(?) ।
 कारयेन्नन्दियोपं यः प्रासादमिममुत्तमम् ॥
 विभूतिर्वाञ्छिता तस्य कुलेऽपि न विनश्यति ।

महाघोषः ।

प्रासादो मिश्रकेष्वेव वृद्धिरा(गो'मो) विधीयते ॥
 (स्त्रीनिसस्य?) संस्थानं यत् तदस्यापि कीर्तनम् ।
 गर्भकन्दं परित्यज्य स्तम्भैः पांडशभिर्वृतम् ॥
 अस्य मध्यं विधातव्यं शेषं च श्रीनिवासवत् ।
 उरोधराभिरष्टाभिरश्वशालाभिरैव च ॥
 अस्य भद्राणि कुर्वीत सर्वालङ्कारवन्ति च ।
 वसुन्धरस्य ये भद्रास्तैः सर्वैरन्वितः शुभः ॥
 कन्धशैरेकविंशत्या वृद्धिरामः प्रशस्यते ।
 प्रासादस्यास्य कर्ता च यावच्चन्द्राकेताङ्कम् ॥
 तावदिन्द्र इव स्वर्गे कीडन्यपमरमां गर्णः ।

वृद्धिरामः ॥

वृद्धिरामस्य संस्थानं प्रासादः स्यात् वसुन्धरः ॥

१. छौद्यकैरुर्ध्वेन तस्याः क वे संवरण बुधैः इति पठनीये स्यात् । २. '१

कर्णान्ते भद्रमध्ये च कारयेदुदकान्तरम् ।
 पदपादेन विस्तीर्णं प्रक्षेपेण पदार्थकम् ॥
 कर्णाथ + + + तव्या पद्भिरमृलिङ्गवृत्ताः(?) ।
 पीठं वेदी च जङ्घा च मेखलान्तरपत्रकम् ॥
 कमलोद्भववत् कार्यं बहुधा क + + पितम् ।
 कर्तव्यशिखरं(?) कुर्यात् + + + + + ॥
 इलिकामकरग्रासैर्वरालैः सासुरैश्चिता ।
 कथिता पुष्पके यादृग् (ज)(घा?ङ्घा)तादृगिहेष्यते ॥
 ऊर्ध्वपीठप्रमाणस्य तथावच्छादकस्य च ।
 यन्मध्ये तत्र कुर्वीत पद्दारुकनिवेशनम् ॥
 रुष्टिकातोरणश्चारुसालभञ्जाविराजितम्(?) ।
 वेदिकाराजसेनाढ्यं (शमूतेद्वयलोकनम्?) ॥
 सस्तम्भशीर्षभरणं पट्टरत्नोपशोभितम् ।
 (मूलं?मल्ल)च्छायं विधातव्यं सिंहकर्णविभूषितम् ॥
 सिंहरूपः समाक्रान्तं विचित्रैश्च वरालकैः ।
 व्यंशोच्छ्रितं कर्णकूटं कुर्यात्(दिग्घ?द्विप)द्विस्वृतम् ॥
 ग्रीवाण्डकसमेतं च (व, रण्ड्यां (का?)कलशान्वितम् ।
 कर्णाः पृथक् पृथक् चेह स्युः पद्पश्चादण्डकाः ॥
 उरामञ्जरिकाभिस्तं निम्भिः स्युर्विभूषिताः ।
 कर्णान्ते मूलरेखा च विस्तारान् सप्तधमिका ॥
 सार्धभागपृष्ठं चास्या विधानव्या समुच्छ्रितः ।
 उरामञ्जरिका कार्या चतुर्वाञ्जुदिसं तथा ॥
 यथमा स्यादुररेखा द्वादशाण्डकभूषिता ।
 चतुर्दशाण्डका चान्या तृतीया षोड(शांश?शाण्ड,का ॥
 अष्टादशाण्डकोपेता चतुर्थी परिकीर्तिता ।
 त्रिंशत्तनाण्डकैर्वृत्ता मूलरेखा विधीयते ॥
 पदं स्यात् पादानं सपादं पदमण्डकम् ।
 पदच्छ्रितं तच्छ्रितं च पदच्छ्रिता ॥

द्विपदं कलशं विद्यात् समवृत्तं मनोरमम् ।
 अर्धोतु द्व विधातव्यं वुजं तस्य चोपरि(?) ॥
 विचित्रभूमिके(सप्तदशम्मिल्लिख्यराक्षणपथपि?) ।
 स्तम्भैर्विविधविन्यासैर्वहुभङ्गविनिर्मितैः ॥
 भूपितैः कर्मभिश्चित्रैः सर्वत्र शुभलक्षणैः ।
 चन्द्रशालादिसंयुक्तैस्तोरणैश्चारुचामरैः ॥
 तथाक्षतमुखग्रासैर्धनरूपतया स्थितैः ।
 व्यालैर्व्यालोलजिह्वैश्च मकरग्राससंयुतैः ॥
 मदान्धालिकुलाकीर्णगजवक्रविभूपितैः ।
 विद्याधरवधूवृन्दैः क्रीडारम्भविभूपितैः ॥
 सुराणां सुन्दरीभिश्च वीणाहस्तैश्च किन्नरैः ।
 सिद्धगन्धर्वयक्षाणां वृन्दैश्च परितः स्थितैः ॥
 अप्सरोभिश्च दिव्याभिर्विमानावलिभिस्तथा ।
 चारुचामीकरान्दोलाक्रीडासक्तैश्च ^१(निःसराम्?) ॥
 नागकन्याकदम्बैश्च सर्वतः समलङ्कृतम् ।
 एवंविधाभिः सर्वत्र भूमिकाभिर्निरन्तरम् ॥
 अलङ्कृतो विधातव्यो मेरुः प्रासादनायकः ।
 मध्य(म)द्विगुणैर्ज्येष्ठः कर्तव्योमेरुरण्डकैः ॥
 कनीयान् मध्यमार्धेनेत्यण्डकस्थितिरीरिता ।
 उत्तमेषूत्तमं न्यस्येन्मध्यमेषु च मध्यमम् ॥
 (अघ)मेष्वधमं लिङ्गमेवमन्येषु धामसु ।
 मेरोस्तु त्रिविधस्यापि लिङ्गमुत्तममृद्धिदम् ॥
 अन्यथाविहित + + + + + दिरोपकृत् ।
 मेरुं मेरूपमं दिव्यं यः कारयति पार्थिवः ॥
 स प्राप्नोति परां भुक्तिं + + + + सदाशिवाम् ।
 मेरुं प्रदक्षिणीकृत्य काञ्चनं यत्फलद्विभाक् ॥

कर्णान्ते भद्रमध्ये च कारयेदुदकान्तरम् ।
 पदपादेन विस्तीर्णं प्रक्षेपेण पदार्थिकम् ॥
 कर्णाथ + + + तव्या पद्भिरमूलिक्कृत्ताः(?) ।
 पीठं वेदी च जङ्गा च मेखलान्तरपत्रकम् ॥
 कमलोद्भववत् कार्यं बहुधा क + + पितम् ।
 कर्तव्यशिखरं(?) कुर्यात् + + + + + ॥
 इलिकामकरग्रासैर्वरालैः सामुरैश्चिता ।
 कथिता पुष्पके यादृग् (ज)(घा?ङ्गा)तादृगिहेष्यते ॥
 ऊर्ध्वपीठप्रमाणस्य तथावच्छादकस्य च ।
 यन्मध्यं तत्र कुर्वीत पद्दारुकनिवेशनम् ॥
 रुष्टिकातोरणश्चारुसालभञ्जाविराजितम्(?) ।
 वेदिकाराजसेनाढ्यं (शमूतेद्ववलोक्नम्?) ॥
 सस्तम्भशीर्षभरणं पट्टरङ्गोपशोभितम् ।
 (मूलं?मल)च्छाद्यं विधातव्यं सिंहकर्णविभूषितम् ॥
 सिंहरूपैः समाक्रान्तं विचित्रैश्च वरालकैः ।
 त्र्यंशोच्छ्रितं कर्णकूटं कुर्यात्(दिग्घ?द्विप)दविस्तृतम् ॥
 ग्रीवाण्डकसमेतं च (व)रण्ड्यां (का?)कलशान्वितम् ।
 कर्णाः पृथक् पृथक् चेह स्युः पट्टपञ्चाशदण्डकाः ॥
 उरोमञ्जरिकाभिस्ते तिसृभिः स्युर्विभूषिताः ।
 कर्णान्ते मूलरेखा च विस्तारात् सप्तभागिका ॥
 सार्धभागाष्टकं चास्या विधातव्या समुच्छ्रितः ।
 उरोमञ्जरिका कार्या चतस्रोऽनुदिशं तथा ॥
 प्रथमा स्यादुरोरेखा द्वादशाण्डकभूषिता ।
 चतुर्दशाण्डका चान्या तृतीया षोड(शांश?शाण्ड)का ॥
 अष्टादशाण्डकोपेता चतुर्थी परिकीर्तिता ।

वृ. ५. त्रिंशताण्डकैर्युक्ता मूलरेखा विधीयते ॥

(यक) १. पदं स्यात् पादोनं सपादं पदमण्डकम् ।
 फलतुल्यं तच्चन्द्रिका च पदोच्छ्रिता ॥

द्विपदं कलशं विद्यात् समवृत्तं मनोरमम् ।
 अधोतु द्व विधातव्यं वुजं तस्य चोपरि(?) ॥
 विचित्रभूमिके(सप्तदशम्मिल्लिख्यराक्षणप्यपि?) ।
 स्तम्भैर्विविधविन्यासैर्वहुभङ्गविनिर्मितैः ॥
 भूपितैः कर्मभिश्चित्रैः सर्वत्र शुभलक्षणैः ।
 चन्द्रशालादिसंयुक्तैस्तोरणैश्चारुचामरैः ॥
 तथाक्षतमुखग्रासैर्धनरूपतया स्थितैः ।
 व्यालैर्व्यालोलजिह्वैश्च मकरग्राससंयुतैः ॥
 मदान्धालिकुलाकीर्णगजवक्रविभूपितैः ।
 विद्याधरवधूवृन्दैः क्रीडारम्भविभूपितैः ॥
 सुराणां सुन्दरीभिश्च वीणाहस्तैश्च किन्नरैः ।
 सिद्धगन्धर्वयक्षाणां वृन्दैश्च परितः स्थितैः ॥
 अप्सरोभिश्च दिव्याभिविमानावलिभिस्तथा ।
 चारुचामीकरान्दोलाक्रीडासक्तैश्च ^१(निःसराम्?) ॥
 नागकन्याकदम्बैश्च सर्वतः समलङ्कृतम् ।
 एवंविधाभिः सर्वत्र भूमिकाभिर्निरन्तरम् ॥
 अलङ्कृतो विधातव्यो मेरुः प्रासादनायकः ।
 मध्य(म)द्विगुणैर्ज्येष्ठः क(र्तव्यो)मेरुरण्डकैः ॥
 कनीयान् मध्यमार्धेनैत्यण्डकस्थितिरीरिता ।
 उत्तमेषूत्तमं न्यस्येन्मध्यमेषु च मध्यमम् ॥
 (अघ)मेष्वधमं लिङ्गमेवमन्येषु धामसु ।
 मेरोस्तु त्रिविधस्यापि लिङ्गमुत्तममृद्धिदम् ॥
 अन्यथाविहित + + + + + दिरोपकृत् ।
 मेरुं मेरूपमं दिव्यं यः कारयति पार्थिवः ॥
 स प्राप्नोति परां भुक्तिं + + + + + सदाशिवाम् ।
 मेरुं प्रदक्षिणीकृत्य काञ्चनं यत्फलद्विभाक् ॥

१. 'निर्भराम्' इति स्वात् ।

कर्णान्ते भद्रमध्ये च कारयेदुदकान्तरम् ।
 पदपादेन विस्तीर्णं प्रक्षेपेण पदार्थकम् ॥
 कर्णाथ + + + तव्या पद्भिरमृलिङ्गवृत्ताः(?) ।
 पीठं वेदी च जङ्गा च मेखलान्तरपत्रकम् ॥
 कमलोद्भववत् कार्यं बहुधा क + + पितम् ।
 कर्तव्यशिखरं(?) कुर्यात् + + + + + ॥
 श्लिकामकरग्रासैर्वरालैः सासुरैश्चिता ।
 कथिता पुष्पकं यादृग् (ज)(घा?ङ्गा)तादृग्निहेष्यते ॥
 ऊर्ध्वपीठप्रमाणस्य तथावच्छादकस्य च ।
 यन्मध्यं तत्र कुर्वीत पद्दारुकनिवेशनम् ॥
 रुष्टिकातोरणश्चारुसालभञ्जाविराजितम्(?) ।
 वेदिकाराजसेनाढ्यं (शमूतेद्वलोकनम्?) ॥
 सस्तम्भशीर्षभरणं पट्टरङ्गोपशोभितम् ।
 (म्लह्लं?मह्ल)च्छाद्यं विधातव्यं सिंहकर्णविभूषितम् ॥
 सिंहरूपैः समाक्रान्तं विचित्रैश्च वरालकैः ।
 व्यंशोच्छ्रितं कर्णकूटं कुर्यात्(दिग्भ?द्विप)दविस्तृतम् ॥
 ग्रीवाण्डकसमेतं च (व,रण्ड्यां (का?)कलशान्वितम् ।
 कर्णाः पृथक् पृथक् चेह स्युः पद्पञ्चाशदण्डकाः ॥
 उरोमञ्जरिकाभिस्तं निम्भिः स्युर्विभूषिताः ।
 कर्णान्ते मूलेरेखा च विस्तारान् सप्तभागिका ॥
 सार्धभागायकं चास्या विधानव्या समुच्छ्रितः ।
 उरोमञ्जरिका कार्या चगन्त्राञ्जुदियं तथा ॥
 प्रथमा स्यादुरीरेखा द्वादशाण्डकभूषिता ।
 चतुर्दशाण्डका चान्या नृतीया षोड(शांश?शाण्ड)का ॥
 अष्टादशाण्डकोपेता चतुर्थी परिकीर्तिता ।
 त्रिंशत्तयाण्डकेषुक्ता मूलेरेखा विधीयते ॥
 पदं स्वान् पादानं सपादं पदमण्डकम् ।
 पदोच्छ्रितं नक्षत्रं च पदोच्छ्रिता ॥

द्विपदं कलशं विद्यात् समवृत्तं मनोरमम् ।
 अधोतु द्व विधातव्यं वृजं तस्य चोपरि(?) ॥
 विचित्रभूमिके(सप्तदशमिह्लिख्यराक्षणण्यापि?) ।
 स्तम्भैर्विविधविन्यासैर्बहुभङ्गविनिर्मितैः ॥
 भूपितैः कर्मभिश्चित्रैः सर्वत्र शुभलक्षणैः ।
 चन्द्रशालादिसंयुक्तैस्तोरणैश्चारुचामरैः ॥
 तथाक्षतमुखग्रासैर्धनरूपतया स्थितैः ।
 व्यालैर्व्यालोलजिह्वैश्च मकरग्राससंयुतैः ॥
 मदान्धालिकुलाकीर्णगजवक्रविभूपितैः ।
 विद्याधरवधूवृन्दैः क्रीडारम्भविभूपितैः ॥
 सुराणां सुन्दरीभिश्च वीणाहस्तैश्च किन्नरैः ।
 सिद्धगन्धर्वयक्षाणां वृन्दैश्च परितः स्थितैः ॥
 अप्सरोभिश्च दिव्याभिविमानावलिभिस्तथा ।
 चारुचामीकरान्दोलाक्रीडासक्तैश्च ^१(निःसराम्?) ॥
 नागकन्याकदम्बैश्च सर्वतः समलङ्कृतम् ।
 एवंविधाभिः सर्वत्र भूमिकाभिर्निरन्तरम् ॥
 अलङ्कृतो विधातव्यो मेरुः प्रासादनायकः ।
 मध्य(म)द्विगुणैर्ज्येष्ठः क(र्तव्यो)मेरुरण्डकैः ॥
 कनीयान् मध्यमार्धेनेत्यण्डकस्थितिरीरिता ।
 उत्तमेषूत्तमं न्यस्येन्मध्यमेषु च मध्यमम् ॥
 (अघ)मेष्वधमं लिङ्गमेवमन्येषु धामसु ।
 मेरोस्तु त्रिविधस्यापि लिङ्गमुत्तममृद्धिदम् ॥
 अन्यथाविहित + + + + + दिरोपकृत् ।
 मेरुं मेरूपमं दिव्यं यः कारयति पार्थिवः ॥
 स प्राप्नोति परां भुक्तिं + + + + सदाशिवाम् ।
 मेरुं प्रदक्षिणीकृत्य काञ्चनं यत्फलद्विभाक् ॥

शैलेष्टकादारुमये कृतेऽस्मिस्तत्कलद्धिभाक् ।

मेतः ॥

(लक्षणं) मन्दरस्याथ प्रासादस्याभिधीयते ॥

सिद्धिप्रदस्य पुण्य(स्य)स्तुतस्य त्रिदशैरपि ।

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे ++ भागत्रिभाजिते ॥

गर्भः कार्यश्चतुर्भागो भित्तोरिकांशविस्तृता ।

अन्धारिकैकभागेन बाह्यभित्तिस्तु भागिकी ॥

कोणेषु रथिकाः कार्याः पदद्वितयसंमिताः ।

चत्वारो मण्डपाः कार्याः पद्त्रिंशत्पदसंमिताः ॥

चतुर्दिशमलिन्दाश्च विधातव्याश्चतुष्पदाः ।

भागेन निर्गतास्ते च सर्वतः शुभलक्षणाः ॥

अस्योर्ध्वमानं कर्तव्यं विस्ताराद् द्विगुणं बुधैः ।

कर्णावैधश्च(?) विस्तारसीमा सर्वत्र गृह्यते ॥

प्रासादे मूलमानं यत् तच्च सम्यक् प्रकल्पयेत् ।

द्विपदं पीठमुत्सेधात् कार्यं प्राङ्(मुनतो?मूलतो) वहिः ॥

तत् पश्चैरङ्कितं कार्यं सिंहैरपि च मन्दिरे ।

पदार्थं खुरकः कार्यः प्रासादसमवर्जितः(?) ॥

सार्धं पदद्वयं कार्यो वेदीबन्धः सुशोभनः ।

चतुर्भागोन्नता जङ्घा भागार्थं रूपपट्टिका ॥

मेखलान्तरपत्रं च कार्यं पदसमुच्छ्रितम् ।

पदद्वयायतानि स्युः कर्णे शृङ्गाणि मानतः ॥

उच्छ्रयास्त्रिपदस्तेषां ग्रीवाण्डकलशैः सह ।

मूलरेखा विधातव्या कर्णकूटस्य चोपरि ॥

नवभागोच्छ्रिता शस्ता विस्तारेणाष्टभागिका ।

विस्तारं दशधा कृत्वा तैः पद्भिः स्कन्धविस्तृतैः ॥

लताः पञ्च विधातव्याः श्रीवत्से कथिता यथा ।

कुर्वीत पञ्चभौमं वा सप्तभौममथापि वा ॥

ग्रीवा पादोनभागा स्यात् स(पादं) पदमण्डकम् ।
 चन्द्रिकैकपदा कार्या कलशो द्विपदोदयः ॥
 (त्रिभ्रं?)त्रिपदं कुर्यात् तत्रैकं भागमुत्सृजेत् ।
 शुकनासोत्सृतं कुर्यात् सिंहस्थानविभूषितम् ॥
 कनकाभरणैर्युक्तः पुमान् यद्वद् विराजते ।
 तथा प्रासादराजोऽयं शोभते चित्रकर्मभिः ॥
 मञ्जरीं दशधा कृत्वा कर्मशोभां प्रकल्पयेत् ।
 भागैर्भद्रस्य विस्तारः पद्भिर्भागिन निर्गमः ॥
 भागिक्यौ रधिके तत्र कुर्याद् भागाद् विनिर्गमः ।
 भागद्वयमितान् कर्णान् विदिक्षु च निवेशयेत् ॥
 शालाश्वतस्रः कर्तव्या युक्ताः कूटैर्मनोरमैः ।
 नीरान्तराणि ता अष्टौ मञ्जर्या द्विगुणान्विता ॥
 कूटेऽर्धे प्रथमा भूमिः कार्या भागद्वयोच्छ्रिता ।
 पदपादविहीनास्तु क्रमेणोपरि भूमिकाः ॥
 अर्धभागोच्छ्रिता ग्रीवा भागिकोच्छ्रायमण्डकम् ।
 भागेन कलशः कार्यः सर्वलक्षणसंयुतः ॥
 विस्तारार्धेन कर्तव्यो वेदीवन्धो त्रिवन्धुरः ।
 पद्गुणेनैव सूत्रेण मध्यरेखां समालिखेत् ॥
 द्वितीयामालिखेत् पञ्चगुणितेन विचक्षणः ।
 सार्धत्रिगुणसूत्रेण + रेखां समालिखेत् ॥
 मञ्जरीभिर्विचित्राभिः सर्वत्रैव विराजितः ।
 प्रासादो मन्दरः कार्यः प्रमाणेनामुना शुभः ॥
 मन्दरं मन्दराकारं कृत्वा प्रासादमुत्तमम् ।
 प्रामोतीह परं सौख्यं परत्र च शुभां गतिम् ॥

मन्दरः ॥

कथयामोऽथ कैलासमशेषसुरसेवितम् ।
 प्रमथप्रवरैर्जुष्टं प्रासादं पुण्यवर्धनम् ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे शतधा प्रविभाजिते ।
 शाला पद्भागविस्तारा कर्तव्या भागनिर्गमा ॥
 (कलात्रिभागिका कुर्यात् सलिलान्तरसंयुतान्?) ।
 (आरभ्य ब्रह्मणः स्थानात् समा इव पादद्वयम्?) ॥
 भ्रमयित्वा समं वृत्तं (गर्भःगर्भमंशं) प्रकल्पयेत् ।
 तथा भित्तिर्विधातव्या समन्तादर्धभागिका ॥
 भागिका बाह्यभित्तिः स्यात् (कार्या स्याद्?) भद्रभूषिता ।
 अन्तराले तु सर्वत्र विदध्यादन्धकारिकाम् ॥
 अलिन्दकाश्चतुर्भागाः कर्तव्या दिक्त्रये बुधैः ।
 भागद्वयेन निष्क्रान्ताः सर्वतः शुभलक्षणाः ॥
 (चतुर्योकां?) विधातव्यास्तेषु स्तम्भद्वयान्विताः ।
 मुखे तु मण्डपः कार्यः स्तम्भपङ्क्तिविराजितः ॥
 अयोर्ध्वमानं वक्ष्यामः कैलासस्य यथास्थितम् ।
 पीठं तस्य पदे द्वे तु कर्तव्यं गणभूषितम् ॥
 पदस्यार्धेन कर्तव्यः खुरकस्तु खुरादिति (?) ।
 तदूर्ध्वं द्विगुणा ज्ञेया ग्रासादस्य समुच्छ्रितः ॥
 एकेन कुम्भकः कार्यो भागेन समवर्जितः ।
 ममूरकस्तु भागेन पादोनेन विधीयते ॥
 कार्यं पदस्य पादेन ततश्चान्तरपत्रकम् ।
 मेखलार्धपदेन स्याच्चन्द्रशालाविभूषिता ॥
 जङ्घा तदूर्ध्वं कर्तव्या सार्धं पदचतुष्टयम् ।
 भागेनैकेन कुर्यात् मेखलान्तरपत्रकम् ॥
 कर्णमूत्रं त्रिभिर्भागैः कुर्यात् सकलशाण्डकम् ।
 तदूर्ध्वं द्विपदानि स्युः कृतान्युच्छ्रायमानतः ॥
 पूर्वोक्तानामनीपां च प्रक्षेपः स्यात् पदां(शतः) ।
 चतुर्धा कृतविस्तारं संविभज्य पदद्वये ॥

(संद्रस्यादितिक्तयनि?) सिंहक्रान्तानि कारयेत् ।
 विस्तारं मूलमञ्जर्याः कुर्यात् पङ्कभागसंमितम् ॥
 सप्तभागिकमुच्छ्रायं कैलासेऽस्याः प्रकल्पयेत् ।
 भागार्धेन भवेद् (भाग?)भागिकोच्छ्रायमण्डकम् ॥
 चण्डिकामर्धभागेन कलशं सार्धभागिकम् ।
 कुर्वीत शिखरं चास्य स्वस्तिकस्य यथोदितम् ॥
 युक्तं भूमीभिरष्टाभिर्मञ्जरीभिरलङ्कृतम् ।
 सिंहकर्णैर्विचित्रैश्च भद्राण्यस्य विभूषयेत् ॥
 कर्तव्यः स्कन्धविस्तारस्तस्मिन् पदचतुष्टयम् ।
 विदधीत समालेखमूत्रेण त्रिगुणेन च ॥
 एवं + + + + + कैलासं विदधाति यः ।
 विभूतिं लभते सोऽत्र सुखसौभाग्यसंयुताम् ॥
 कामानवाप्य विविधान् कीर्तिमारोग्यमेव च ।
 भुक्त्वा भोगांश्च कैलासे कल्पान्ते यावदीप्सितम् ॥
 शर्वं पदमवाप्नोति शान्तं ध्रुवमनामयम् ।

कैलासः ।

त्रिविष्टपमथ ब्रूमः प्रासादममरप्रियम् ॥
 सेवितं यक्षगन्धर्वसिद्धविद्याधरादिभिः ।
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे विंशत्यंशविभाजिते ॥
 पदभागविस्तृता शाला स्यान्नतुर्भाननिर्गमा ।
 चतु(रंश?श्श)ती कोष्ठकानां द्वाभिसत्यभिरा भवेत् ॥
 आशात्रयस्थितैर्भद्रेः सार्धैरेवं प्रजायते ।
 कुर्याद् गर्भगृहाण्यर्द्धं (दिर्दुप्परादिभिः) शानि तु ॥
 कोणे तु षोडशांशानि नग्मये चतुर्भिः चतान् ॥
 निक्षिद्वाद्दशासिर्गर्भैर्विजायति विष्टपः ॥
 चतुःषष्टिपदः क्षारो मध्ये प्रागाद्गतावकाः ।
 पदः षोडशानिस्तस्य मध्ये गतं प्रकल्पयेत् ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे(विभागाद्य?) विभाजिते ।
 चतुर्भागा भवेच्छाला सपा(दै?दां)शविनिर्गता ॥
 कर्णशृङ्गद्वयं कार्यं प्रत्येकं भागविस्तृतम् ।
 पादोनपदनिष्क्रान्तं + + + + + ॥
 भागैश्चतुर्भिर्गर्भः स्याद् भित्तिः कार्या तु भागिका ।
 भ्रमन्तिकापि भागेन बाह्यभित्तिश्च भागिकी ॥
 भागद्वयेन कुर्वीत दिक्त्रयेऽस्य चतुष्किकाम् ।
 पुरतो मण्डपं कुर्यादुपेतं कर्मशोभया ॥
 एवं विभागान् संकल्प्य यथोद्देशं विचक्षणः ।
 मन्दरस्येव कुर्वीत कर्मशोभां समन्ततः ॥
 ऊर्ध्वतो यत् प्रमाणं स्यात् तदस्येहाभिधीयते ।
 अधस्तान्नागपीठः स्यात् प्रमाणेन पदद्वयम् ॥
 हीरकं भागपादेन तस्य मध्ये निवेशयेत् ।
 विस्ताराद् द्विगुणं चोर्ध्वमानं भागार्थसंयुतम् ॥
 ऊर्ध्वमानस्य मध्ये स्यात् पदपदानिवर्हणादयः(?) ।
 वेदीवन्धश्च तन्मध्ये कर्तव्यः सार्धभागिकः ॥
 ततो हीरकसंयुक्ता जङ्घा पदचतुष्टया ।
 मेखलान्तरपत्रं च कार्यं भागार्थसंमितम् ॥
 भागद्वयेन कर्तव्यं वेदिका राजसेरका ।
 चन्द्रावलोकं भागेन विदधीत विचक्षणः ॥
 कुर्यात् पदस्य पादेन तत्रैवासनपट्टकम् ।
 पदद्वयेन सांशेन स्तम्भमूर्ध्वं निवेशयेत् ॥
 अर्धभागेन कुर्वीत भरणं स्तम्भशीर्षके ।
 अर्धभागेन पट्टं चच्छाद्यं सौर्ध्वपदायतम् ॥
 (द्वे सन्त पटिका?) कार्या ततो भागार्थसंमिता ।
 ऊर्ध्वमन्तरपत्रस्य (कथमोय?) यथाक्रमम् ॥

कुर्याद् ग्रीवाण्डकलशं चन्द्रिकाभिः समं बुधः ।
 उच्छ्रायं कर्णशृङ्गाणां सार्धभागं प्रमाणतः ॥
 स्तम्भसूत्रेण कर्तव्यं नष्टशृङ्गं विचक्षणेः ।
 कूटानि पञ्च कुर्वीत यथावत् प्रथमक्षितौ ॥
 (प्राग्ग्री)णि भूमौ द्वितीयायां तृतीयायां तु कूटकम् ।
 कुर्यात् तुल्यसमुच्छ्रायविस्तारं तत्र मानतः ॥
 कर्णे कर्णे तु कूटानि भवन्त्येवं पृथङ् नव ।
 शुकनासोन्नतिः कार्या सार्धभागद्वयं बुधैः ॥
 स्यादुरोमञ्जरी पूर्वा नष्टशृङ्गस्य चोपरि ।
 विस्तारात् त्रिपदा सा स्यात् सार्धभागत्रयोन्नता ॥
 भागं सपादं कुर्वीत ग्रीवांसकलशाण्डकम् ।
 द्वितीयशृङ्गस्योर्ध्वं स्यादुरोमञ्जरिकापरा ॥
 विस्तीर्णा चतुरो भागान् कार्या पञ्चपदोच्छ्रिता ।
 स्कन्धावरोहणग्रीवाचन्द्रिकाकलशैः सह ॥
 एतेषां तु समुच्छ्रायः सार्धभागं विधीयते ।
 उरःशिखरकाण्यष्टावेवं कुर्याच्चतुर्दिशम् ॥
 तृतीयकर्णशृङ्गस्य स्यादूर्ध्वं मूलमञ्जरी ।
 सा भवेत् पद्मपदोच्छ्राया पदपञ्चकविस्तृता ॥
 त्रिपदः स्कन्धविस्तारो दिक्षु स्याच्चतसृष्वपि ।
 कूटैश्च विविधन्यासैरलङ्कुर्यात् मञ्जरीम् ॥
 अर्धभागोच्छ्रिता ग्रीवा सार्धाशद्वयविस्तृता ।
 अण्डकस्य समुच्छ्रायस्त्रिभागोनपदं भवेत् ॥
 कर्परं चार्धभागेन कलशः पदमुच्छ्रितः ।
 नवभिः शिखरैर्भुक्तः कर्तव्योऽयं समन्ततः ॥
 वेदीचन्धस्तु सर्वत्र कर्तव्यः शतवास्तुवत् ।
 कुर्यात् तेन विभागेन कलशानपि शोभनान् ॥
 मञ्जरीः पञ्चपत्राग्रतुल्याः सर्वत्र कारयेत् ।
 अण्डकानि भवन्त्यथ पत्वारिश्च पञ्च च ॥

एवंविधं विधत्ते यः प्रासादं पृथिवीजयम् ।
 पृथ्वीं विजयते कृत्स्नां निजितारिः स पार्थिवः ॥
 अन्योऽपि कश्चिद् यः कुर्याद् (वर्णाच्छत?) भक्तिमानिमम् ।
 सोऽपि सौख्यमवाप्नोति पश्चादन्ते परं पदम् ॥
 पृथिवीजयः ॥

अतःपरं प्रवक्ष्यामि प्रासादं क्षितिभूषणम् ।
 अमरैर्वन्दितं सर्वैस्तथा चाप्सरसां गणैः ॥
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे द्वादशांशविभाजिते ।
 भद्रे पञ्च पदानि स्युः कोणे कार्यं पदत्रयम् ॥
 गर्भं षोडशभिर्भागैस्तस्य कुर्याद् विचक्षणः ।
 कर्तव्या पदविंशत्या कन्दभित्तिः समन्ततः ॥
 प्रासादस्यास्य कर्तव्या रमणी तु पदद्वयम् ।
 प(ट्टि?दि)का बाह्यभित्तिः स्याद् द्विपदो भद्रनिर्गमः ॥
 जलान्तरं तु भागस्तु + + + + गवाक्षकाः ।
 भद्राणां मध्यतः पञ्च(स?)प्रकाशाः (स?मु)मनोरमाः ॥
 बाह्यालिन्दं प्रकुर्वीत वेदीनालविभूषितम् ।
 तस्योपरिष्ठात् कुर्वीत माल्युच्छ्रायं सुशोभनम् ॥
 ऊर्ध्वमानमथ त्र्यम् प्रासादे क्षितिभूषणे ।
 क्षुरकं तस्य कुर्वीत त्रिपदं पीठसंयुतम् ॥
 अस्योच्छ्रायस्ततः सार्धं(पदाः स्यात्?)पञ्चविंशतिः ।
 एतन्मध्ये तु दशभिः पदैः कार्यस्तुलोदयः ॥
 रेखा पञ्चदशांशा स्यात् स्कन्धशीर्षं पदार्धकम् ।
 वेदीबन्धस्तु कर्तव्यः सार्धभागद्वयं बुधैः ॥
 जङ्घा पद्भागिकोच्छ्राया भागार्धे(पेचराः?)शुभाः ।
 मेखलान्तरपत्रं च पदेनैकेन कारयेत् ॥
 कार्यं चतुष्किका पञ्चविस्तारा त्रिपदोच्छ्रिता ।
 तदूर्ध्वतः क्रमः कार्यो द्विपदोऽन्योऽधिकं पदम् ॥

भूमयः पञ्च कर्तव्या न्यूना(+च?)यथोत्तरम् ।

प्रथमा भूमिका (का)र्या सार्धं(द्विभागास्तु गवाक्ष?)भागत्रयं बुधैः ॥

सपादास्तु त्रयो भागा द्वितीया(याःस)मुदाहृता ।

तृतीया त्रिपदा + + + + + परा ॥

१ + + + + + पञ्चमी भूमिरिष्यते ।

पादहीनपदं ग्रीवा सपादपदमण्डकम् ॥

चन्द्रिका भागमेकं स्यात् पद्मपत्रनिभा शुभा ।

त्रिपदं कलशं विद्यान्मातुलिङ्गसमन्वितम् ॥

द्राविडं नागरं वापि वाराहं वास्तु शोभनम् ।

(यदेकं तेवते कर्तुं?)तद्रूपं तं प्रकल्पयेत् ॥

नानाप्रकारैः स्तम्भैश्च नानाभूषणभूषितैः ।

कलशैः पद्मपत्रैश्च हीरकैश्चोपशोभितम् ॥

कृत्रिमग्रासयुक्ताभिश्चन्द्रशालाभिरन्वितम् ।

मकरग्राससंयुक्तैस्तोरणैर्लक्षणान्वितैः ॥

(कोणोत्कण्ठैः?)विचित्रैश्च रूपैश्चित्रैश्च शोभितम् ।

कर्म रम्यं प्रकुर्वीत यथावद् वित्तविस्तृतम् ॥

गुणवान् नृपतिर्यद्वद् भूपयत्यखिलां महीम् ।

क्षितिं विभूषयत्येवं प्रासादः क्षितिभूषणः ॥

द्रव्येषु रेणुसंख्या या सुधायामपि यावती ।

तावद्युगसहस्राणि कर्ता शिवपदे वसेत् ॥

क्षितिभूषणः ॥

संस्थानं सर्वतोभद्रस्याधुना परिकीर्त्यते ।

चतुरश्रीकृतं क्षेत्रं विभजेद् दशभिः पदैः ॥

तत्र गर्भो भवेत् तावान् यावत् स्याद् ब्रह्मणः पदम् ।

+ + + + + भित्तिश्चेति पदं पदम् ॥

१. 'न्यूनास्ताश्च' इति स्यात् ।

२. 'तृतीया त्रिपदा कार्या पादोनत्रिपदा परा ।' इति पाठ्यं स्यात् ।

३. 'अर्धशनिप्राभाया द्व पद्ममी भूमिरिष्यते' इति पाठ्यं स्यात् ।

भागपटकेन भद्रं स्यात् सार्धभागविनिर्गतम् ।
 कर्णं द्विभागिकं कुर्यात् + लमाग्रसमन्वितम् ॥
 पदपादस्य पादेन विस्तारो जलवर्त्मनः ।
 यत्रैकमेव भद्रं स्याच्चारुस्तम्भैरलङ्कृतम् ॥
 (स?सं)मोददं स्यात् तद् वस्तु धनधान्यसुखावहम् ।
 चतुर्भिर्विस्तृतं भागैः सार्धभागविनिर्गतम् ॥
 भद्रस्यैवाग्रतो भद्रं त(च्छा?च्च)वाह्योदरं त्रिदुः ।
 विस्ताराद् द्विगुणश्चास्य समुच्छ्रायः प्रकीर्तितः ॥
 कुम्भकं भागिकं कुर्याद् भागार्धेन मसूरकम् ।
 भागपादेन कुर्वीत ततश्चान्तरपत्रकम् ॥
 मेखलायाः समुच्छ्रायमर्धभागेन कारयेत् ।
 चतुर्भागोन्नता जङ्घा प्रासकिङ्किणिकान्विता ॥
 पदं पादविहीनं स्यात् (कृष्णं?)स्थानेषु हीरकम् ।
 मेखलान्तरपत्रं च पदार्धेन समु(ष्टु?च्छ्र)तम् ॥
 त्रिभागविनतं कुर्याद् भागे चन्द्रावलोकनम् ।
 ऊर्ध्वमासनपट्टस्य स्तम्भं कुर्यात् पदद्वयम् ॥
 हीरग्रहणशीर्षं च पदेनैकेन कारयेत् ।
 भागेनैकेन कुर्वीत पट्टपिण्डं विचक्षणः ॥
 द्विपदं छाद्यविस्तारं तदर्धेन(तुलस्वनमः?) ।
 जठरं बाह्यसीमा च भित्तयश्चान्धकारिका ॥
 जङ्घोत्सेधश्च कर्णश्च + + + + यथा भवेत् ।
 कोणेषु रथिकाः कार्याः कलशान्ताः पदत्रयम् ॥
 द्वितीया द्विपदोच्छ्राया रथिका परिकीर्तिता ।
 उच्छ्रायः सिंहकर्णस्य प्रथमस्य पदत्रयम् ॥
 पदद्वयं द्वितीयस्य तत एव समुन्नतिः ।
 शृङ्गाणां स्यान्मिथः क्षेपो भागं (प+?)यथोत्तरम् ॥
 भागान् सप्तोच्छ्रितं कुर्याच्छिखरं विस्तृतं + पट्ट ।
 अर्धभागोच्छ्रिता ग्रीवा स्यादेकं भागमण्डकम् ॥

चन्द्रिकार्धपदेन स्यात् सार्धं तु कलशः पदम् ।
 मञ्जरीः पद्मपत्राग्रे तुल्याः सर्वत्र कारयेत् ॥
 अधस्ताद् भद्रपीठं तु वास्तु(वाः)पा,देन शोभनम् ।
 यः कुर्यात् सर्वतोभद्रं सर्वलक्षणसंयुतम् ॥
 जयश्रीर्जायते तस्य + + + + + ॥

सर्वतोभद्रः ॥

वृमो(विमानं दस्या सादस्याथ?) लक्षणम् ॥

गणगन्धर्वजुष्टस्य बह्वभस्य दिवस्वतेः ।

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे यथा प्रविभाजिते ॥

विमानं विभजेन प्राज्ञः श्रेयःपुष्टिमुत्पावदम् ।

भद्रश्चतुर्भिस्तं कुर्यात् कर्णप्राग्ग्रीवकस्तथा ॥

विस्तारार्थं भवेद् गर्भो यच्छेषं तेन भिन्नयः ।

(त्रिंशद्वा)मतो ज्येष्ठो मध्यमः पञ्चविंशतिः ॥

कनीयांस्तु विधानव्यः पोट्याप्येकविंशतिः ।

जातिशुद्धो भवेदेको मञ्जरीभिस्तथापरः ॥

मिश्रकस्य विमानस्य त्रैविध्यमिति कीर्तितम् ।

(ज्येष्ठो मिश्रको निर्माणिः सर्गः केशव इत्यनु ॥ १ ॥

मध्यमो जातिशुद्धस्तु मञ्जरीभिर्वायव्यैः ॥

कनीयांश्च विधानव्यां स तर्जनीभ्यश्चक्रैः ॥

कर्णप्राग्ग्रीवैस्तथाः कनीयां भामर्यास्तथाः ॥

भागार्थं शोभणां प्राचीं चच्छेषं तस्य केशव ॥

भामर्याधेन कनीयं तस्मात् मञ्जरीभिर्वायव्यैः ॥

मिश्रकस्य चतुर्भागैः प्रत्येकं विभजेत् ॥

शूद्रशूद्रानुवारेण पाश्चिमांशं चच्छेषं ॥

जयश्रीर्जायते तस्य सर्वतोभद्रं तस्यै ॥

१. विमानं दस्या सादस्याथ? लक्षणम् ॥

२. विमानं दस्या सादस्याथ? लक्षणम् ॥

द्विपदं पीठमाख्यातं किन्नरैरुपशोभितम् ।
 स्कन्धं यावच्च भागानां द्वाविंशतिरुदाहृता ॥
 (वेदीवन्धो तु + + + सार्धभागद्व + भवेत् ?) ।
 (चतुर्भागोऽत्र + छाया भागार्धेन + किन्नरा ?) ॥
 मेखलान्तरपत्रं च पदमेकं समुन्नतम् ।
 रूपाणि जङ्गागात्रे स्वुर्वा (चारिणां रथके ?) ॥
 (स्तरसेका ?) तस्य मध्ये स्यान्मकरग्रासभूषिता ।
 भल्लिकातोरणेशारुवण्टाचमरकिन्नरैः ॥
 ऊर्ध्वं तुलाभमाणस्य चतुर्भौमं तु प्रथम (?) ।
 + + + + भूमिकायां चतुर्भागिसमुन्नता ॥
 (मोर्धभागा स्वपरा विस्तारा ?) सार्धभागिकी ।
 संशेषः प्रथमतोऽस्याः कञ्चग्रान्ते पदं भवेत् (?) ॥
 मृतीया त्रिपदा कार्या सपादपदविस्तृता ।
 पदानेन तु संशेषस्तस्याः कार्या विचक्षणैः ॥
 चतुर्धा त्रिपदा कार्या भूमिर्भेदव्यया सह ।
 अथिता मन्त्ररिमित्र नील्योत्पलद्वयकृतिः ॥
 मोत्रः पञ्चगुणं मूत्रं ऐतान्यं तत्र वर्तयेत् ।
 ध्यामश्चमपमात्रा ? प्रवेशः प्रथमो भुवः ॥
 ततोऽग्नेर्द्विदृष्टो द्वायन्वस्त्रुयस्त्रु तन्वमः ।
 पदानं वेदिहोत्रे च (याद) विस्त्रागत पञ्चमागिही ॥
 ग्रीवा पादोत्तमं स्यात् सपादं जागवण्डकम् ।
 हृत्तो हृत्स्वो च मन्दाङ्गुमुमाकृतिः ॥
 चन्द्रिका ग्रीवाया मूला कल्यो द्विदोत्तमः ।
 त्रिदने उन्वके सुपदं मयव्यमसंयुतम् ॥
 चतुर्वेदम सन्वेदिष्टः अ तुर्गदनेव ॥
 वेदेन विमनित इत्यत्र द्वे नि प्राग्वः ॥

नन्दनस्याथ वक्ष्यामः प्रासादस्येह लक्षणम् ।
 द्वाविंशतिकरं क्षेत्रमष्टया प्रविभाजयेत् ॥
 चतुर्भागप्रविस्तारं तस्य भद्रं प्रकल्पयेत् ।
 भागेनैकेन निष्क्रान्तं प्राग्ग्रीवं चास्य शोभनम् ॥
 मूलकर्णस्य पदिकौ कर्तव्यौ पार्श्वगौ रथौ ।
 षडङ्गुलं त्र्यङ्गुलं वा चतुरङ्गुलमेव च ॥
 जलान्तरं प्रकुर्वीत दीयते तत्र मञ्जरी ।
 गर्भश्चतुर्भिर्भागैः स्याच्छेषं भिन्न्यन्धकारिका ॥
 द्विपदं कन्दभद्रं स्यात् पदपादेन निर्गतम् ।
 पुरतो मण्डपं चास्य सुग्रीवं नाम कारयेत् ॥
 द्वैगुण्यं मूर्धविस्तारार्थं भ + + + वेदिका ।
 रेखामस्य तथा कुर्यात् कैलासस्य यथोदिता ॥
 भूमयः षड् विधातव्या द्वादशाण्डाः पृथक् पृथक् ।
 नन्दयत्येप कर्तारमिह लोके परे च यत् ॥
 नन्दनो नाम तेनोक्तः प्राज्ञैः प्रासादसत्तमः ।

नन्दनः ॥

अ(था)भिदध्मः प्रासादं स्वस्तिकं स्वस्तिदायकम् ॥
 देवासुरगणैर्द्वन्द्वं यक्षसिद्धमहोरगैः ।
 ज्येष्ठमध्यकनिष्ठस्य तलच्छन्दोऽस्य (यदेशः? यादृशः) ॥
 यादृगूर्ध्वप्रमाणं च तत् सम्यगिह कथ्यते ।
 चतुरश्रे समे क्षेत्रे पञ्चविंशतिहस्तके ॥
 सूत्रपातं प्रकुर्वीत कर्णतिर्यङ्मुखायतम् ।
 ततः सीमार्थसूत्रेण वृत्तमालिख्य निधितम् ॥
 द्वात्रिंशता समन्ता(त्)द्रेखाभिर्विभजेत् ततः ।
 वृत्तं (तथोमुयाताक्षि 'दिर्विदि?')स्थाभिरङ्कयेत् ॥
 दिक्कर्णसूत्रयोर्मध्यं (ततो सेव?)त्रयं युधः ।
 कुर्याद् द्वात्रिंशदेवं स्युर्भागास्तुल्यप्रमाणकाः ॥

ऐन्ध्यादिष्वीशपर्यन्तास्वष्टौ शालाः प्रकल्पयेत् ।

शालान्तरेषु कुर्वीत कोणानष्टौ यथाक्रमम् ॥

कोणात् कोणं नयेत् मूर्त्रं त्यक्त्वा शालाद्वयं मुहुः ।

विदिक्ष्वष्टसु मूर्त्राग्रं पत्रपत्रवदानयेत् ॥

कोणाश्च रथिकाश्चैव भवन्त्येवं सुलक्षणाः ।

चतुरश्रा भवन्त्यष्टौ शाला भागद्वयायताः ॥

अंशानि कर्णभद्राणि पत्रपत्रनिभानि च ।

ऊर्ध्वमानं भवत्यस्य द्विगुणं (हूर्ध्वमा+नात्?) ॥

विंशत्या विभजेदूर्ध्वं तत्राष्टाष्टांशस्तुलोदयः ।

शेषां तु मञ्जरीं कुर्यादास्कन्धावधि बुद्धिमान् ॥

विस्तारपञ्चमांशेन पीठोच्छ्रार्यं प्रकल्पयेत् ।

त्रिपदं वेदिकावन्यं (सुएकेण?) समन्वितम् ॥

जङ्घांशलं(व)नां कुर्याच्चतुर्भागसमुच्छ्रिताम् ।

मेखलान्तरपत्रं च भागेनैकेन कारयेत् ॥

द्वादशांशोच्छ्रिता रेखा कार्या सप्त च भूमयः ।

अर्धभागोच्छ्रिता ग्रीवा विस्तारेण चतुष्पदा ॥

स्कन्धः पद्भागविस्तारः कार्या वृत्तः सुशोभनः ।

समालिखेदेषु कोशं विस्तारात् त्रिगुणात्मना ॥

सूत्रेण येन वा स्कन्धो भवेत् पद्भागवित्तुतः ।

हस्तैः स्यात् पञ्चविंशत्या ज्येष्ठः षोडशभिः परः ॥

कनीयान् स्वस्तिको ज्ञेयः करैर्द्वादशभिः पुनः ।

भागपद्कसमुच्छ्रया जङ्घा ज्येष्ठस्य कीर्तिता ॥

मध्यमाद्यमयोः पञ्चचतुर्भागोच्छ्रिता क्रमात् ।

स्वस्तिके कारिते स्वस्ति सर्वलोकस्य ज्ञायते ॥

विशेषतश्च भूपानां कर्तुं च स्यात् सनीहितम् ।

स्वस्तिकम् ॥

सूक्तोपमय नूनः प्रासादं स्यात् स च त्रिधा ॥

हस्तैः क्रमेण ज्येष्ठादिः षोडशद्वादशाष्टभिः ।
ज्येष्ठोऽष्टादश भागान् स्यान्मध्यमस्तु चतुर्दश ॥
कनीयान् दश भागा(न्) (यस्या)त् सदस्तस्याभिधीयते ।
चतुरश्रीकृते क्षेत्रे भक्तेऽष्टादशभिः पदैः ॥
कोष्ठकानां विधातव्यं चतुर्विंशं शतत्रयम् ।
भागपट्टत्रिंशता कुर्यान्मध्ये गर्भगृहं शुभम् ॥
वाह्यभित्तिस्तथान्धारी मध्यभित्तिरिति त्रयम् ।
पृथक् पृथक् स्याद् द्विपदविस्तारं परिमाणतः ॥
चतुर्भागायता शाला भागेनैकेन निर्गता ।
शालाया भूपणं भद्रं विधायैतत् पदद्वयम् ॥
तत्पार्श्वद्वितये कुर्यात् त्वधिके भागिके बुधः ।
वार्यन्तराणि कुर्वीत दिक्ष्वष्ट चतसृष्वपि ॥
वार्यन्तरानन्तरं तु भागद्वितयसंमितान् ।
अष्टौ कुर्वीत रथिकांश्चतुर्दिशमनुत्तमान् ॥
कोणे द्विभागिकैः कुर्याद् रथानामांससंमिता (?) ।
कोणे रथान् परित्यज्य शेषं कुर्याद् यथोदितम् ॥
मध्यमोऽयं समाख्यातः कनीयान् कथ्यतेऽधुना ।
चतुरश्रीकृते क्षेत्रे दशभागत्रिभाजिते ॥
चतुर्भागा भवेच्छाला भागेनैकेन निर्गता ।
एकभागप्रमाणानि पार्श्वे वार्यन्तराणि च ॥
तेषां मध्ये प्रकुर्वीत सरोजदलसंनिभम् ।
रथक(र्णोन्त्यःर्णे य)थावच्च सलिलान्तरभूपणम् ॥
भागार्धं क्षोभणा कार्या चतुष्कोणे व्यवस्थिता ।
सार्धभागोन्मितान् कुर्यात् कर्णप्राग्ग्रीवकान् शुभान् ॥
वार्यन्तराणां(१)प्रोक्ता भूपश्रोभिः कनीयसि ।
प्रासादे मध्यमेऽप्येषा ज्यायस्यपि च कल्प्य(वैःते) ॥

१. 'वा प्रोक्ता भूपश्रीभिः' इति त्वान् ।

द्वारोच्छ्राय(स्तु)विस्तारात् कर्तव्यो द्विगुणो बुधैः ।
 ऊर्ध्वमानमथ ब्रूमः श्रीवत्सस्य यथोदितम् ॥
 पीठं प्रासादपादेन खुरकश्च पदार्धकः ।
 विस्ताराद् द्विगुणं (चार्ध?) कर्तव्यं कुम्भकादितः ॥
 अंशैर्द्वादशभिस्तेषु कुर्याच्छिखरमायतम् ।
 अष्टभागं तुलोच्छ्रायं वेदी सार्धद्विभागिकी ॥
 कुम्भकं पदिकं कुर्यात् पादोनांशं मसूरकम् ।
 (पादोनं पादेन स्यात्?) मेखलान्तरपत्रकम् ॥
 चतुर्भागोच्छ्रिता जङ्घा भागार्धं हीरकं भवेत् ।
 मेखलान्तरपत्रं तु भागेनैकेन कारयेत् ॥
 पङ्कभागविस्तृतं स्कन्धं भाजयेद् दशभिः पदैः ।
 यथा मूले तथा स्कन्धेऽप्यङ्गप्रत्यङ्गकल्पना ॥
 स्कन्धपार्श्वे तु या रेखा व्यक्ताश्च स्कन्धवाह्यतः ।
 भजेत् ता दशभिर्भागै(रूढ?)मेवं विभाजयेत् ॥
 (ऊर्ध्वार्धः प्रतिभागस्तत्रास्यात्?) पत्रसंहतिः ।
 तदाकृतिं बाह्यरेखां गात्रे गात्रे प्रकल्पयेत् ॥
 अनुमात्रगुणं सूत्रं त्रिभागेन समन्वितम् ।
 भ्रमयेत्(कोणरेखा स्यात् प्रत्यङ्गैस्त्रयस्त्रयपञ्चकान्?) ।
 पङ्कगुणेन तु सूत्रेण रथरेखां समालिखेत् ।
 अत्र स्युर्भूमयः सप्त प्रथमांशद्वयोच्छ्रिता ॥
 द्वितीया पदपादार्धहीना भूमिस्ततो भवेत् ।
 पादद्वयं भागहीनं तृतीयायां भवेद् भुवि ॥
 सार्धभागविहीनं च चतुर्थी स्यात् पदद्वयम् ।
 पञ्चमा सार्धभागेन पदं स्यात् स्कन्धशीर्षकम् ॥
 एवं परस्परं भागं पादार्धेन(जिता?) सुवः ।
 त्रिभागीकृत्य शिखरं तत्रैकं भागमुत्सृजेत् ॥
 शुक्रनासोच्छ्रितिः शेषं सिंहेनाधिष्ठिता भवेत् ।
 पादोनभागा ग्रीवाण्डं सपादं पदमुच्छ्रितम् ॥

तावत् स्वर्गे वसेच्छ्रीमान् यावदिन्द्राश्चतुर्दश ।

हंसः ॥

रुचकाख्यमथ ब्रूमः प्रासादं पुरभूपणम् ॥

आदौ समस्तवस्तूनां कल्पितं पञ्चजन्मना ।

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे चतुर्भिर्भाजिते पदैः ॥

भागमेकं भवेद् भित्तिस्तस्य गर्भः पदद्वयम् ।

वेदीवन्धं तथा जङ्घां मेखलामूर्ध्वमेखलाम् ॥

मानमूर्ध्वमधश्चास्य श्रीवत्सस्येव कारयेत् ।

कोणेषु स्तम्भकाः कार्याः (हाइ हीइसार्प?)समन्विता ॥

मध्ये तु रथिका कार्या चारकर्मविभूषिता ।

चतुर्भौमिदं कार्यं (स्तवैवसट?)कर्मणा ॥

युक्तं मध्ये तु रथिका प्रतिभूमिं विधीयते ।

रुचकः कारितो येन प्रासादः शुभवास्तुनि ॥

कुलानां तारितं तेन शतमात्मा तथोद्धृतः ।

रुचकः ॥

वर्धमानमथ ब्रूमो धर्मरोग्ययशस्करम् ॥

तस्याष्टगुणमैश्वर्यं भवेद् यः कारयेद् यदि ।

चतुरश्रं समं क्षेत्रं भाजयेद् दशभिः पदैः ॥

ततो भागचतुष्केन कर्तव्यो मध्यमो रथः ।

एकैकेन विभागेन द्वौ रथौ वामदक्षिणौ ॥

(कर्णास्तु पदा कार्या वर्जं चारिधर्माभिः?) ।

भद्रस्य निर्गमं तत्र भागेनैकेन कारयेत् ॥

भागस्यार्धेन पार्श्वस्थरथकानां विनिर्गतम् ।

विस्तारार्धेन गर्भः स्याद् यच्छेषं तेन भित्तयः ॥

ऊर्ध्वमानं भवेदस्य स्वस्तिकस्य यथोदितम् ।

वर्धमानोऽयमाख्यातो यशोलक्ष्मीविवर्धनः ॥

वर्धमानः ॥

गरुडस्याधुना ब्रूमः प्रासादस्येह लक्षणम् ।
 प्रासादः सर्वदेवायं गरुडध्वजवल्लभः ॥
 द्वाविंशतिपदं क्षेत्रं(भक्तालया समायतम् ?) ।
 पूर्वापरिण दशभिर्भागैर्भूयो विभाजितम् ॥
 कुर्वीत मध्ये प्रासादं तस्मिन् शतपदं बुधः ।
 द्विपदं भित्तिविस्तारं कर्णाश्रगपि द्विभागिकान् ॥
 उत्सृष्टमूलप्रासादमुभयोरपि पक्षयोः ।
 अग्रतः पृष्ठतश्चापि द्वौ द्वौ भागौ परित्यजेत् ॥
 शेषेण षट्पदौ ++ सहसायामविस्वृती (?) ।
 गर्भः षोडशभिर्भागैर्भित्तिः स्यात् पदमेतयोः ॥
 श्रीवत्सहंसरुचकवर्धमानेषु कोऽपि यः ।
 रोचते गरुडं कुर्यात् तमेकं स्वेच्छया बुधः ॥
 तस्य पक्षौ विधातव्यौ निर्गतौ वामदक्षिणम् ।
 एवमेते त्रयो गर्भा गरुडे परिकीर्तिताः ॥

गरुडः ॥

प्रासादस्य गजस्याथ लक्षणं सम्प्रचक्ष्महे ।
 चतुःषष्टिपदं क्षेत्रं विधाय विभजेद् गजम् ॥
 ततः सीमार्धमूत्रेण पृष्ठतो वृत्तमालिखेत् ।
 गर्भं कुर्यात् तदर्धेन ++ रेखाकृतिं त + ॥
 ऊर्ध्वग्रमाणमधुना गजस्य स्पष्टमुच्यते ।
 स्तम्भाश्चतुष्पदोच्छ्रयाः कार्याः कोणचतुष्टये ॥
 जङ्घेयमस्य निर्दिष्टा(खट्टस्तम्भान्तरं?) भवेत् ।
 षष्टिकान्तरपत्राभ्यां सप्तभागेन मेखला ॥
 अग्रतः शूरसेनं स्यात् पृष्ठतस्तु गजाकृतिः ।

गजः ॥

प्रासादस्या(धुना) लक्ष्म सिंहसंज्ञस्य कथ्यते ॥
 चतुरश्रं समं क्षेत्रं विभजेन्नन्दने यथा ।
 गर्भो भागैश्चतुर्भिः स्यात् क(श्च?न्द)भिचिस्तु भागिकी ॥

भागेनान्धारिका कार्या बाह्यभित्तिश्च भागिकी ।
भद्रं भागैश्चतुर्भिः स्याद् भागेनैकेन निर्गतम् ॥

कर्णस्तु द्विपदः कार्यो जलमार्गसमान्वितः ।
द्विपदं पीठमुत्सेधात् सिंहरूपैरधिष्ठितम् ॥

खुरकं च पदार्धेन कुर्यात् पीठस्य मध्यतः ।
कुर्याद्दूर्ध्वं + विस्ताराद् द्विगुणं कलयाधिकम् ॥

द्विपदं वेदिकावन्धं जङ्घा चास्य चतुष्पदम् ।
मेखलान्तरपत्रं च विदध्याद् भागिकोदयम् ॥

त्र्यंशानि कर्णशृङ्गाणि ग्रीवाण्डकलशैः सह ।
सिंहकर्णस्तु कर्तव्यः समुच्छ्रायाच्चतुष्पदः ॥

सिंहरूपसमाक्रान्ते प्रासादे सिंहसंज्ञिते ।
ऊर्ध्वतः कर्णशृङ्गस्य पदपदा मूलमञ्जरी ॥

सप्तभागसमुत्सेधा लताभिः पञ्चभिर्युता ।
ग्रीवोच्छ्रायस्तु कर्तव्यः पदं पादेन वर्जितम् ॥

अण्डकं तु पदोत्सेधं रेखायां च द्विनिस्सृतम् ।
पादोनभागमुच्छ्रायश्चन्द्रिकायाः प्रकीर्तितः ॥

द्विपदं कलशं कुर्याद् बीजपूरकसंयुतम् ।
(यद्दामं?) कारयेत् स स्यादजेयः पुरुषो ध्रुवम् ॥

ज्यवहारे नृपकुले सङ्ग्रामे शक्रसंसदि ।

सिंहः ॥

इदानीं पञ्चकं धूमः प्रासादं पद्मसन्निभम् ॥

यः (फंसान्?) कारयत्येनं स कामाह्वंभतेजस्विजान् ।
षतुरश्रीकृते क्षेत्रे + + दिधु विदिधु वा ॥

न्यस्येत् पृथक् पृथक् सूत्राप्यथ वृत्तं प्रसाधयेत् ।
(दिधिस्त्रयोर्मध्ये चतुरश्रं तु रोमकम् ॥

१. 'य इमम्' इति वा 'यः विद्वत्' इति वा स्थाने । २. 'सुन्दर' इति

भद्रं तद्ग्रतः कुर्याद् विस्तारेण चतुष्पदम् ।
भागार्थनिर्गमं सम्यग् (दिक्षु) सर्वास्वयं विधिः ॥

कर्णस्यार्थं नयेद् गर्भाद् वृत्तं तत् पूर्वमालिखेत् ।
अनुसारेण वितरेद्ङ्ग्रत्यङ्गनिर्गमम् ॥

सार्धभागं गजाधारं साव्रजपत्रं समेखलम् ।
कुर्यात् पदं पादहीनं जङ्घकुम्भसमुच्छ्रितम् ॥

भागपादेन कणकं पादोनान्तरपत्रकम्
नदर्थं ग्रासहारं च भागार्थं खुरकं तथा ॥

खुरकेण समं प्रोक्ता पीठस्यैषा समुच्छ्रितिः ।
विस्ताराद् द्विगुणश्चायं (स्याद्दूर्ध्वकल्पयाधकः?) ॥

तुलोदयो विधातव्यस्त्रयोदशभिरंशकैः ।
विंशत्यंशं तु शिखरं + + + + श्वतुष्पदम् ॥

पादोनभागद्वितयं कुम्भकं तेषु कारयेत् ।
भागनेकेन कलशमर्थेनान्तरपत्रकम् ॥

पादहीनपदं कार्या मेखलास्य सुशोभना ।
जङ्घा पद्भागिकोच्छ्रया भागार्थं ग्रासपट्टिका ॥

दीरकं चैकभागेन कर्णस्थं परिक्लीतितम् ।
मेखलान्तरपत्रं च सार्धभागसमुभ्रतम् ॥

जङ्घामध्ये तु कर्तव्या रथकारथकास्तथा (?) ।
वृत्तस्तम्भैः समकरैर्ग्रासैर्मुक्तावराटकैः ॥

जङ्घा तु संवृता कार्या मल्लच्छाद्यैर्विशुषिता ।
जलान्तरेषु रूपाणि कुर्यात् सङ्घटकैः सुभैः ॥

कुर्यात् तुलोदयस्योर्ध्वमिमि(?)भूमिजिस्थभिः ।
स्कन्धाष्टांशोऽस्य दूराथा + + + सप्तदशभन् ॥

द्वितीया त्रिपदा प्रोक्ता तुर्थाया पादवज्जिता ।
सार्धभंशा चतुर्था च पादोना पञ्चमो ततः ॥

पष्ठी तु द्विपदा कार्या पादोना सप्तमी ततः ।
अष्टमी तु (कृ?क्षि)तिः कार्या सार्धभागेन संमिता ॥

एकैकस्याः पदार्धेन प्रक्षेपः स्यात् परस्परम् ।
कोणे कूटानि कुर्वीत प्रत्यङ्गे ति(का?ल)कानि च ॥

भद्रे कुर्वीत रथिका विविधाः कर्मसङ्कुलाः ।
रथस्य पार्श्वयोर्लेखाः कर्तव्याथोभयोरपि ॥

वेदिकास्य विधातव्या भागमेकं समुन्नता ।
ग्रीवा तावद् भागमेकमण्डकं द्विपदोदयम् ॥

कुर्यात् सामलसारिं च चन्द्रिकां सार्धभागिकाम् ।
कलशस्त्रिपदः कार्या वीजपूरं वहिस्ततः ॥

पुरतः शूरसेनं स्यान्मध्ये रूपसमाकुलम् ।
मिश्रकस्य विमानस्य सदृशं कारयेदमुम् ॥
भूपणं भवनस्यास्य प्रासादं नन्दिवर्धनम् ।

प्रासादविंशतिरियं परिकीर्तितेह

मेर्वादिका सत्कल्पाकसदापभीष्टा ।

तच्चेन वेत्ति य इमां स समप्रशिलिप-

वर्गाग्रणीर्बहुमन्थ भवेन्वृषाणाम् ॥

इति महाराजाधिराजसमेश्वरश्रीमंत्रदेवानसचिते समराङ्गणसूत्रधारपञ्चाग्रे वास्तुशा

मेर्वादिविंशिका नाम (पट्?सप्त)पञ्चाशोऽध्यायः ॥

—:6:—

अथ प्रासादस्तवनं नाम अष्टपञ्चाशोऽध्यायः ।

—:7:—

प्रासादानां चतुःपश्चिदिदानीमभिधीयते ।

या पूर्वं ब्रह्मणा दत्ता (प्रा?प्र,सादा विन्धकर्मणे ॥ १ ॥

मन्वेवस्थिता वास्तुदेव्याः पूज्या यथोचितम् ।

पूज्यता च मृता तेषां प्रासादे मन्थये च्यते ॥ २ ॥

विमानादिचतुष्पष्टिप्रासादलक्षणं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः । ११७

भागिको रथविस्तारः कर्णिका चार्धभागिकी ।
भागपञ्चकविस्तारं भद्रं यत् (तत्) प्रकीर्तितम् ॥ ८ ॥
(भूणस्तोत्रहेस्तस्य?) निर्गमो भागिकः स्मृतः ।
भागार्धेन विधातव्यः क्षोभणो जलवर्त्मनः ॥ ९ ॥
कर्णिकां जलमार्गं (च) समसूत्रेण मापयेत् ।
अथोच्यते भूमिकानां स्तम्भानां चेह लक्षणम् ॥ १० ॥
विस्ताराद् द्विगुणः स्कन्धः सर्वस्मिन् बुद्धनागरे ।
++++ पञ्चभागा स्याज्जङ्घास्त्रसमुच्छ्रितः ॥ ११ ॥
तिलकानां तथोच्छ्रायो विधातव्यो द्विभागिकः ।
तिलकस्य शिरोघण्टां चकसूत्रेण मापयेत् ॥ १२ ॥
जङ्घामानत्रिभागेन खुरपिण्डीं प्रकल्पयेत् ।
खुरकं वेदिवन्धं च समसूत्रेण मापयेत् ॥ १३ ॥
जङ्घामानत्रिभागेन खुरपिण्डीं प्रकल्पयेत् ।
खुरकं वेदिवन्धं च समसूत्रेण सूत्रयेत् ॥ १४ ॥
द्वितीयभूमिकोत्सेधं सिंहकर्णं विभूषयेत् ।
मस्तके घण्टया युक्ता चतुर्भागोच्छ्रिता च सा ॥ १५ ॥
ततस्तृतीयभून्मेधः पदतुल्यांशवर्जितः ।
चतुर्थी भूमिका कार्या साधेभागत्रयोच्छ्रिता ॥ १६ ॥
मञ्जरीस्तम्भयोर्मध्ये सपातायनमेखला ।
द्वितीया भूमिका या सा सिंहकर्णैरलङ्कृता ॥ १७ ॥
तस्या द्वारं विधातव्यं कपाटद्वयसंयुतम् ।
(स्यावर्द्धात्?) पाटितं द्वारं तृतीयायां सदा भुवि ॥ १८ ॥
पा(दे?दो)नद्विपदोत्सेधा तदूर्ध्वं वेदिमेखला ।
कैरवाणां दलैर्वृक्ता कनेव्या दृष्टिहारिभिः ॥ १९ ॥
वेदिका पञ्चविस्तारा कार्या भागनमुच्छ्रिता ।
ग्रीवार्धभागिकोत्सेधा पञ्चकं भागमुच्छ्रिता ॥ २० ॥

पञ्चभाग + विस्तारा षण्ठाकोटिविधीयते ।

(कुमान्दं?)वेदिवन्धं च षण्ठाग्रं मस्तकोदयम् ॥ २१ ॥

मापयेत् समद्वारेण समन्ताद् भूमिपञ्चके ।

व्यासार्धहस्तसङ्ख्यानि(प्रवेशा?)प्रथमं क्षितेः ॥ २२ ॥

अङ्गुलानि तदा त्रयो द्वितीयायाः प्रकीर्तिताः(?) ।

संयोगादनयोः स्यात् तृतीयायास्तमादिशेत् ॥ २३ ॥

तदध्यर्धश्चतुर्ध्यास्तु पञ्चम्याः शेष ईरितः ।

स्वमूलविस्तृतेर्भागस्तृतीयो वेदिकोर्ध्वतः ॥ २४ ॥

लतया विस्तृतिर्भद्रे युक्ताया जालवर्त्मनः(?) ।

(वेदिदोग्रविधातव्यो?) सार्धसविस्तृतौ ॥ २५ ॥

मञ्जर्याः स्तम्भसीमानां क्षोभयेत् पुष्टिमानतः(?) ।

(वेद्यां भागे?)शालायां निष्क्रामो मूलकोणतः ॥ २६ ॥

स्थानैर्विचित्ररूपैः स्यात् सिंहकर्णैश्च भूपितः ।

पञ्चव्यासेन सूत्रेण रेखामस्य समालिखेत् ॥ २७ ॥

एतद् विमानं ललितं देवदेवस्य कारयेत् ।

विमानम् ॥

संस्थानं सर्वतोभद्रस्येदानीमभिधीयते ॥ २८ ॥

जठरं बाह्यसीमा च तथा भित्त्यन्धकारिका ।

जङ्घोत्सेधश्च कर्णौ च यथा मेरोस्तथा भवेत् ॥ २९ ॥

तथैव भद्रविस्तारः पद्भ्यागेन समन्ततः ।

राथिके च द्विभागे स्तः कोणसंज्ञे च पार्श्वयोः ॥ ३० ॥

मुष्टिप्रमा(णं?)विस्तारं कर्तव्यमुदकान्तरम् ।

विस्ताराद् द्विगुणः स्कन्धस्योच्छ्रायो भागविंशतिः(?) ॥ ३१ ॥

पञ्चभागसमुत्सेधा जङ्घा कार्यौ सदा युधैः ।

मेखलान्तरपत्रं च सार्धभागसमुच्छ्रितम् ॥ ३२ ॥

शृङ्गं भागत्रयोत्सेधं सग्रीवामलसारकम् ।
 मूलशृङ्गस्य गर्भेण न्यस्येदुपरिभूमिकाम् ॥ ३३ ॥
 द्वितीयभूमिविस्तारं दशधा प्रविभाजयेत् ।
 द्वौ भागौ शृङ्गविस्ता(रौःरो) विधेयः पार्श्वयोर्द्वयोः ॥ ३४ ॥
 सग्रीवामलसारस्य तैः शृङ्गस्योदयस्थितिः ।
 तस्य शृङ्गस्य गर्भेण कर्तव्योपरिभूमिका ॥ ३५ ॥
 तस्या भूमेस्तु विस्तारं दशधा भाजयेत् पुनः ।
 यः शेषः शिखरायामो (तद्वितिनन्ते?)विनिर्दिशेत् ॥ ३६ ॥
 विभजेद् वर्धमानं वा रुचकं वास्तु शोभनम् ।
 कर्णान्तरे भद्रमध्ये व(लुभा?लर्भी) तत्र कारयेत् ॥ ३७ ॥
 भूमिकाशिखरेणोर्ध्वं नवभूमिं विभेदयेत् ।
 वेदिकामध्यमूत्रस्य (कर्णतोर्ध्वंभुवस्तथा?) ॥ ३८ ॥
 भूमिकोर्ध्वंभुवश्चैव विस्तारं दशधा भ(वे?जे)त् ।
 मूलसीमानुसारेण स्याच्छेदावधि संहतिः ॥ ३९ ॥
 ग्रीवा मूलार्धभागे + + + नामलसारकम् ।
 चन्द्रिका चार्धभागेन + + + कलशो भवेत् ॥ ४० ॥
 सर्वतोभद्रः ॥
 गजस्य संस्थानमथ प्रासादस्याभिधीयते ।
 चतुःपष्टिपदं वास्तु प्रासादस्य विभाजयेत् ॥ ४१ ॥
 ततः सीमार्धमूत्रेण पृष्ठतो वृत्तमालिखेत् ।
 पञ्चभागमिता जङ्घा मेखला सार्धभागिकी ॥ ४२ ॥
 अग्रतः मूरसेनः स्यात् पृष्ठतः कुञ्जराकृतिः ।
 सीमानमष्टधा कृत्वा विभजेन्नन्दने यथा ॥ ४३ ॥
 द्वौ द्वौ च कर्णयोर्भागौ भद्रेषु चतुरो विदुः ।
 विस्तारार्धेन जङ्घा स्याद् रथिकायाः पृथक् पृथक् ॥ ४४ ॥
 भागत्रयोच्छ्रितं शृङ्गं कर्णदेशे विधीयते ।
 सप्तभागसमुत्सेधा बलभी मध्यसंश्रिता ॥ ४५ ॥

भित्तिवित्तिनिरायामो मुक्तकोणे यथा तथा ।
 मध्यदेशे तु यच्छृङ्गं + + कर्णान्तरे च यत् ॥ ५८ ॥
 मुक्तकोणे यथा तत्र भेदः कर्षेविभेदनात् ।
 चतुरश्रे स्मृतो मध्ये कर्णशृङ्गे त्रिचक्षणैः ॥ ५९ ॥

नलिनः ॥

श्रृणोश्च मणिकं तस्य शाल्यान्त्रि(ज्ञेन्द्र)समुद्रता ।
 अन्दिन्द्रकार्थसिनायां नवतः स्याच्चतुष्पिका ॥ ६० ॥
 श्रेयःपुष्टिमुद्यार्थोऽप्ये मणिकोऽत्र विद्वानवत् ।
 दशधा श्रेयस्राज्ञः स्याद् विभागः नवतोद्विजम् ॥ ६१ ॥
 रथ + कर्णिकार्थं च मूलवत्कोश भद्रकम् ।
 मूलगर्भस्मथोन्मेषो यथा स्मदमान्त्रिस्मृता ॥ ६२ ॥
 भूमिजद्वयाममुन्मेषः कपोनाद् द्वाभिनर्गमः ।
 सिद्धवशा विमानानि स्तम्भाद्यन्तिकास्तथा ॥ ६३ ॥
 तांशान्यथ माल्यानि तस्यान्त्रिङ्गणानि च ।
 नीलान्यन्त्रिङ्गणानि मध्यैः नवतोद्विजम् ॥ ६४ ॥
 विमानमपरं श्वेत् योनिरेकतयोद्वयोः ।
 केवलं भद्रभेदेन मणिको द्वितीयोऽन्तयम् ॥ ६५ ॥

श्रीशुकः ॥

प्रासादमथ वक्ष्यामि मरुतं तत्तुष्टम् ।
 दशधा क्षेत्रविरतारं तस्य पुन विनाशेत् ॥ ६६ ॥
 द्वौ भागा रथिजातः कोशा सुष्ठु तेषां विनाशेत्ततः ।
 मर्दं परुमान् विरतारं परुष्टारं विरिज् ॥ ६७ ॥
 तन्निर्गमैः तस्यै मरुतस्यै च तस्यै च ।
 सुष्ठुभाषा तु तस्यै च तस्यै च तस्यै च ॥ ६८ ॥
 स्वर्गोऽन्तर्गतः तस्यै च तस्यै च तस्यै च ॥ ६९ ॥
 प्रागोऽन्तर्गतः तस्यै च तस्यै च तस्यै च ॥ ७० ॥

जङ्गामन्तरपत्रेण (कुं + गुक्तं कुर्वस्तसा?) ।
 (जी?ही)रकं वेदिवन्धं च भागत्रयसमुच्चिन्नम् ॥ ७० ॥
 अलि(म्वा?न्दा)नां समुत्सेधं (शे?शि)स्वरार्धेन कारयेत् ।
 पद्भागं स्कन्धविस्तारं विदधीत विचक्षणः ॥ ७१ ॥
 ग्रीवार्धभाग(मुत्से)धाद् भागमामलसारकम् ।
 कुमुदं चार्धभागेन कुम्भः स्यादेकभागिकः ॥ ७२ ॥

गरुडः ॥

अथोच्यते वर्धमानो दशधा तं विभाजयेत् ।
 पादेनांशद्वयं कुर्यात् पार्श्वयोः कर्णविस्तृतिम् ॥ ७३ ॥
 सपादपदविस्तारौ रथर्का वामदक्षिणौ ।
 चतुर्भागोन्मितं भद्रं विस्तारेण प्रकीर्तितम् ॥ ७४ ॥
 विस्तारो(राद्) द्विगुणोच्छ्रायं स्कन्धं यावत् प्रकल्पयेत् ।
 सुरकस्याथ जङ्गाया मञ्जरीस्कन्धयोरपि ॥ ७५ ॥
 ग्रीवामलसारकादेः प्रमाणं गरुडे यथा ।

वर्धमानः ॥

द्वाविंशतिकरायामः शङ्खावर्तोऽथ कथ्यते ॥ ७६ ॥
 मूलसीमावृत्तनाहस्तस्य स्यात् पञ्चके यथा ।
 भित्तिगर्भस्य विस्तारः (पादेनार्धनवक्रमात्?) ॥ ७७ ॥
 अलिन्दमग्रतः कुर्यात् सिद्धकर्णविभूषितम् ।
 उत्सेधत्र्यंशतो जङ्गा (वेद्यं?) तत्र त्रिभागतः ॥ ७८ ॥
 आस्कन्धं वेदिकावन्धाद् विस्तृतेद्विगुणोच्छ्रितिः ।
 मेखलान्तरपत्रं च जङ्गामध्ये विधीयते ॥ ७९ ॥
 भ्रमयेत् कर्णसूत्रेण वहिर्दृत्तं समन्ततः ।
 कर्णद्विपालयोर्मध्यं वृत्तसूत्रेण वर्त(यन्?येत्) ॥ ८० ॥
 अवशिष्टं त(ल)च्छन्दं स्वस्तिकस्येव कारयेत् ।
 ग्रीवा(म)मलसारं च कलशं वारिनिर्गमम् ॥ ८१ ॥

कुर्वीत स्वस्तिकस्यैव विस्तारोत्सेधमानतः ।
 (अः?) लसीमानुसारेण च्छेदे संवरणं भवेत् ॥ ८२ ॥
 तद्दृपमेव लतिने वर्तयेद् बलनाकृतिम् ।

शङ्खावर्तः ॥

दूमोऽथ पुष्पकं स स्याद् विमानसदृशाकृतिः ॥ ८३ ॥
 तावत्प्रमाणस्तद्गृद्धिः पञ्चभूषतुरश्रकः ।
 (विमानेन मानयुक्त?) यन्मञ्जरी यत्र लक्षणम् ॥ ८४ ॥
 तन् कार्यमत्र मञ्जरी ननु कार्यं जलान्नगम् ।
 पुष्पकः ॥

गृहराजमथ वृमः स स्यान् कैलाससन्निभः ॥ ८५ ॥
 विदङ्कनिर्गमाधारनिर्वृद्धः सवेतो वृतः ।
 बलभ्या भूपितो मध्ये गत्राक्षद्वारसंयुतः ॥ ८६ ॥
 कपोतस्तम्भपर्यन्तः शा(ला?) भर्द्वाविगजितः ।
 वेदिकाखण्डजालाद्यं क + + परितो भवेत् ॥ ८७ ॥

(कुर्वीत्य?) मल्लकच्छार्थः सिद्धकर्णेश्च भूपितः ।
 भ्रल्लिन्दभेदतः प्राङ्गु(गृह)राजपि(ते?) भुवाः ॥ ८८ ॥
 कैलासस्यैव संस्थानं स्यादस्योर्ध्वमशोपिव ।

पुष्पकः ॥

दूमोऽथ स्वस्तिकं तस्य पूर्ववन्मानलक्षणम् ॥ ८९ ॥
 तेनैव लतिने सर्वं कुर्वीतने विचारुणः ।
 यथा भूले विमलताः स्युर्लतिने वरि त्काः ॥ ९० ॥
 तेषां स कथ्यमजानां मध्ये रेखा पञ्चदशैव
 प्रासादः स्थानिको नाम स्यादेव लक्षणम् ॥ ९१ ॥
 लुधानापोऽयः सस्य कलेः सतः सतः ॥ ९२ ॥
 सतः सतः सतः सतः सतः सतः ॥ ९३ ॥
 सतः सतः सतः सतः सतः सतः ॥ ९४ ॥

(त्यट्ट?)द्वागोच्छ्रिता जङ्घा मेखला चा + भागिकी ।
 मध्यशाला द्विभागाश्च मूलसूत्रविभागतः ॥ ९३ ॥
 कर्णा द्विभागिकाश्चैवं जलमार्गस्तु षोडश ।
 अष्टौ शाला भवन्त्यस्मिन् कर्णाश्चाष्टौ समन्ततः ॥ ९४ ॥
 प्राग्ग्रीवं वाह्यतः कुर्यात् (सुखभाग?) विचक्षणः ।
 फलशश्चण्डिका ग्रीवा तद्वदामलसारकः ॥ ९५ ॥
 ऊर्ध्व ऊर्ध्वप्रमाणं च यथैवाद्य(?) तथा भवेत् ।

स्वस्तिकः ॥

रुचकं ब्रूमहे तस्य विभागो दशधा भवेत् ॥ ९६ ॥
 भागद्वयमितौ कर्णौ भद्रं षड्भागसम्मितम् ।
 तेषां विनिर्गमं विद्या(द्धिस्तामात्रा?)प्रमाणतः ॥ ९७ ॥
 कुर्यादुदकमार्गाश्च प्रासादे रुचके क्वचित् ।
 स्कन्धावशिष्टमुत्सेधो विस्ताराद् द्विगुणो भवेत् ॥ ९८ ॥
 वेदिकायास्तु विस्तारः स्कन्धे षड्भागिकः स्मृतः ।
 तृतीयांशेन कुर्वीत जङ्घामूर्ध्वं सुरोदयान् ॥ ९९ ॥
 जङ्घयाश्च त्रिभागेन कार्या सुरस्वरण्डिका ।
 मेखलान्तरपत्रं च कुर्यादध्वर्धभागिकम् ॥ १०० ॥
 सार्धत्रिगुणसूत्रेण पूर्वा कर्कटना भवेत् ।
 (चतुर्गुणं मूलसूत्रेण मध्ये कर्कटना स्मृतौ?) ॥ १०१ ॥
 विभज्य दशधा स्कन्धविस्तारं तैः प्रकल्पयेत् ।
 भद्रं चतुर्भिः क(र्णाशु?र्णास्तु) कुर्याद् भागैस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥ १०२ ॥
 स्वच्छाया भूमिकाः कार्या या वा मूलार्धभागिकीः(?) ।
 भागेनामलसारं च कुमुदं चार्धभागिकम् ॥ १०३ ॥
 कुम्भं भागेन कुर्वीत प्रासादे रुचके बुधः ।
 साधारणोऽयं सर्वेषां प्रासादस्तु दिर्वाकसाम् ॥ १०४ ॥

रुचकः ॥

१. 'सुखभाग' इति स्यात् । २. 'द्वगतामात्रा' इति स्यात् । ३. 'चतुर्गुणेन सूत्रेण मध्यकर्कटना स्मृता ।' इति स्यात् ।

सादं बह्वर्षं हरेः ।

वृत्तमादौ समन्ततः ॥ १०५ ॥

कर्तव्यं सर्वतोदिशम् ।

(ऽस्यःस) स्याद् द्विगुणः पुण्ड्रवर्धने ॥ १०६ ॥

।मुच्छ्रायो विस्तृतिश्च या ।

सैव विज्ञेया पुण्ड्रवर्धने ॥ १०७ ॥

पुण्ड्रवर्धनः ।

हृदशेषा तत्र भाजयेत् ।

कुर्वीत शृङ्गं चापि (विः)भागिकम् ॥ १०८ ॥

द्र(मायमाने?) विधीयते ।

तेन(शशेन) कर्तव्यमुद्रकान्तरम् ॥ १०९ ॥

भिर्भो विधातव्यः पदं पदम् ।

।वाह्यभित्तिश्चास्य विधीयते ॥ ११० ॥

।ता जङ्घा मेखला चैकभागिकी ।

।त्सेधं शिखरं स्याद् दशोच्छ्रितम् ॥ १११ ॥

शाखज्ञैस्तस्यैकादशभूमिकम् ।

।तारः स्कन्धो ग्रीवाधभागिका ॥ ११२ ॥

वेधातव्या भा(गि)कोत्सेधमण्डकम् ।

।कं च कुमुदं भागिका कलशोच्छ्रितः ॥ ११३ ॥

शूत्रेण रेखा तस्य प्रकीर्तिता ।

।रेप्रखण्डमैव यः कारयेद्विमम् ॥ ११४ ॥

।ष्टकाभिरा स मष्ट् पुण्यमाप्नुयात् ।

मष्टः ॥

।न्दरस्याध प्रात्मादस्याभिधीयते ॥ ११५ ॥

।न निध्रान्तं भद्रं कुर्वीत मन्दरे ।

।रुत्तज्ञासं विन्धस्वेन सर्वतोदिशम् ॥ ११६ ॥

।नेव ॥ इति ॥ ११६ ॥ ॥ ॥

चतुष्पष्टिप्रासादलक्षणं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः । १२९

समुत्सेधः स्तम्भचित्रादिकं तथा ।
त्र मध्ये तु मञ्जर्यः सर्वतोदिशम् ॥ १२८ ॥
तुङ्गः ॥

य मिश्रकं स स्यान्मानसंस्थानलक्षणैः ।
(?)वि(मानव)न्मध्ये शृङ्गं कैलासवद् भवेत् ॥ १२९ ॥
मिश्रकः ॥

अथ मालामाकारं तु तं कृत्वा गवाक्षैरुपशोभयेत्(?) । *
पत्किञ्चिन्मानमध्यं तु तदाद्यस्येव (प्र?)कल्पयेत् ॥ १३० ॥
गवयः ॥

चित्रकूटमथ त्रयो दशधा तं विभाजयेत् ।
प्राग्ग्रीवा निर्गता(?) तस्य गर्भमानेन कारयेत् ॥ १३१ ॥
सार्धद्वयाधोविस्तारांस्तत्कर्णान् वामदक्षिणान् ।
उत्सेधस्य त्रिभागेन जङ्घोत्सेधं प्रकल्पयेत् ॥ १३२ ॥

जङ्घोत्सेधत्रिभागेन विन्यस्येत् सुरपिण्डिकाम् ।
कपोतान्तरपत्रं च तत्र स्यादर्धभागिकम् ॥ १३३ ॥
शिखरोत्सेधमानं यत् तत् त्रयोदशभिः पदैः ।
तत्र(भूमास्तदुत्सेधं?) कल्पयेदनुसारतः ॥ १३४ ॥

(स्तास्तम्भसो भित्तिः?) कुर्यान्मुक्ताश्च परिकर्मणा ।
कूटच्छेदेन तत्कर्म विन्यस्येत् सर्वतोदिशम् ॥ १३५ ॥

भक्तमन्तरपत्रेण तलच्छन्दं तदूर्ध्वतः ।
द्वे द्वे कूटे ततो न्यस्येद् वामदक्षिणकर्णयोः ॥ १३६ ॥

शालामध्ये तु चत्वारि (नामे?)कूटानि सर्वतः ।
भूमिकाः सिंहकर्णाश्च कपाटद्वारघटनाः ॥ १३७ ॥
शिखराणां समुत्सेधो (त?)यधैवाद्ये तथा भवेत् ।
चित्रकूटः ॥

किरणः कथ्यते स स्यात् पद्मतुल्यः प्रमाणतः ॥ १३८ ॥

* अथ मालापरप्र साददक्षजस्वावसानं, गवयप्रासादलक्षणस्वारम्भश्च मातृकाया
मोक्षश्चते ।

धमानादित्तुप्पष्टिप्रासादलक्षणं नामैकोनषाष्टतमोऽध्यायः । १२९

॥(वःय)तथतुरश्रो वा प्रमाणेनैकतः समः ।
वतुरश्रस्तु विस्तारादुद(योःये) द्विगुणो भवेत् ॥ १४९ ॥
(आध्यतन्त्रस्य पुनः सार्धः स्कन्धोच्छ्रायो विधीयते?) ।
(विस्तारं दशधा समक्ष + तुरश्र समन्तः?) ॥ १५० ॥
वि(भजेःभागे) स्यात् ततो मानं पूर्वप्रासादसन्निभम् ।
स्वरूपं तस्य वक्ष्यामः श्रीवत्समिव तं भ(वेःजे)त् ॥ १५१ ॥
यद्वा विमानरुचक्रवर्धमानादिसन्नना ।
छन्देनैकस्य कस्यापि प्रासादस्य विभाजयेत् ॥ १५२ ॥
भूस्तम्भपरिकर्माणि विस्तारोत्सेधमेखलाः ।
सिंहकर्णरथा घण्टा तथा कुम्भाग्रपण्डकम् ॥ १५३ ॥
यत्किञ्चित् तत् प्रमाणेन यथैवाद्यं तथा भवेत् ।
वलभ्यः ॥

सुपर्णस्य (स्व)रूपं च प्रमाणं चाभिधीयते ॥ १५४ ॥
विभक्तं सिंहरूपेण सर्वभद्रं निवेशयेत् ।
भागैश्चतुर्भिर्निष्क्रान्तं भद्रं (संभयितः?)समम् ॥ १५५ ॥
द्वौ भागौ मूलकर्णौ तु पद्भगा भद्रविस्तृतिः ।
पञ्चभागोच्छ्रिता जङ्घा मेखला तस्य भागिका ॥ १५६ ॥
मूलजङ्घात्रिभागेन खुरवेदिसमुच्छ्रितः ।
(सच?)मध्ये तु शृङ्गे द्वे कर्तव्ये वामदक्षिणे ॥ १५७ ॥
उच्छ्रायाद् द्विपदे स्यातां विभक्ते सर्वतोदिशम् ।
मूलकर्णेषु शृङ्गाणां त्रिपदा स्यात् समुच्छ्रितः ॥ १५८ ॥
++++सेवापि चतुरङ्गुलमेव वा ।
कुर्याज्जाला(धः)विस्तारं श्रीवत्से नन्दने यथा ॥ १५९ ॥
विस्ताराद् द्विगुणोत्सेधः स्कन्धः पद्भागविस्तृतः ।
उत्सेधस्य त्रिभागेन जङ्घोत्सेधो विधीयते ॥ १६० ॥

१. 'गवयतः' इति स्यात् ।

तृतीयांशेन जङ्घायाः कुर्वीत सुरापिण्डिकाम् ।

मेखलान्तरपत्रं च विदध्यात् सार्धभागिकम् ॥ १६१ ॥

विभाज्या दशभिर्भागैः पूर्ववत् स्कन्धविस्तृतिः ।

सार्धद्विगुणविस्तृत्या पूर्वा कर्कटना भवेत् ॥ १६२ ॥

चतुर्गुणेन सूत्रेण मध्या कर्कटना भवेत् ।

(श्री?ग्री)वार्धभागमुत्सेधात् कुमुदं कुम्भकं पुनः ॥ १६३ ॥

अस्मिन्नामलसारं च यथा चाद्ये तथा भवेत् ।

श्रीवत्सः ॥

पद्मनाममथ त्रूमः पद्मशालाभिरन्वितम् ॥ १६४ ॥

द्वितीयः पद्मको ज्येष्ठपद्ममालाधरः शुभः ।

सर्वमन्यन् प्रमाणं तु पद्मस्वस्तिकयोर्यथा ॥ १६५ ॥

पद्मनामः ॥

वैराजमथ वक्ष्यामि स विज्ञेयो विमानवत् ।

(रूपनिखल+मुदसेधस्तम्भग्रीव+रूपकम्?) ॥ १६६ ॥

ममानोरणनियुद्धमिद्धक(णी?णिं)थ ताड्यः ।

साधारं चतुरश्रं च तं कुर्यात् पञ्चश्रुमिकम् ॥ १६७ ॥

विमानमदशाक्षरं वैराजोऽन्यमुदाहृतः ।

वैराजः ॥

श्लोऽथ शूनकं मूढं चतुरश्रः प्रकीर्तितः ॥ १६८ ॥

जडवामूढे ततोऽद्याभिविःश्रिष्टिनो भागवृतीयकं ।

मूढप्रव्याप्रतः पूर्णं तं कुर्यात् सर्वेनादिशम् ॥ १६९ ॥

नद्राक्षरं च नद्रेषु विभागे चतुरश्रकं ।

(अद्याश्रिवज्जहाक्षरं, इतं स्वस्तिहमन्त्रिमम् ॥ १७० ॥

यथा मूढविभागेन अतितः स्वस्तिहोदयः ।

तथा इन्द्रप्रदानान्याप्रयत्नव्यायवद नयेत् ॥ १७१ ॥

इन्द्रः ॥

वेमानादिचतुष्पष्टिप्रासादलक्षणं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः । १३१

नन्द्यावर्तमथ ब्रूमो दशधा तं विभाजयेत् ।
(पादोपमध्यंशविस्तारो?) कर्णौ कुर्वीत पार्श्वयोः ॥ १७२ ॥

चतुर्भागप्रविस्तारं भद्रमस्य प्रकल्पयेत् ।
सपादपदिकं कुर्याच्छालाकर्णान्तरे रथम् ॥ १७३ ॥

जलाधाररथं कर्ण(तः?)शालान्तेषु यथेष्टतः ।
प+सु शिखरायामास्तन्मध्ये बलभी भवेत् ॥ १७४ ॥

जलमार्गं च कुर्वीत शालाकर्णान्तमूलयोः ।
प्रमाणमन्यथा किञ्चिद् (भूसिंहस्येव?) कारयेत् ॥ १७५ ॥
सुपर्णः ॥

प्रमाणमथ सिंहस्य लक्षणं चाभिधीयते ।
दशधा क्षेत्रविस्तारं विभजेत् सर्वतः समम् ॥ १७६ ॥

द्विभागौ मूलकर्णौ तु कर्तव्यौ वामदक्षिणौ ।
मूलभद्रस्य विस्तारः पङ्क्तिभिर्भागैर्विधीयते ॥ १७७ ॥

विस्तारो द्विगुणः कार्यः स्कन्धोत्सेधप्रमाणतः ।
पञ्चभागोच्छ्रिता जङ्घा मेखला सार्धभागिकी ॥ १७८ ॥

गुरकं वेदिवन्यं च तत्रिभागेन कल्पयेत् ।
भागत्रयोच्छ्रितानि स्युः शृङ्गाणि च चतुर्दिशम् ॥ १७९ ॥

सिंह(स्य) कर्णवन्मध्ये बलभ्या भूपयेद् युधः ।
सर्वमन्यत् प्रमाणं च सर्वतोभद्रवद भवेत् ॥ १८० ॥
सिंहः ॥

विचित्रकूटं वक्ष्यामो दशधा तं विभाजयेत् ।
(द्विभागिको मूलभद्रस्य?) हस्ततुल्याङ्गुलो भवेत् ॥ १८१ ॥

शालामध्यप्रदेशे तु बलभी सन्निवेशयेत् ।
कूटे द्वे सर्वतो न्यस्येच्छ्रिते+मूलकर्णयोः ॥ १८२ ॥

एष भेदः समुदितः शाला स्यात् हृद्यजिता ।
प्रमाणमन्यत् सर्वं तु विशेषं विचित्रहृद्यवन् ॥ १८३ ॥
विचित्रकूटः ॥

१. 'प्रासादप्रसादविस्तारो' हस्ततुल्याङ्गुलो २. 'विचित्र' हृद्यजिता

तृतीयशेन जङ्घायाः कुर्वीत सुरापिण्डिकाम् ।
मेखलान्तरपत्रं च विदध्यात् सार्धभागिकम् ॥ १६१ ॥

विभाज्या दशभिर्भागैः पूर्ववत् स्कन्धविस्तृतिः ।
सार्धद्विगुणविस्तृत्या पूर्वा कर्कटना भवेत् ॥ १६२ ॥

चतुर्गुणेन सूत्रेण मध्या कर्कटना भवेत् ।
(श्रीः/श्री)नार्धभागमुत्सेधात् कुमुदं कुम्भकं पुनः ॥ १६३ ॥
अस्मिन्नामलसारं च यथा चाये तथा भवेत् ।

श्रीवत्सः ॥

पद्मनाभमथ गुमः पद्मशालाभिरन्वितम् ॥ १६४ ॥
द्वितीयः पद्मको वे। पद्ममालाधरः गुमः ।
मधेयन्वा प्रमाणं तु पद्मस्वास्तिकयोर्थथा ॥ १६५ ॥

पद्मनाभः ॥

पद्मनाभमथ इत्यादि य विज्ञेयो विमानवत् ।
स्वास्तिकान्गुणैश्चस्वस्वश्रीवत्स्वस्वकम् ॥ १६६ ॥
यथातोषाधिकेष्टुगिण्डक/पौष्टिके/त्र वाट्यैः ।
या सार्धं चतुर्थं च तं हृद्योत् पद्मवृत्तिकम् ॥ १६७ ॥
विमानवद्व्याहारे विमानो यमुदाहृतः ।

विमानः ॥

यथा च इतरे वृद्धे चतुर्थः कक्षावितः ॥ १६८ ॥
चतुर्थवृद्धे चतुर्थोऽर्धोऽर्धोऽर्धोऽर्धो वागवृत्तोपक ।
चतुर्थवृद्धे चतुर्थो वृद्धो चतुर्थोऽर्धवत् ॥ १६९ ॥
चतुर्थवृद्धे चतुर्थो विमानो चतुर्थवृद्धे ।
चतुर्थवृद्धे चतुर्थवृद्धे चतुर्थवृद्धे चतुर्थवृद्धे ॥ १७० ॥
यथा चतुर्थवृद्धे चतुर्थवृद्धे चतुर्थवृद्धे चतुर्थवृद्धे ।
यथा चतुर्थवृद्धे चतुर्थवृद्धे चतुर्थवृद्धे चतुर्थवृद्धे ॥ १७१ ॥

इति ॥

वेमानादिचतुष्पष्टिप्रासादलक्षणं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः । १३१

नन्द्यावर्तमथ ब्रूमो दशधा तं विभाजयेत् ।
(पादोपमध्यंशविस्तारो?) कर्णौ कुर्वीत पार्श्वयोः ॥ १७२ ॥

चतुर्भागप्रविस्तारं भद्रमस्य प्रकल्पयेत् ।
सपादपदिकं कुर्याच्छालाकर्णान्तरे रथम् ॥ १७३ ॥

जलाधाररथं कर्ण(तः?)शालान्तेषु यथेष्टतः ।
प+सु शिखरायामास्तन्मध्ये बलभी भवेत् ॥ १७४ ॥

जलमार्गं च कुर्वीत शालाकर्णान्तमूलयोः ।
प्रमाणमन्यथा किञ्चिद् (भूसिंहस्येव?) कारयेत् ॥ १७५ ॥
सुपर्णः ॥

प्रमाणमथ सिंहस्य लक्षणं चाभिधीयते ।
दशधा क्षेत्रविस्तारं विभजेत् सर्वतः समम् ॥ १७६ ॥

द्विभागौ मूलकर्णौ तु कर्तव्यौ वामदक्षिणौ ।
मूलभद्रस्य विस्तारः पट्टभिर्भागैर्विधीयते ॥ १७७ ॥

विस्तारो द्विगुणः कार्यः स्कन्धोत्सेधप्रमाणतः ।
पञ्चभागोच्छ्रिता जङ्घा मेखला सार्धभागिकी ॥ १७८ ॥

सुरकं वेदिवन्यं च तत्रिभागेन कल्पयेत् ।
भागत्रयोच्छ्रितानि स्युः शृङ्गाणि च चतुर्दिशम् ॥ १७९ ॥

सिंह(स्य) कर्णवन्मध्ये बलभ्या भूपयेद् युधः ।
सर्वमन्यत् प्रमाणं च सर्वतोभद्रवद् भवेत् ॥ १८० ॥
सिंहः ॥

विचित्रकूटं वक्ष्यामो दशधा तं विभाजयेत् ।
(द्विभागिको मूलभद्रस्य?) हस्ततुल्याङ्गुलो भवेत् ॥ १८१ ॥

शालामध्यप्रदेशे तु बलभी सन्नियेक्षयेत् ।
कूटं द्वे सर्वतो न्यस्येच्छ्रितेनमूलकर्णयोः ॥ १८२ ॥

एष भेदः समुदितः शाला स्यात् हस्तवर्जिता ।
प्रमाणमन्यत् सर्वं तु विज्ञेयं विचित्रहस्तवत् ॥ १८३ ॥
विचित्रकूटः ॥

१. 'पार्श्वोपमध्यंशविस्तारो' इति पाठः ॥ २. 'विचित्र' इति पाठः ॥

योगपीठमथ ब्रूमस्त्रिविष्टपमिवोत्तमम् ।

विभजेद् भागविंशत्या चतुरश्रं समन्ततः ॥ १८४ ॥

(कोष्ठान्यद्भागविस्तारा?) कुर्याद् दिक्षु विदिक्षु च ।

भागिकौ जलमार्गौ च विदध्याद् वामदक्षिणौ ॥ १८५ ॥

विस्तारात् तेषु गर्भः स्याद् भागत्रितयसंमितः ।

पञ्चभागोच्छ्रिता जङ्घा कपोतान्तरवर्जिता ॥ १८६ ॥

खुरकं वेदिवन्धं च कुर्याद् भागत्रयोच्छ्रितम् ।

विस्तारात् (कुर्याद् दिक्षु?) द्विगुणोच्छ्रायः कार्योऽयं पञ्चभूमिकः ॥

सिंहकर्णं रथैर्घण्टाभ्रमिकास्तम्भतोरणैः ।

रचनास्य विधातव्या कथिता पुष्पके तथा ॥ १८८ ॥

सान्धारः केवलं कार्यः प्रासादोऽयं विचक्षणैः ।

योगपीठः ॥

घण्टानादमथ ब्रूमः स भवेत् पञ्चभूमिकः ॥ १८९ ॥

अष्टाश्रिकोणः कर्तव्यः संस्थानात् पुष्पकोऽपरः ।

भैरवो भद्रकाली च (स्थाप्य चात्र पाठको?) ॥ १९० ॥

घण्टानादः ॥

पताकिनमथ ब्रूमो वातोद्भूतमिवार+ ।

लतिनं लतिनाकारं(?) विभक्तं सर्वतोदिशम् ॥ १९१ ॥

तं चण्डिकायाः कुर्वीत रुचकं वर्धमानकम् ।

(वृक्षपताकिनं वक्ष्यामि+भृतं शाखिनं यथा?) ॥ १९२ ॥

पताकिनः ॥

गुहाधरमथ ब्रूमः श्रीपुष्टिसुखदायिनम् ।

विभक्ते दशधा क्षेत्रे भद्रं स्याद् गर्भमानतः ॥ १९३ ॥

अर्थेन मूलगर्भस्य कार्यो भद्रस्य निर्गमः ।

सार्धभागप्रविष्टारौ कर्णौ द्वौ द्वौ च पार्श्वयोः ॥ १९४ ॥

(जलाद्या?) मूलकर्णान्ते कर्तव्यः पार्श्वयोर्द्वयोः ।

तद्द्वारमध्यदेशे तु विन्यस्येत् स्तम्भतोरणम् ॥ १९५ ॥

मानादिचतुष्पष्टिप्रासादलक्षणं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः । १३३

स्तारद्विगुणोत्सेधश्चतुःशृङ्गश्चतुर्मुखः ? ।
द्वीवामेखलाजङ्घाः कुम्भकामलसारके ॥ १९६ ॥
सिंहस्येव प्रकुर्वीत गुहाधारस्ततो भवेत् ।
द्वारभेदेन नामास्य प्रासादस्य विनिर्मितम् ॥ १९७ ॥

कथयामोऽथ शालाकं दशधा तं विभाजयेत् ।
द्विभागिकौ मूलकणौ पञ्चभागा भद्रविस्त्रुतिः ॥ १९८ ॥

द्वाराणि भद्रमध्ये स्युर्मूलद्वारसमानि तु ।
चतुर्वाहुश्चतुर्द्वारो द्वितीयो रचको बसौ ॥ १९९ ॥
द्वारमानेन नामास्य शालाक इति कीर्तितम् ।
प्रमाणमन्यद् यत्किञ्चिद् भद्रकस्येव तद् भवेत् ॥ २०० ॥

इहानीं वेणुकं त्र्यश्वतुरश्रं समं शुभम् ।
न कुर्याद् भद्रनिष्क्राममात्रच्छत्रात्मनः(?) शुभम् ॥ २०१ ॥

विस्तारद्विगुणोच्छ्रायः कुम्भाग्रं (यचेदिष्यत्?) ।
शिखाद्विगुणमानस्य जङ्घा त्र्यंशेन कल्पते ॥ २०२ ॥

जङ्घात्रिभागभुत्सेधान् कार्या सुरवरण्डिका ।
कपोतान्तरपत्रं च कर्तव्यं सार्धभागिकम् ॥ २०३ ॥

चतुर्भा(गो?)न नृत्रेण वेणुकोशं समालिखेत् ।
सर्वतः शोभनं कुर्यात् तं कपोतविनिर्गमे ॥ २०४ ॥

मुखेऽस्य सिंहकर्णाः स्युश्चन्द्रशालाविवर्जिताः ।
प्रमाणानस्य यत्किञ्चिद् वेणुकं च विधीयते? ॥ २०५ ॥

इहानीं कुञ्जरं दृष्टो गजलक्षणलक्षितम् ।
अर्धश्रेण तत्र नाग्नी जः पृष्ठतो वृत्तमालिखेत् ॥ २०६ ॥

चतुर्भागा भवेज्जङ्घा नैखला सार्धभागिका ।
वृत्तान्तरं पृष्ठेभ्यो तं कुर्वीत विचक्षणः ॥ २०७ ॥

शालामु सिंहकर्णाः स्युः पार्श्वतः पृष्ठतोऽग्रतः ।

कर्णाश्च तस्य कर्तव्याः शृङ्गैः स(र्वैरे?र्वै)ऽपि पूरिताः ॥ २०८ ॥

मध्यप्रदेशे बलभी कर्तव्या चातिशोभना ।

यत्किञ्चित् तत्प्रमाणं तु यथैवाद्ये तथा भवेत् ॥ २०९ ॥

कुञ्जरः ॥

अथ हर्षं प्रवक्ष्यामश्चतुरश्रं मनोरमम् ।

विस्तारात् सार्धं उत्सेधः (स्याद्द्वयटां?)मस्तकावधेः ॥ २१० ॥

छाद्यरूपं च कुर्वीत चतुरश्रं चतुर्दिशम् ।

शुकनासं मुख्रातेन शोभितं परिकर्मणा ॥ २११ ॥

जङ्गामेखलयोश्च+खुरापिण्डस्य चोच्छ्रितः ।

घण्टाग्रं चन्द्रशाला च छाद्यकं च यदृच्छया ॥ २१२ ॥

कुर्यात् प्रमाणमन्यच्च यथैव मनसः प्रियम् ।

हर्षणः ॥

इदानीं विजयं त्रूमः प्रासादं (सार्धं?)शोभनम् ॥ २१३ ॥

लतिनो वर्धमानेन + + + + विभाजयेत् ।

शुकनासोदयं न्यस्येदंशोनशिखरोदयम् ॥ २१४ ॥

अग्रप्राग्ग्रीवकौ कार्थौ रथकौ वामदक्षिणौ ।

(कर्तव्योर्ध्वलतश्चापं पूर्णः?) सर्वतोदिशम् ॥ २१५ ॥

विजयो वर्धमानश्च प्रमाणेन समावृभौ ।

अलिन्दभेदानामास्य कृतं विजय इत्यदः ॥ २१६ ॥

महापद्मः ॥

त्रूमोऽथ हर्म्यं प्रासादं तं कुर्यादेकभूमिकम् ।

दारुजं चतुरश्रं च (पट्टतुलाभित्तिभिः?) ॥ २१७ ॥

दण्डच्छाद्यं च कुर्वीत समन्ताच्च चतुष्किकाम् ।

ऊर्ध्वतस्तुम्बिकाक्रान्तं पद्मसण्डविभूषितम् ॥ २१८ ॥

१. इह 'विजयः' इति लेख्यं भाति । महापद्म इति लेखनेन च विजयवान्

२. म. पी. : 'पुस्तकम्' इति कर्मरूपानां लक्षणश्लोका गलिता इत्यनुभाषते ।

विमानादिचतुष्पष्टिप्रासादलक्षणं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः । १३५

मु(खैः?खे) पत्रैर्गवाक्षैश्च वेदिकास्तम्भतोरणैः ।
बलभीशालभञ्जीभिः सिंहकणैश्च भूपयेत् ॥ २१९ ॥

विस्तारमस्य हर्म्यस्य कुर्यादुच्छ्रयसंमितम् । हर्म्यः ॥

इदानीमुज्जयन्तस्य लक्षणं सम्प्रचक्ष्महे ॥ २२० ॥

कुर्याद् भूहर्म्यमानेऽत्र द्वारि मण्डपभूपितम् ।
चतुर्द्वारं च कुर्वीत सर्वतो मण्डपान्वितम् ॥ २२१ ॥

प्रमाणमन्यदप्यस्य हर्म्यस्येवाखिलं भवेत् । उज्जयन्तः ॥

इदानीमभिधास्यामो गन्धमादनलक्षणम् ॥ २२२ ॥

हर्म्यमानेन कर्तव्यः प्रासादो गन्धमादनः ।
अग्रतः पृष्ठदेशे च मण्डपं तस्य कारयेत् ॥ २२३ ॥

चतुष्कीजालपक्ष्माद्या वामदक्षिणभागयोः ।
प्रमाणमस्य कर्तव्यं यथा हर्म्यस्य कीर्तितम् ॥ २२४ ॥

गन्धमादनः ।

द्रूमोऽथ शतशृङ्गं स त्रिविष्टपसमो भवेत् ।
विभजेद् भागविंशत्या पञ्चभौमं च कारयेत् ॥ २२५ ॥

+द्विभागानि कूटानि सैकमण्डपशतं भवेत् ।
भूमौ भूमौ च शृङ्गाणि भूविस्तारदशांशतः ॥ २२६ ॥

प्रमाणमस्य यत्किञ्चित् तत् त्रिविष्टपवद् भवेत् ।
निरख्यः ॥ *

विभ्रान्तमथ वक्ष्यामः सर्वतोभद्रसन्निभम् ॥ २२७ ॥

सान्यारं तं प्रकुर्वीत सर्वतो मण्डपैर्युतम् ।
गवाक्षा वेदिजालाद्याः(?) कुर्याद् दिक्षु चतुष्दिकाः ॥ २२८ ॥

विभ्रान्तः ॥

मनोहरमथ द्रूमः स भवेन्मण्डपो यथा ।
साच्छाद्यतोरणैर्दिक्षु चतुर्द्वारः समण्डपः ॥ २२९ ॥

* २२ 'शतशृङ्ग' इति लेख्यम् । निरख्यस्य लक्षणमपि गच्छेत् ।

वेदिपण्डाम्बुमार्गाद्यैः प्रतोलीद्वारजालिकैः ।

सिंहपीठतलन्यासैः कलशैः परिपूरितः ॥ २३० ॥

वृत्तस्तम्भस्तुलाच्छन्नो वह्निश्छायेन भूषितः ।

सिंहव्यालगजैः पत्रैर्मुखे सस्तम्भतारणैः ॥ २३१ ॥

पुनः कार्यं प्रमाणं तु यथाशोभं विधीयते ।

मनोहरः ॥

वृत्तवृत्तायतौ त्र्यम्बस्तयोः कम्बुसमाकृतिः ॥ २३२ ॥

वृत्तस्तत्र तलन्यासचतुरस्रौऽशपञ्चकम् (?) ।

वृत्ताद्यमूर्ध्वतो वृत्तं यथाशोभं समुत्थितम् ॥ २३३ ॥

कुर्यान्मुखायतं चान्यं सिंहकर्णान्वितं मुखे ।

वृत्तवृत्तायतौ ॥

चैत्यस्य लक्षणं त्र्यम्बः स स्याच्छा(द्य)त्रयान्वितः ॥ २३४ ॥

अस्याकारः प्रमाणं च यथा वृत्ते तथा भवेत् ।

चैत्यः ॥

किङ्किणीकमथ त्र्यम्बः पञ्चाण्डं नवभूमिकम् ॥ २३५ ॥

वृत्तकूटाः शुभाः कार्याः सर्वेऽपी शुभलक्षणाः ।

किङ्किणीकः ॥

इदानीं लयनं त्र्यम्बः स शैलखननाद् भवेत् ॥ २३६ ॥

निःश्रेण्यारोहसोपाननिर्युहकगवाक्षकान् ।

वेदीभ्रमविटङ्कांश्च प्रतोलीद्वारसंयुतान् ॥ २३७ ॥

(उत्कीर्णानाचरे तरप्राग्रीवन्मानं च?) ॥

लयनम् ॥

इदानीं पट्टिसं त्र्यम्बः प्रासादं वल्लसम्भवम्(?) ॥ २३८ ॥

(बोहातो?) जालपादैश्च वेदीपण्डैश्च मण्डितम् ।

कूर्मपृष्ठं प्रदातव्यमिच्छता शुभलक्षणम् ॥ २३९ ॥

पट्टिसः ॥

विभवः कथ्यते स स्यात् (सुर्यामन्वसमाश्रयः?) ।

दारवे दारवो योज्यः शैलजे शैलसम्भवः ॥ २४० ॥

श्रीकूटादिषट्त्रिंशत्प्रासादलक्षणं नाम षष्टितमोऽध्यायः ।

१३७

न्मये मृन्मयः कार्यश्चयने चयनोद्भवः ।
रत्यन्तग्रामखेटेषु दाहस्तम्भैर्विधीयते ॥ २४१ ॥

विभवस्यानुसारेण स कार्यो धार्मिकैस्त्रिभिः ।

विभवः ॥

तारागणमथ ब्रूमः स भवेन्मण्डपाकृतिः ॥ २४२

वत्सचीरतुलाशाण्डो(?) डोलाक्रीडाभ्रमैर्गृहैः ।
वत्सजैश्चित्ररूपाद्यैर्विष्णुदर्पणतोरणैः ॥ २४३ ॥

ध्वजच्छत्रविमानाद्यैः किङ्किणीभिर्विराजितम् ।
यत्किञ्चित् सुन्दरं सर्वं तदत्र विनिवेशयेत् ॥ २४४ ॥

तारागणः ॥

अष्टाष्टकैर्द्वै च विशेषयोगात्
प्रासादपट्टिश्चतुरन्वितपा ।

विमानमुख्याः कथिता य एतान्

(जातायस्यैस?) शिल्पिगणाग्रणीः स्यात् ॥ २४५ ॥

इति महाराजाधिराज परमेश्वरश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गसूत्रधारपरनाम्नि बालमुखात्रे
विमानादिचतुःषष्टिर्नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥

:०:

अथ श्रीकूटादिषट्त्रिंशत्प्रासादलक्षणं नाम
षष्टितमोऽध्यायः ॥

:०:

प(इवि?ट्रि)शतमथ ब्रूमः प्रासादान् नागरक्रियान् ।
साधारान् प्रथमस्तेषु श्रीकूटः श्रीमुखस्ततः ॥ १ ॥

श्रीधरो वैदरथैव तथा(भ्यः?न्यः) प्रियदर्शनः ।
कुलनन्दोऽन्तरिक्षध्व पुष्पभालो विशालकः ॥ २ ॥

सङ्कीर्णोऽथ महानन्दो नन्यावर्तस्तथापरः ।
सौभाग्यध्व विमलध्व विभवस्तदनन्तरम् ॥ ३ ॥

१. 'जातायस्यै' इति स्यात् । २. 'पद' इति तस्ये इत्येते ।

वीभत्सकोऽथ श्रीतुङ्गो मानतुङ्गस्तथापरः ।

(भवतो रुद्र?)संज्ञथ (भवद्वाहोदरस्तचः?) ॥ ४ ॥

निर्युहोदर(संज्ञोऽन्य)स्ततो ज्ञेयः समोदरः ।

नन्दिभद्रो भद्रकौशधिन्नकूटस्ततः परम् ॥ ५ ॥

विमलो हर्षणो भद्रसङ्कीर्णस्तदनन्तरम् ।

ततो भद्रविशालाख्यो भद्रविष्कम्भ एव च ॥ ६ ॥

उज्जयन्ताभिधानश्च सु(खे?मे)रुरथ मन्दरः ।

कैलासः कुम्भका(क्ष?र्य)श्च गृहराजश्च नामतः ॥ ७ ॥

एते(पां?पद्) त्रिंशदुद्दिष्टा लक्षणं कथ्यतेऽधुना ।

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे द्वादशांशविभाजिते ॥ ८ ॥

प्रासादं विभजेत् प्राज्ञः श्रीकृ(ष्टं) नाम शोभ(ने?नम्) ।

ज्येष्ठः स्याद् विशतिर्हस्ता मध्यमो दश पञ्च च ॥ ९ ॥

कनीयान् दश विज्ञेयः प्रमाणं हस्तसङ्ख्यया ।

भद्रं पद्भागिकाया(सं?मं) कर्णाः कार्या द्विभागिकाः ॥ १० ॥

तिलकं भागिकं कार्यं भागेनैकेन निर्गतम् ।

तस्माद् भागेन निष्क्रान्तं भद्रमस्य विधीयते ॥ ११ ॥

भागिकी वाह्यभित्तिः स्याद् द्विपदा चान्धकारिका ।

भागिकी गर्भभित्तिश्च गर्भः कार्यश्चतुष्पदः ॥ १२ ॥

अधश्छन्दः समुद्दिष्ट ऊर्ध्वच्छन्दोऽभिधीयते ।

विस्तारार्धेन जङ्गा स्यान्मेखला चैकभागिका ॥ १३ ॥

भागत्रयोच्छ्रितं शृङ्गं द्वितीयमपि तादृशम् ।

पूर्वशृङ्गस्य मध्ये तद् विधातव्यं विचक्षणैः ॥ १४ ॥

सार्धभागोदयः कार्यस्तिलकोऽन्यश्च तादृशः ।

द्वितीयतिलकस्योर्ध्वं सुश्लि(ष्ट?ष्टा) रूपसंयुता ॥ १५ ॥

१. 'सर्वतोभद्र' इति त्वात् । २. 'भवेद् वाहोदरस्ततः' इति पाठः स्यात् ।

श्रीकृष्णदिपद्त्रिंशत्प्रासादलक्षणं नाम षष्ठितमोऽध्यायः ।

स्यादुरोमञ्जरी सप्तभागोत्सेधा पडायता ।
स्याद् भागिकम् (स्योऽथश्छा)घं मञ्जरी या तु विस्वृतिः ॥ १६ ॥

दशधा प्रविभाज्यासौ शेषं श्रीवत्सवद् भवेत् ।
स्कन्धः षड्भागविस्तारो ग्रीवा भागार्थमुच्छ्रिता ॥ १७ ॥

अण्डकं भागिकं कार्यं कुण्डं चार्थभागिकम् ।
सार्थभागेन कलयो वीजपूरकसंयुतः ॥ १८ ॥

द्वितीयकर्णशृङ्गस्य स्याद्धूर्ध्वं मूलमञ्जरी ।
+++++ अष्टभागसमुच्छ्रिता ॥ १९ ॥

श्रीवत्सवद् विभागोऽस्याः स्कन्धग्रीवादिके भवेत् ।
एवं श्रीकृष्णसंक्षेपज्ञोऽयं प्रासादः परिकीर्तितः ॥ २० ॥

यं कृत्वा त्रिसहस्राणि दिव्यानि दिवि मोदते ।
श्रीकृष्णः ॥
अथ लक्ष्म +++++ स्याभिधीयते ॥ २१ ॥

तुल्यं प्रासादमानं विदध्यादिह षण्डपम् ।
शुभायायेन तिर्यक् तु चतुरश्रं + + + ॥ २२ ॥

+ + + भद्रविस्तारः कर्णाश्च तिलवतस्त्वथा ।
मध्ये चतुष्क्रिया कार्या भद्रविस्तारसम्भिता ॥ २३ ॥

नि + + + + + विधानध्यस्तु षण्डपे ।
जङ्घायाद् जङ्घायाः समोत्सेधाः विधीयते ॥ २४ ॥

मेखलं भागिकं + + + + + पुरिषु ।
स्वयं चतुष्क्रियं कार्यं यदी यथा विभागिता ॥ २५ ॥

तमाश्रयो यथाः एव प्रासादः ॥ २६ ॥
सोनिताः तिलवतस्य ॥ २७ ॥

षण्डपं चतुष्क्रियं कार्यं यदी यथा विभागिता ॥ २८ ॥
श्रीकृष्णः ॥ २९ ॥

प्रासादः श्रीगुणः ॥ २५ ॥ तदानीं स्यात् शुभदायकः ।

श्रीगुणः ॥

यदा ह्योरमस्येव चतुष्टयमो भवेत् ॥ २८ ॥

तदा स्याच्छ्रीगौ नाम प्रासादो देवनाथपः ।

श्रीगौः ॥

अस्यैव तु यदाह्रिन्दः क्रियते भद्रमितिः ॥ २९ ॥

(रुनेः?) भवेत् तदानीं वरुदः प्रासादः शुभदायकः ।

वरुदः ॥

विधीयते यदास्यैव भद्रमेकं निनिर्गतम् ॥ ३० ॥

निर्गूह्य तदा स स्यात् प्रासादः प्रियदर्शनः ।

प्रियदर्शनः ॥

विधीयते यदास्यैव नन्धान्तो निनिर्गतः ॥ ३१ ॥

कुलनन्दस्तदा ज्ञेयः प्रासादः सुखकारकः ।

कुलनन्दनः ॥

इति श्रीकूटादिपदकम् ।

अन्तरिक्षमथ वृषस्तस्य द्वादशभागिकाः(?) ॥ ३२ ॥

पङ्चविंशत्या करैर्ज्येष्ठमानायां दशभिर्भवेत्(?) ।

मध्य(मे?मो) मध्यमानेन हस्तसंख्येयमीरिता ॥ ३३ ॥

पञ्चभागायतं भद्रं कर्णाः कार्या द्विभागिकाः ।

विस्तारस्तिलकानां स्यादन्तरं भद्रकर्णयोः ॥ ३४ ॥

निर्गमः सार्धभागः स्याद् भद्रस्य तिलकस्य च ।

गर्भः षोडशभागः स्याद् भागिकी भित्तिविस्तृतिः ॥ ३५ ॥

प्रदक्षिणा तु भागौ द्वौ बाह्यभित्तिः पदं भवेत् ।

कथितोऽयमथश्छन्दो वृषश्छन्दप्रथोर्ध्वतः ॥ ३६ ॥

जङ्घा पङ्चभागिकोत्सेधा भागोत्सेधा च मेखला ।

++ भागत्रयोत्सेधे शिखरं प्रथमं तथा ॥ ३७ ॥

श्रीकूटादिषट्त्रिंशत्प्रासादलक्षणं नाम पष्टितमोऽध्यायः ।

तीयं तत्समं चोर्ध्वं तिलकस्योपरि स्थितम् ।
मधस्ता + + + + + छाद्यं तु भागिकम् ॥ ३८ ॥

शिखरं गर्भविस्तारं कर्तव्यं पट्टपदोच्छ्रितम् ।
अर्धेन गर्भविस्तारा + + + + + स्तथा ॥ ३९ ॥

द्वितीयशिखरस्योर्ध्वं (प्रागुलभ्यान्?) मूलमञ्जरी ।
इत्येष कथितः सम्यगन्तरिक्ष + + + + ॥ ४० ॥

अन्तरिक्षप्रिया देवाः सर्वे वैमानिका यतः ।
भगैरष्टभिरत्रैव क्रियतेऽलिन्द + + + ॥ ४१ ॥

पुष्पाभासस्तदा ज्ञेयः प्रासादश्चाख्दर्शनः ।
अन्तरिक्षः ॥ पुष्पाभासः ॥

अथास्य क्रियते भद्रमलिन्दा + + + + ॥ ४२ ॥

* + विशालको नानाप्रासादाज्जायते शुभः(?) ।
विशालकः ॥

अथास्य क्रियते भद्रयुक्तस्य + + वर्जितः ॥ ४३ ॥

तदा संकीर्णको नाम प्रासादः परिकीर्तितः ।
संकीर्णकः ॥

यदा संकीर्णकस्यैव नन्दिका स(म)भागिकी ॥ ४४ ॥

क्रियते निर्गमणैव महानन्दस्तदा भवेत् ।
महानन्दः ॥

विस्तारेण समथ स्यान्नन्दिकानिर्गमो यदा ॥ ४५ ॥

नन्द्यावर्त इति ज्ञेयः प्रासादः स तदा बुधैः ।
नन्द्यावर्तः ॥

अन्तरिक्षपट्टकम् ।

सौभाग्यमथ वक्ष्यामः स म्याद् द्वादशभिः पदैः ॥ ४६ ॥

उत्तमो विंशतिर्हस्ता मध्यमो दश पञ्च च ।

कनीया(त्रिसःन् दश) मानेन सौभाग्यो मानतस्त्रिया ॥ ४७ ॥

* 'विशालको नान तदा प्रासादो जायते शुभः' इति स्यात् ।

श्रीकूटादिषट्त्रिंशत्प्रासादलक्षणं नाम षष्ठितमोऽध्यायः । १४३

मोऽथ सर्वतोभद्रं दशधा तं विभाजयेत् ।
षड्(विधान्त्याऽविंशत्या) भवेज्ज्येष्ठः कनीयान् दशभिः करैः ॥

हस्तैस्तथाष्टादशभिर्मध्यमः परिकीर्तितः ।
कर्णा द्विभागिकाः कार्या अलिन्दाः पदपदोन्मिताः ॥ ६० ॥

चतुर्भागानि भद्राणि (विऽद्वि)भागस्तद्विनिर्गमः ।
गर्भभित्तिर्विहिर्भित्तिरन्यारी च पदं पदम् ॥ ६१ ॥

गर्भस्तु षोडशपद इत्येवं छन्द ईरितः ।
विस्तारार्थेन जड्या स्यान्मेखला चैकभागिका ॥ ६२ ॥

प्रथमं कल्पयेच्छृङ्गं विस्तारात् सार्धशुच्छ्रितम् ।
द्वितीयशृङ्गं तत्रालपं पूर्वशृङ्गस्य मध्यगम् ॥ ६३ ॥

प्राच्छ्रिता पढायाम्या सुरःशिखमिष्यते (?) ।
कर्तव्यं मूलशिखरं तद्वचोपरिशृङ्गयोः ॥ ६४ ॥

मञ्जर्या विभजेद् भागं विस्तारं दशधा युयः ।
स्कन्धः पद्भागविस्तारो धनुर्ध्रौवाण्डकादिकम् ॥ ६५ ॥

श्रीवत्सस्येव तत् कार्यं मञ्जरी भागमानतः ।
क्रमार्थं वा पञ्चसिंह ++ रूपैर्विभूषिता ॥ ६६ ॥

इत्युक्तः सर्वतोभद्रः ++ कल्याणकारकः । सर्वतोभद्रः ॥

अलिन्दशोभितं भद्रं यदास्यैव विधीयते ॥ ६७ ॥

तदा बालोदरो नाम प्रासादप्रवरो भवेत् । बालोदरः ॥

यद्यलिन्दो न भवति भद्रमेकं तु निर्गतम् ॥ ६८ ॥

स्याभिर्बालोदरो नाम प्रासादप्रवरस्तदा । लिन्दोदरः ॥

यदा न तत्र भद्रं स्यात्तद्विज्ञानिगेनो भवेत् ॥ ६९ ॥

श्रीकूटादिषट्त्रिंशत्प्रासादलक्षणं नाम पण्डितमोऽध्यायः ।
दानां भद्रविष्कम्भः प्रासादः स्यात् सुखपदः ।
भद्रविष्कम्भः ॥

चित्रकूटादिषट्कम् ।

चतुरश्रे समे क्षेत्रे विभक्तेऽष्टभिरष्टकैः ॥ ८० ॥
प्रासादं (वेद्येद्वा?) उच्चवन्तं सुशोभनम् ।
पदमेकं भवेत् कर्णेस्तिलकन्तावदेव च ॥ ८१ ॥
नभित्तिगर्भेपानेन भद्रं कुर्याद् विचक्षणः ।
वाथभित्तिर्भेदे भग्नं भानमेकं प्रदक्षिणा ॥ ८२ ॥
भागिका गर्भभित्तिश्च गर्भेमध्ये चतुष्पदम् ।
पश्चभागोन्मिता जङ्घा भग्नं तत्रैव भवेत्तत्र ॥ ८३ ॥
कर्तव्यं भागिकं शृङ्गमण्डकं चापिभागिकम् ।
द्विर्नाथं साण्डकं शृङ्गं तन्मध्ये पदप्रद्वयम् ॥ ८४ ॥
मदुच्छ्रायं विश्वानव्यमुन्नेधनाथभागिकम् ।
पदान्नेधं च शिखरं गर्भभित्तिमध्ये भवेत् ॥ ८५ ॥
भागिकः कच्छः कार्यो ध्वजध्वजस्य तन्मध्ये ।
पतस्य मृच्छशिखरं कुर्यात् पदभागिकं तत्रैव ॥ ८६ ॥
भागभिकमगृत्सेधं वायं कन्वापासिक्तम् ।
उर्ध्वं तिलकशृङ्गस्य शिखरं स्यात् पतितं च ॥ ८७ ॥
पेन्वाधाडिस्तूतं (?) क्षेत्रं शीघ्रं तत्रैव कल्पयेत् ।
इत्येव भवितः समवमुत्तयन्तो नैवतान्तरं ॥ ८८ ॥
शायोर्ध्वं सर्वैश्चैव प्रासादाः सुखप्रदाः ॥ ८९ ॥
शिवहोत्रेऽपि सर्वोत्सवोऽपि प्रासादाः सुखप्रदाः ॥ ९० ॥
चतुरश्रं कुर्यात् पञ्च भेदः शिखरं च ॥ ९१ ॥
भेदं च मूर्च्छशिखरं च तत्रैव कल्पयेत् ॥ ९२ ॥
शुभं च तत्रैव कल्पयेत् ॥ ९३ ॥
शुभं च तत्रैव कल्पयेत् ॥ ९४ ॥
शुभं च तत्रैव कल्पयेत् ॥ ९५ ॥
शुभं च तत्रैव कल्पयेत् ॥ ९६ ॥
शुभं च तत्रैव कल्पयेत् ॥ ९७ ॥
शुभं च तत्रैव कल्पयेत् ॥ ९८ ॥
शुभं च तत्रैव कल्पयेत् ॥ ९९ ॥
शुभं च तत्रैव कल्पयेत् ॥ १०० ॥

पीठपञ्चकलक्षणं नामैकपष्टितमोऽध्यायः ।

अथ पीठपञ्चकलक्षणं नामैकपष्टितमोऽध्यायः ।

10:

इदानीं द्वाविडान् वृषः प्रासादाच्च शुभलक्षणान् ।
 एकभूम्यादयस्ते स्युर्यावद्द्वादशभूमिकाः ॥ १ ॥
 पीठान्यपिच कथ्यन्ते तेषां पञ्चैव लक्षणैः ।
 तलच्छन्दाश्च पञ्चैव तेषां ये शुभलक्षणाः ॥ २ ॥
 पीठमाद्यं भवेत् तेषु पादवन्धनमुत्तमम् ।
 (स्त्रीःश्री)वन्धाख्यं द्वितीयं च तृतीयं वेदिवन्धनम् ॥ ३ ॥
 प्रतिक्रममिति प्रोक्तं चतुर्थं पीठमुत्तमम् ।
 पञ्चमं पीठमुद्दिष्टं नाम्ना क्षुरकवन्धनम् ॥ ४ ॥
 एतानि पञ्च पीठानि प्रोक्तानीह समासतः ।
 उत्सेधं भागविंशत्या विभजेत् पादवन्धने ॥ ५ ॥
 खुरकः पञ्चभागः स्याद्(द्वौ)भागौ पद्मपत्रिका ।
 भागिकी कणिका कार्या विभागं कुमुदं भवेत् ॥ ६ ॥
 कण्टस्तु भागेनैकेन कण + थ द्विभागिकः ।
 पट्टिका भागमेकं स्याद् भागिकी पद्मपट्टिका ॥ ७ ॥
 त्रिभागिकं कपोतं च कुर्यान्नासिकया सह ।
 भागमेकं भवेच्छेदः(ः)पादवन्धाख्यपीठके ॥ ८ ॥
 पद्मपत्र्याः प्रवेशः स्यात् खुरकाद्ङ्गुलद्वयम् ।
 ग्रासः पडङ्गुलस्तस्याः कुमुदं सप्तनिर्गमम् ॥ ९ ॥
 प्रवेशमानं तावत् स्याद् याव(द्विःद्वि)च्छेदपट्टिकां ।
 पडङ्गुलप्रवेशं च च्छेदपट्टस्य कारयेत् ॥ १० ॥
 समस्तत्रं(?) विधातव्यं छेदस्य कणिकस्य च ।
 निर्गमेण पुनस्तस्माद् उभयङ्गुला कण्टपट्टिका ॥ ११ ॥
 अङ्गुलत्रितयं तस्याः पद्मपत्रीविनिर्गमः ।
 (जापोत्तस्य - - - - - तस्याः, स्याद्ङ्गुलत्रयम् ॥ १२ ॥

पट्टिकानां (सममूत्रच्छेदानां च संश्लिष्टः?) ।

पादवन्धोऽयमाख्यातः श्रीवन्धः कथ्यतेऽधुना ॥ १३ ॥

पीठच्छेदस्य भानं तु सप्तविंशतिधा भजेत् ।

(तीडवर्तिचतुर्भागाः) द्विभागा पञ्चपत्रिका ॥ १४ ॥

कणिकां भागिकां कुर्यात् त्रिभागं कुमुदं ततः ।

छेदमेकं पदं विद्याद् भागं (मेडथराधं?) तथा ॥ १५ ॥

मकरं भागमेकं च भागं मकरपट्टिकाम् ।

छेदमेकं पदं विद्यात् कण्ठमेकं पदं तथा ॥ १६ ॥

पट्टिकां भागमेकं च वेदी भागं ततः परा ।

छेदमेकपदं कुर्यात् ततः कण्ठं द्विभागिकम् ॥ १७ ॥

पट्टिका भागमेकं च +++ पञ्चपत्रिका ।

कपोतं नालिकायुक्तं विदधीत पदत्रयम् ॥ १८ ॥

छेदं च भागिकं कुर्यात् पीठे श्रीवन्धनामनि ।

श्रीवन्धोऽयं समाख्यातो वेदीवन्धोऽथ कथ्यते ॥ १९ ॥

भागैरेकान्नविंशत्या ('पीठस्याच्छोतिं?) भजेत् ।

नीडवर्तिश्चतुर्भागा द्विभागा पञ्चपत्रिका ॥ २० ॥

कणिकां पट्टिकां विद्यात् कुमुदं त्रिपदं तथा ।

कुर्वीत पट्टिकं छेदं तद्वन्मेण्डस्तरं(?) बुधः ॥ २१ ॥

भागैरेकेन मकरं तथा मकरपट्टिकाम् ।

छेदं पदं ++ कण्ठं भागिका पञ्चपत्रिका ॥ २२ ॥

(कर्तव्या?) भागिकां कुर्यात् कुमुदं च त्रिभागिकम् ।

छेदमेकपदं विद्यात् ततः कण्ठं द्विभागिकम् ॥ २३ ॥

पट्टिकां भागिकां कुर्याद् भागिकां ++ पट्टिकाम् ।

द्विभागो रसनापट्टाश्छादस्तु पट्टिको भवेत्(?) ॥ २४ ॥

पीठपञ्चकलक्षणं नामैकषष्टितमोऽध्यायः ।

प्रतिक्रमं पीठं क्षुरवन्धोऽधुनोच्यते ।
 (भजेद्) भागविंशत्या पीठोच्छ्रायं विचक्षणः ॥ २५ ॥
 कणिका भागमेकं स्याद् द्विभागं कुमुदं ततः ॥ २६ ॥
 (भागं मेडथाक्षेपो?) मकरो भागिकस्तथा ।
 भागमेकं विधातव्या ततो मकरपट्टिका ॥ २७ ॥
 (छेदा मकरपदं?) कुर्यात् कण्ठमेकं पदं ततः ।
 पट्टिकां भागिकीं विद्याद् भागिकी पञ्चपत्रिका ॥ २८ ॥
 कपोतं त्रिपदं कुर्यात् ततो नासिकया सह ।
 छेदश्च भागिकः कार्यः क्षुरवन्धोऽयमीरितः ॥ २९ ॥
 पीठपञ्चकमित्युक्तं सूत्रितं पूर्वमेव यत् ।
 पीठादूर्ध्वं तु विज्ञेया प्राज्ञैः सुरवरण्डिका ॥ ३० ॥
 सन्ति चान्यानि पीठानि लक्ष्मभेदादनेकया ।
 तेषां मध्ये प्रकृष्टत्वादेतत् पञ्चकमीरितम् ॥ ३१ ॥
 प्रासादानथ वक्ष्यामस्तलच्छन्दादनन्तरम् ।
 तत्र पद्मो महापद्मो वर्धमानस्तथापरः ॥ ३२ ॥
 स्वस्तिकः सर्वतोभद्रः प्रासादाः पञ्च कीर्तिताः ।
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे कर्णमूत्रं प्रसारयेत् ॥ ३३ ॥
 कर्णस्यार्धं ततः कृत्वा (गर्भादृक्?) वर्धनयेत् ।
 तदग्रयोः सूत्रमातात् स्यादन्यचतुरश्रकम् ॥ ३४ ॥
 कूटं कुर्याद् द्विभागेन (समस्तत्राद्?) विचक्षणः ।
 सूकराननसंस्थानं कुर्वीत सलिलान्तरम् ॥ ३५ ॥
 एवं सर्वेषु कूटेषु सलिलान्तरमिष्यते ।
 यदायतं भवेत् सूत्रचतुर्भागविभाजिते ॥ ३६ ॥
 गर्भो द्विभागिकस्तेन भागिका भित्तिरुच्यते ।
 गर्भकर्णार्धमादाय कोणा(संज्ञितं)लज्जयेत् पुनः ॥ ३७ ॥

१. 'उरमेकं पदं' इति स्याद् । २. 'लज्जयेत्' इति स्याद् ।

- कुर्यात् कूटं चतुर्भागं + + + सलिलान्तरम् ।
 त्रिभागं पञ्जरं तद्वद् द्विभागं सलिलान्तरम् ॥ ५१ ॥
 शालां पट्टभागिकीं कुर्याज्जलमार्गं द्विभागिकम् ।
 त्रिभागं पञ्जरं भूयश्चन्द्रशालाविभूषितम् ॥ ५२ ॥
 पुनर्द्विभागिकं कुर्याच्चतुर्थं सलिलान्तरम् ।
 विदधीत चतुर्भागं रथकं च सुशोभनम् ॥ ५३ ॥
 एवं दिक्षु समस्तासु समैर्भागैः प्रकल्पयेत् ।
 चतुर्भागे ततः क्षेत्रे गर्भं कुर्याद् द्विभागिकम् ॥ ५४ ॥
 स्वस्तिके वर्धमाने च भागिकयो भित्तयः स्मृताः ।
 स्वस्तिकोऽयं तलच्छन्दः कथितोऽतिमनोहरः ॥ ५५ ॥
 इदानीं सर्वतोभद्रतलच्छन्दोऽभिधीयते ।
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे गर्भं कुर्याद् द्विभागिकम् ॥ ५६ ॥
 कुर्यात् त्रिभागिकं कूटं जलमार्गं द्विभागिकम् ।
 त्रिभागिकं ततः कूटं तोयमार्गं द्विभागिकम् ॥ ५७ ॥
 शालाष्टभागिकीं कुर्याज्जलत्र(र्त्म)द्विभागिकम् ।
 भूयस्त्रिभागिकं कूटं द्विभागं सलिलान्तरम् ॥ ५८ ॥
 त्रिभागिकी च रथिका भवेद् दिक्षु (चतुर्दश?) ।
 चतुरश्रीकृ(ते?तं)क्षेत्रे(त्रे?त्रम्) अष्टाविंशतिधा भजेत् ॥ ५९ ॥
 कुर्यात् त्रिभागिकं कूटं चतुर्थां प्रविभाजिते ।
 भागिकयो भित्तयः कार्यास्तथा गर्भो द्विभागिकः ॥ ६० ॥
 इत्येष सर्वतोभद्रस्तलच्छन्दो विधीयते ।
 एते प्रोक्ता निरन्धाराः सान्धारास्तु प्रचक्ष्महे ॥ ६१ ॥
 चतुरश्रीकृतं क्षेत्रं भजेद् द्वादशभिः पदैः ।
 चतुर्भागो भवेद् गर्भो भागिकयो भित्तयः स्मृताः ॥ ६२ ॥
 भागिकान्धारिका तद्वद् द्विभागा वाद्यभित्तयः ।
 एवमेते तलच्छन्दाः पद्माद्याः परिकीर्तिताः ॥ ६३ ॥

पीठान्युक्तान्येवमेतानि पञ्च
 प्रासादानां नामभिर्लक्षणैश्च ।
 पञ्च प्रोक्ता ये तलच्छन्दभेदा-
 स्तैर्विज्ञातः पूज्यतामिति लोके ॥ ६४ ॥

इति महाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीभोजदेवनिरञ्जिते समराङ्गणसूत्रधारनाम्नि वास्तुशास्त्रे

पीठपञ्चकाध्यायो नामैकपटितमः ॥

—:०:—

अथ द्राविडप्रासादलक्षणं नाम द्विपटितमोऽध्यायः ।

—:०:—

ऊर्ध्वमानमथ त्रूमो यण्डान्तपुरपादितः(?) ।
 प्रमाणं कर्णमानेन सर्वेषामेव धारयेत् ॥ १ ॥
 तत्रैकभूमि(कः) कार्यो हस्तपञ्चकविस्तृतः ।
 अङ्गुलद्वितयोपेत(ः?) सप्तहस्तसमुच्छ्रितः ॥ २ ॥
 पादो द्विहस्त उत्सेधात् सर्वालङ्कारभूषितः ।
 सार्धहस्तसमुत्सेध(स्तावन्मानः स्तरावधि?) ॥ ३ ॥
 माला तु द्विस्तरा प्रोक्ता स्तरो लशुनकं भवेत् ।
 भरणं स्तरमेकं स्याद् भरणार्थं स्तरद्वयम् ॥ ४ ॥
 कलशाद्युतरं ज्ञेयो वारराद्य(समन्वितः?) ।
 द्विस्तरं कुलकं कुर्यात् पञ्चपत्रसमन्वितम् ॥ ५ ॥
 वीरगन्द्रा(?) पुनः कुर्यात् स्तरमेकं तदूर्ध्वतः ।
 द्विस्तरं हीरकं प्रोक्तं षट्शैव तथाविधः ॥ ६ ॥
 पट्टिका स्तरमेकं स्याद् वसन्तं द्विस्तरं विदुः ।
 वसन्तपट्टिका चोर्ध्वं स्तरमेकं विधीयते ॥ ७ ॥
 कपोतं नासिकायुक्तं विदधीत स्तरत्रयम् ।
 + दन्तरं प्रकुर्वीत मेढमेकस्तवंस्तत (?) ॥ ८ ॥

१. 'तदन्तरे प्रकुर्वीत, मेढमेकं स्तरं ततः' इति स्यात् ।

द्राविडप्रासादलक्षणं नामैकपष्टितमोऽध्यायः ।

स्तरप्रमाणं मकरं तद्वन्मकरपट्टिकाम् ।
पुनश्छेदं स्तरं कुर्याद् वेदीवन्धस्ततः स्तरम् ॥ ९ ॥

छेदः स्तरप्रमाणश्च कण्ठः स्याद् द्विस्तरं ततः ।
पट्टिका स्तरमेकं तु तद्वच्चाम्बुजपट्टिका ॥ १० ॥

मालादिपद्मपत्रान्तं द्विहस्तोत्सेधमीरितम् ।
सार्धहस्तः समुत्सेधः कूटस्य परिकीर्तितम् ॥ ११ ॥

नासिकापद्मसंयुक्तं तद्धूर्ध्वं कलशो भवेत् ।
एकभूमेरिदं मानं प्रासादस्य प्रकीर्तितम् ॥ १२ ॥

एकभूमिकः ॥

द्विभूमिकस्य लक्ष्माथ प्रासादस्याभिधीयते ।
सप्तहस्तसविस्ता + + + + समुच्छ्रितः ॥ १३ ॥

कर्णमानाद् भवेदस्य विभागोऽथ निगद्यते ।
द्विहस्तं कल्पयेद् वीजं जङ्घा सार्धद्विहस्तकम् ॥ १४ ॥

कूटस्य सन्निवेशोऽयं विज्ञातव्यः सभागिकः ।
जङ्घा द्वितीया तु पुनः कर्तव्या तस्य भागिका ॥ १५ ॥

सन्निवेशो द्वितीयस्य स्यात् कूटस्यार्धभागिकः ।
(दिदिक्व्यस्पृ?) कर्तव्या सह कण्ठेन भागिकः ॥ १६ ॥

तस्योपरिष्ठाद् घण्टा च सार्धभागसमुच्छ्रिता ।
नासिकापद्मसंयुक्ता विधातव्या विपथिता ॥ १७ ॥

पीठानां पूर्वमुक्तानां पादवन्धादिनामभिः ।
पञ्चानां कल्पयेदेवं ++ भूम्यादितः क्रमान् ॥ १८ ॥

तेषां शोभावहं यत् स्यात् तत् कर्तव्यं विपथिता ।
तस्योपरि भवेज्जङ्घा मालाल+ संयुता ॥ १९ ॥

भरणं कलशस्तद्वद् (द्वा?वी?)रगण्डसमन्वितम् ।
उच्छ्रालं पूर्वमानेन पद्मपत्रायुतं ततः(?) ॥ २० ॥

वीरगण्डः पुनः कार्यो हीरं पूर्वक्रमेण च ।
तस्योपरिष्ठात् पट्टश्च भवेत् पट्टिकाया सह ॥ २१ ॥

(वसन्तवेदूर्ध्वं ततः?)स्तस्यैवोपरि पट्टिका ।
 ततः कपोतच्छेदश्च (मेढकर एव च?) ॥ २२ ॥
 पट्टिका (मैकरोप्या च भेदः?)कण्ठोऽथ पट्टिका ।
 वेदीच्छेदश्च कण्ठश्च पट्टिका पद्मपट्टिका ॥ २३ ॥
 कूटं तदूर्ध्वं कुर्वीत त्रिचित्रं नासिकान्वितम् ।
 छेदान्तं पूर्वमानेन सर्वमेतद् विधीयते ॥ २४ ॥
 तस्योपरि पुनर्जङ्घा सर्वाभरणभूषिता ।
 ततो मालाथ (ल)शुनं तोरणं कलशस्ततः ॥ २५ ॥
 वीरगण्डस्त(तो?थो)च्छालं पत्रकं वीरगण्डकः ।
 हीरकं पट्टिका तद्वद्वसन्तपट्टिका पुनः ॥ २६ ॥
 कपोतच्छेदमेढाश्च (मैकरोऽस्य?) च पट्टिका ।
 छेदः करपट्टिका च (?) वेदीच्छेदोऽथ कण्ठकः ॥ २७ ॥
 पट्टिका पद्मपूर्वा च कर्तव्या पट्टिका ++ ।
 ततश्छेदो विधातव्यः सर्वैराभरणैर्युतः ॥ २८ ॥
 ततश्छिच्चा तथा कार्यं यथा शोभा प्रजायते ।
 पुनः कण्ठ्यं(?) प्रदातव्यः पट्टिका पद्मपट्टिका ॥ २९ ॥
 ततः कण्ठं विधातव्यं चन्द्रमालाविभूषितम्(?) ।
 प्रकुर्वीत ततश्छेदमुपरिष्ठाद् विचक्षणः ॥ ३० ॥
 कण्ठपट्टिकया युक्तं तदूर्ध्वं कण्ठपट्टिकाम् ।
 सप्ताङ्गुलानि कर्तव्यस्ततो वण्टाविनिर्गमः ॥ ३१ ॥
 भागार्धं विस्तृतिस्तस्या विस्तारार्धं समुच्छ्रितः ।
 एवं द्विभूमिकं प्राज्ञः प्रासादं परिकल्पयेत् ॥ ३२ ॥
 द्विभूमिकः ॥
 त्रिभूमिकस्तृतीयोऽथ प्रासादोऽस्माभिरुच्यते ।
 तस्यैकादश विस्तारो हस्ताः पञ्चदशोच्छ्रयः ॥ ३३ ॥
 चतुर्दशाङ्गुलान्येषां भवेदस्याधिका(पि?नि) च ।
 +++ भूमिकस्यैतत् कर्णमानमसंशयम् ॥ ३४ ॥

क्षविडप्रासादलक्षणं नामैकपष्ठितमोऽध्यायः ।

- ॐ द्विहस्तं कुर्वीत तत्रादौ पूर्वसूचितम् ।
 ह्यं त्रिभागिकोत्सेधां कूटोच्छ्रायं तु भागिकम् ॥ ३५ ॥
 प्रवेज्जङ्घा तृतीया च सार्धभागद्वयं ततः ।
 भागं च कूटप्रसरश्चन्द्रशालाविभूषितः ॥ ३६ ॥
 पुनस्तृतीया जङ्घा (स्याद् भाग)द्वय(स)मुच्छ्रिता ।
 ततश्च(शा?)कू(ट)प्रस्तारो भागिको भूषणान्वितः ॥ ३७ ॥
 भागं स्याद् वेदिवन्धः + सगुणद्वारकण्ठकः ।
 चतु(र्दि?)शमसौ कार्यो भूपायुक्तो यथोचितम् ॥ ३८ ॥
 घण्टाच्छेदस्तु भागौ (द्वौ) द्व्यङ्गुलद्वयसंयुतौ ।
 एकादशस्तरा (कुरु?)स्तस्योपरि विधीयते ॥ ३९ ॥
 इदानीं प्रविभागोऽस्य पीठादूर्ध्वं विधीयते ।
 हस्तमेकं भवेज्जङ्घा(द्यंयपिच?)तया समा ॥ ४० ॥
 माला तु द्विस्तरा प्रोक्ता लशुनं भागिकं ततः ।
 भरणं स्तरमेकं स्यात् कलशोऽपिच तत्समः ॥ ४१ ॥
 वीरगण्डसमायुक्तमुच्छ्रालं द्विस्तरं ततः ।
 ततस्तरं वीरगण्डो + + + + + ॥ ४२ ॥
 हीरकं द्विस्तरं विद्यात् (स?)स्तरं वासन्तपट्टिका ।
 कपोतं नालिकायुक्तं त्रिस्तरं कारयेत् ततः ॥ ४३ ॥
 छेदं प्रस्तप्रमाणं च मेढं च तत्सम्मितम् (?) ।
 स्तरं कुर्वीत परं तदर्थेनास्य पट्टिका ॥ ४४ ॥
 छेदं तथैव कुर्वीत कण्ठमेकस्तरं ततः ।
 पट्टिका वेदिका चैव स्तरमेकं विधीयते ॥ ४५ ॥
 छेदमर्धस्तरं विद्यात् वण्ठं सार्धस्तरं ततः ।
 पट्टिका स्यात् स्तरं पञ्च स्तरमेकं ततो भवेत् ॥ ४६ ॥
 शेषे च सुन्दरं दण्ठं विप्रतव्यं(?) विचक्षणैः ।
 अनन्तरं द्वितीया च जला कार्या नवस्तरा ॥ ४७ ॥

सूचि(का?ता)हस्तसङ्घचैषा विभागः कथ्यतेऽधुना ।
पीठं हस्तद्वयोत्सेधं जङ्घालङ्कृतिरुच्यते ॥ ७४ ॥

दशभागो भवेदेकमुच्छालं द्विस्तरं ततः ।
वीरगण्डं स्तरं विद्याद् द्विस्तरं हीरकं भवेत् ॥ ७५ ॥

पट्टस्तथैव विज्ञेयो(त्सेधकी?)पट्टिका ततः ।
वसन्तं द्विस्तरं + + + + वासन्तपट्टिका ॥ ७६ ॥

कपोतस्त्रिस्तरः कार्यो भागं छेदो विधीयते ।
मेढं स्तरं प्रकुर्वीत स्तरं कण्ठस्य पट्टिका ॥ ७७ ॥

कुर्वीत भागिकीं (देवा?वेदी?)तत(च्छे?छे)दे च भागिकम् ।
पुनः कण्ठं प्रकुर्वीत द्विस्तरं पट्टिकां ततः ॥ ७८ ॥

स्यात् पद्मपत्रिकाप्येवं षण्ठा पञ्चस्तरा ततः ।
विचित्रं लक्षणोपेतं ततः कुम्भं निवेशयेत् ॥ ७९ ॥

जङ्घास्तम्भं द्वितीया(यां) विदध्यादष्टभागिकम् ।
मालां + द्विस्तरं कुर्याद् भागिकं (त'ल)शुनं ततः ॥ ८० ॥

भर(णं) स्तरमेकं च कलशं तत्प्रमाणतः ।
वीरगण्डेन संयुक्तं (तावांशो?),च्छालकं भवेत् ॥ ८१ ॥

द्विस्तरं तच्च विज्ञेयं वीरगण्डः स्तरं भवेत् ।
हीरकं द्विस्तरं विद्यान् पद्मं चैव तथाविधम् ॥ ८२ ॥

पट्टिका स्तरमेकं स्याद् वसन्तं द्विस्तरं ततः ।
वसन्तपट्टिकां भागं कपोतं त्रिस्तरगोच्छ्रितम् ॥ ८३ ॥

कुर्वीत भागिकं (सिद्धं?) स्तरमेकं च मेढकम् ।
मकरं स्तरमेकं च तथा मकरपट्टिकाम् ॥ ८४ ॥

मेढः स्तरं भवेत् कण्ठः स्तरं भागं च पट्टिका ।
वेदिका स्तरमेकं च चन्द्रमर्धेन कारयेत् ॥ ८५ ॥

कण्ठं माधेन्तरं कुर्यात् न्नामेकं च पट्टिकाम् ।
(आनाश्रयन्तो) पट्टिकां भागं कुर्यात् षण्ठां चतुःस्तराम् ॥ ८६ ॥

द्राविडप्रासादलक्षणं नौमैकषष्टितमोऽध्यायः ।

ग्रीवभूषिता सा स्यात् कुम्भं कुर्यात् तदूर्ध्वतः ।
ड्यास्तम्भस्त्वृतीयायां लप्तांश्चतुरङ्गः ॥ ८७ ॥

ततो मालाथ लशुनं भरणं कुम्भकाण्डको ।
उच्छालं गण्डको हीरं प्रत्येकं स्युः स्तरं स्तरम् ॥ ८८ ॥

पद्मं सार्धस्तरं विद्याद् भागेऽर्धे पट्टिकां तथा ।
भागमेकं वसन्तः स्याद् भागं वासन्तपट्टिका ॥ ८९ ॥

कपोतं त्रिस्तरं कुर्याच्छेदमेकस्तरं ततः ।
ततश्च मे(ढं) मरं(?) विदधीत स्तरं स्तरम् ॥ ९० ॥

तत्पट्टिका तु भागार्धं (भेदं?) भागार्धमेव च ।
कण्ठो वेदी पट्टिका (च) त्रीण्येतानि स्तरं स्तरम् ॥ ९१ ॥

स्तरस्यार्धं भवेच्छेदः कण्ठः सार्धस्तरं ततः ।
भागार्धं पट्टिका कार्या तावती पद्मपत्रिका ॥ ९२ ॥

चतुर्भागा भवेद् वण्टा गुणद्वारसमन्विता ।
द्विस्तरं कारयेत् कुम्भं वण्टायाः स्थितमूर्ध्वतः ॥ ९३ ॥

एवं भूमिस्त्वृतीयैषा चतुर्थी कथ्यतेऽधुना ।
कर्तव्या (पट्टरा?)जङ्घा महास्तम्भसमन्विता ॥ ९४ ॥

मालाथ लशुनं तद्वद् भरणं कुम्भ एव च ।
उच्छालं गण्डकं हीरमिति ग्रा + पृथक् पृथक् ॥ ९५ ॥

सार्धभागं भवेत् (पादः?पट्टः) पट्टिकार्धस्तरं ततः ।
वसन्तं (स्त)रमेकं स्यात् तत्संज्ञः(?) पट्टिका स्तरम् ॥ ९६ ॥

कपोतं द्विस्तरं विद्याच्छेदं चार्धस्तरं ततः ।
मेढं तथैव कुर्यात् नकरं च स्तरं युधः ॥ ९७ ॥

पट्टिकां मकराल्यां च छेदमेकस्तरं विदुः ।
स्तरमेकं भवेत् कण्ठः स्तरस्यार्धं च पट्टिका ॥ ९८ ॥

तथैव वेदिकां कुर्याच्छेदमर्धस्तरं पुनः ।
सार्धभागं प्रकुर्वीत कण्ठदेशं विचक्षणः ॥ ९९ ॥

१. 'दं नकरम्' इति त्वाद । २. 'तत्संज्ञ' इति त्वाद ।

पट्टिका (मद्यः)संज्ञा तु स्तरमेकं विधीयते ।

घण्टा स्तरद्वयं कार्या गुणद्वारविभूषिता ॥ १०० ॥

कुम्भं विदध्यादुपरि द्विस्तरं पङ्कजाननम् ।

भागमेकं भवेच्छेदस्ततः कण्ठः स्तरद्वयम् ॥ १०१ ॥

पट्टिका स्तरमेकं तु वेदिका तु स्तरावुभौ ।

पुनश्छेदो भवेद् भागं ++ कण्ठो विधीयते ॥ १०२ ॥

पट्टिका स्तरमेकं तु तद्वदम्भोजपत्रिका ।

स्तराणां विंशतिर्घण्टा भवेद् गर्भार्थविस्तृता ॥ १०३ ॥

चन्द्रशालाश्च कर्तव्या दर्शनीयाश्चतुर्दिशम् ।

एवं पद्मे महापद्मे स्वास्तिके वर्धमानके ॥ १०४ ॥

तथैव सर्वतोभद्रे कुर्याद् घण्टामिमां बुधः ।

कुम्भं तु पञ्चदशभिः स्तरैः (कार्याः/कुर्यात्) समुन्नतम् ॥ १०५ ॥

स्याच्चतुर्भूमिको देवं तलच्छन्दस्तु कामतः ।

चतुर्भूमिकः ॥

पञ्चभौषमथ त्रूपः प्रासादं राजपूजितम् ॥ १०६ ॥

विस्तारेण विधातव्यः स ह(न्त्र?स्ता)नेकविंशतिम् ।

विभाजयेन् तयोत्सेधं पादोनत्रिगुणं करान् ॥ १०७ ॥

पीठं भागद्वयं सार्धं जड्या (साराघ्ना?)विभागिकी ।

कुर्वीत ह्य्यस्तारं सार्धहस्तं च वृद्धिमान् ॥ १०८ ॥

जड्या द्वितीया कर्तव्या हस्तत्रितयमृच्छिता ।

भूयोऽपि ह्य्यस्तारं सार्धहस्तं प्रकल्पयेन् ॥ १०९ ॥

जड्या तृतीया कर्तव्या पादद्वीपं कस्त्रयम् ।

सार्धहस्तसमुत्सेधः ह्य्यस्तार इष्यते ॥ ११० ॥

चतुर्भूमिजड्या च सार्धहस्तद्वयोच्छिता ।

ह्य्यस्तारकं कुर्वीत पूर्वजानेन वृद्धिमान् ॥ १११ ॥

द्राविडप्रासादलक्षणं नाम द्विपष्टितमोऽध्यायः ।
 म्यां भुवि कुर्वीत (जङ्घा सा?) हि करद्वयम् ।
 वीत कूटप्रस्तारं तथा प्रा(गा?गु)दितो यथा ॥ ११२ ॥
 कुर्याद्द्वस्तद्वयोत्सेधं कपोतमपि बुद्धिमान् ।
 चतुर्भागसमुत्सेधा महाघण्टा विधीयते ॥ ११३ ॥
 उपरिष्ठाद् भवेत् तत्र प्रासादे पञ्चभूमिके ।
 कुम्भं तदूर्ध्वं कुर्वीत स्तरानेकोनविंशतिम् ॥ ११४ ॥
 संस्थानमेतत् कर्तव्यं सर्वतोभद्रसंज्ञ(कौ?के) ।
 विभाजयेद् विशेषेण ततः स्तरविभाजनात् ॥ ११५ ॥
 श्रीवन्द्यपीठं कर्तव्यं सार्धहस्तद्वयोच्छ्रितम् ।
 चतुर्दशस्तरं जङ्घा कर्तव्या स्तम्भसंयुता * ॥ ११६ ॥
 कर्तव्या द्विस्तरा माला लघुनं स्तरसम्मितम् ।
 विदधीत स्तरं पद्मकुम्भगण्डसमन्वितम् (?) ॥ ११७ ॥
 उच्छालं द्विस्तरं कुर्या(दिडो?) भागं विधीयते ।
 द्विस्तरं हीरकं कार्यं पट्टाश्चैव तथाविधाः ॥ ११८ ॥
 पट्टिका स्तरमेकं च वसन्तं द्विस्तरं ततः ।
 वसन्तपट्टिका भागं कपोतं त्रिस्तरं ततः ॥ ११९ ॥
 छेदमेकस्तरं कुर्यात् स्तरमात्रं च मेढकम् ।
 मकरं भागमेकं च भागं (चराल?)पट्टिका(म्) ॥ १२० ॥
 कुर्वीत भागिकं छेदं ततः कण्ठं च भागिकम् ।
 कण्ठं छेदं ततः कण्ठं च++++भागिकम् ॥ १२१ ॥
 (वाख्यापट्टिका?) भागं वेदीं विचक्षणः ।
 कुर्वीत भागिकं छेदं ततः कण्ठं स्तरद्वयम् ॥ १२२ ॥
 स्तरं स्तरं प्रकुर्वीत पट्टिका पद्मपट्टिका ।
 कूटप्रस्तारके कुर्यान्मकराननपञ्चकम् ॥ १२३ ॥
 विचित्ररूपं सर्वासु दिक्षु सर्वगुणान्वितम् ।
 ऊर्ध्वतः पट्टिकायास्तु घण्टा पञ्चस्तरा भवेत् ॥ १२४ ॥

नासिकाभिर्विचित्राभिरस्तुशराभिरग्निता ।

भद्राणि यस्य दृश्यन्ते कृदे कृदे समन्ततः ॥ १२५ ॥

स सर्वतोभद्र इति श्रावणः विद्विनां वनः ।

अवलम्बेन तदनु स्तम्भच्छेदं प्रकल्पयेत् ॥ १२६ ॥

स्तम्भत + + + त्रेण गनानं भुवि सूत्रयेत् ।

मेढस्य निर्गमे दयादङ्गुलद्वितयं बुधः ॥ १२७ ॥

पञ्चाङ्गुलानि कर्तव्यस्ततो मकरनिर्गमः ।

सूत्रयेत् समसूत्रेण ततो मेढकस्यः पट्टिका ॥ १२८ ॥

पङ्कगुलप्रवेशस्तु कार्यच्छेदस्य धीमता ।

यथा प्रवेश + + + छेदस्याणि तथा भवेत् ॥ १२९ ॥

अङ्गुलद्वितयं कार्यः पट्टिकाया विनिर्गमः ।

विनिर्गमो वेदिकाया विधातव्यः पङ्कगुलः ॥ १३० ॥

अङ्गुलद्वयनिष्क्रान्ता विधेया कण्ठपट्टिका ।

पद्माख्यानिर्गमं कुर्यादङ्गुलत्रितयं ततः ॥ १३१ ॥

अङ्गुलानि ततः पञ्च योनि + निर्गमो भवेत् ।

घण्टा त्विह विधातव्या सर्वालङ्कारभूषिता ॥ १३२ ॥

(भेदः)स्ततः स्याद् भवति भूमिका तस्य चोपरि ।

द्विती(याः)भूमिकाजङ्घा (सद्यः) स्यादष्टभिः स्तरैः ॥ १३३ ॥

मालाद्यैर्लशुनं चैकं भरणं कलशस्तथा ।

यथा माला तथोच्छालं वीरगण्डं स्तरं भवेत् ॥ १३४ ॥

उच्छालहीरके पङ्कसमे कुर्याद् विचक्षणः ।

पट्टिका भागिकोत्सेधा वासन्तं + + का तथा ॥ १३५ ॥

कपोतं त्रिस्तरोत्सेधं (छेदो) सत्र्यंशवर्जितम् ।

छेदस्यार्धे भवेन्मेढो मकरः पट्टिका तथा ॥ १३६ ॥

ततश्छेदं (च) कण्ठं च + + + पट्टिकां तथा ।

मालार्धेन प्रकुर्वीत छेदमेव ततो बुधः ॥ १३७ ॥

द्राविडप्रासादलक्षणं नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ।

पुनः कण्ठं प्रकुर्वीत हीरके(सोःण) समन्वितम् ।
 पट्टिका पद्मपूर्वा च त्रिभा(गोःगो)न कपोतके ॥ १३८ ॥
 कुर्याच्चतुःस्तरां घण्टां द्वाभ्यां कुम्भं तथोपरि ।
 पुनश्छेदो भवेद् भागं जङ्घां कुर्वीत सप्तभिः ॥ १३९ ॥
 (सीतमाठा?) विधातव्या मालो(च्यु?चो) द्विस्तरो भवेत् ।
 लशुनं भरणं कुम्भो गण्डश्चेति स्तरं स्तरम् ॥ १४० ॥
 गण्डद्विगुणमुच्छालं हीरपट्टस्तथैव च ।
 पट्टिका स्तरमेकं स्याद् वसन्तपट्टिकास्य च ॥ १४१ ॥
 पीठं द(श)गुणं कुर्याच्छेदमेण्ठौ स्तरं स्तरम् ।
 स्तरं कुर्वीत (रांकर?) (तथा) मकरपट्टिकाम् ॥ १४२ ॥
 स्तरं छेदं च कण्ठं च पट्टिकां वेदिकां तथा ।
 छेदं कुर्यात् पुनर्भागं कण्ठं तद्द्विगुणं ततः ॥ १४३ ॥
 पट्टिका स्तरमेकं स्याद् वसन्तपट्टिका स्तरम् ।
 चतुःस्तरा भवेद् घण्टा (प्राग्ग्राचकभूपिता?) ॥ १४४ ॥
 तस्योपरि पुनः कुम्भं घण्टार्धेनैव कारयेत् ।
 छेदं भागं विजानीयाज्जङ्घा सप्तांशिका स्मृता ॥ १४५ ॥
 माला द्विभागिका कार्या भागिकं लशुनं भवेत् ।
 भरणं कुम्भकं गण्डं कुर्याल्लशुनदद् बुधः ॥ १४६ ॥
 उच्छालं गण्डकं चैव हीरकान्तं च भागिकम् ।
 सार्धं भागं भवेत् ++ पट्टिकार्धं स्तरं भवेत् ॥ १४७ ॥
 ++ तं भागमेकं स्याद् वसन्ताख्या च पट्टिका ।
 कपोतं त्रिस्तरं कुर्यान्नासायुक्तं विचक्षणः ॥ १४८ ॥
 छेदमंशेन कुर्वीत (मण्डमंशेन?) कारयेन् ।
 मकरे पट्टिकां छेदं विदधीत स्तरं स्तरम् ॥ १४९ ॥
 कुर्वीत भागिकं (कण्ठं) पट्टिकां वेदिकामपि ।
 भागं कुर्यात् पुनश्छेदं ततः कण्ठं द्विभागिकम् ॥ १५० ॥

१. 'मकर' इति कण्ठः । २. 'मण्डमंशेन' इति कण्ठः । ३. 'मिदमं' इति स्यात् ।

पट्टिका पद्मपूर्वा च विधातव्या स्तरं स्तरम् ।

कुर्वीत घण्टामुपरि चतुर्भागां विचक्षणः ॥ १५१ ॥

तदर्धमूर्ध्वतः कुम्भं छेदमर्धेन तस्य च ।

जङ्घा पद्भागिका कार्या (मात्ता गेन मुन कारयेन?) ॥ १५२ ॥

लशुनं भरणं कुम्भं गण्डमुच्छाल(वाड?)के ।

हीरकं चेति कुर्वीत भागिकानि पृथक् पृथक् ॥ १५३ ॥

सार्धभागं भवेत् पट्टः पट्टिकार्धस्तरोच्छ्रिता ।

वसन्तं भागमेकं स्याद् वसन्ताख्या च पट्टिका ॥ १५४ ॥

कपोतं त्रिस्तरं कुर्याच्छेदं (त्र्यंशोनशंसकाम्?) ।

मण्डको मकरश्चैव पट्टिका छेदकण्ठकौ ॥ १५५ ॥

कण्ठं पट्टी च वेदी च छेदश्च स्यात् स्तरं स्तरम् ।

द्वितीयो द्विस्तरः कण्ठो भागिकी पट्टिका भवेत् ॥ १५६ ॥

तथैव पद्मसंज्ञा च स्यादुच्छ्रायेण पट्टिका ।

घण्टां कुर्याच्चतुर्भागां कुम्भमर्धेन तस्य च ॥ १५७ ॥

छेदमेकेन भागेन जङ्घाम+र्धभागिकीम् ।

माला(मे)केन भागेन लशुनं सार्धभागिकम् ॥ १५८ ॥

तथैव भरणं कुर्यात् कुम्भोच्छ्राले स्तरं स्तरम् ।

हीरकं भागिकं कुर्यात् पट्टं सार्धस्तरं ततः ॥ १५९ ॥

पट्टिकार्धस्तरं कार्या वसन्तं च स्तरं ततः ।

कपोतं द्विस्तरं कुर्याद् वेदीमर्धस्तरं तथा ॥ १६० ॥

यथा छेदस्तथा मण्डो मकरश्च विधीयते ।

पट्टिकार्धस्तरं कार्या छेदोऽप्यर्धस्तरं भवेत् ॥ १६१ ॥

भागं कण्ठः पट्टिका च वेदी कार्या द्विभागिकी ।

छेदो भागेन कर्तव्यः कण्ठश्चान्यद्विभागिकः ॥ १६२ ॥

पट्टिकां पद्मपत्रीं च विदधीत स्तरं स्तरम् ।

तुङ्गस्य चलनं कार्यं द्विभागिकमनन्तरम् ॥ १६३ ॥

द्राविडप्रासादलक्षणं नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ।
 टा कार्या समुत्सेधा(त्) त्रयस्त्रिंशद्विभागिकी ।
 सर्वतोभद्रसंयुक्ता चन्द्रशालाविभूषिता ॥ १६४ ॥
 कुर्वीत त्रिस्तरं पत्रं चित्रपत्रसमन्वितम् ।
 तस्योपरि (भवेत्) कुम्भश्चतुर्दशविभागिकः ॥ १६५ ॥
 ग्रीवा द्विभागिका कार्या कर्णश्चैव तथाविधः ।
 वीजपूरं ततः कार्यं (साःशो)भासंयुक्तमर्धतः ॥ १६६ ॥
 पद्मचक्रं त्रिशूलं वा विधातव्यं यथोचितम् ।
 प्रोत्तुङ्गप्राससंयुक्तं ++ मकरमेढकैः ॥ १६७ ॥
 सोत्तुङ्गकूटके कुर्यादेवं दिक्षु विदिक्षु च ।
 भूमौ भूमौ विधातव्या शाला साध्यलतोरणम् (?) ॥ १६८ ॥
 कोणे कोणे च (१+करा) भद्रे करि(क्यःक)रानपि ।
 ++ कूटैस्त्रिभिर्युक्तं चतुर्भिश्च जलान्तरैः ॥ १६९ ॥
 कुर्वीत सर्वतोभद्रमेवंलक्षणलक्षितम् ।
 एवं पद्मो महापद्मः स्वस्तिको वर्धमानकः ॥ १७० ॥
 सर्वतोभद्र इत्यते समारभ्यैकभूमिकान् ।
 पञ्चभूमिकपर्यन्तं कार्याः साधारणक्रियाः ॥ १७१ ॥
 एतैर्विंशतिभागैश्च प्रासादाः पूर्वमूचिताः ।
 पीठदारभ्य घटान्तं पञ्चैते लक्षणान्विताः ॥ १७२ ॥
 पद्भूमिकादि(कोःकं) ब्रूमो यावद् द्वादशभूमिकम् ।
 पञ्चभूमिकः ॥
 अथ पद्भूमिकान्तं त्रिंशद्धस्तं प्रचक्ष्महे ॥ १७३ ॥
 चत्वारिंशत्कराः सैकास्तस्योच्छ्रायो विधीयते ।
 पीठं प्रकल्पयेत् तस्य सार्धहस्तद्वयोच्छ्रितम् ॥ १७४ ॥
 जल्प्या समुच्छ्राये कार्या सार्धहस्तचतुष्टयम् ।
 जूटप्रस्तारमस्याहुः (सोःसा)र्धहस्तोच्छ्रितं बुधाः ॥ १७५ ॥

जङ्घा द्वितीया तु भवेत् तस्य हस्तचतुष्टयम् ।
 द्वितीयकूटस्योत्सेधं सार्धहस्तं प्रकल्पयेत् ॥ १७६ ॥
 घण्टा तृतीया चतुरो हस्तास्तार्धाद्विवजिता(?) ।
 तृतीयकूटप्रस्तारं कुर्याद् भूयोऽपि पूर्ववत् ॥ १७७ ॥
 जङ्घा भवेच्चतुर्थी+(स सार्धां त्रे?) करत्रयम् ।
 पूर्वमानेन कुर्यात् कूटप्रस्तारमूर्ध्वतः ॥ १७८ ॥
 हस्तत्रयं विधातव्या जङ्घोच्छ्रायेण पञ्चमी ।
 कूटप्रस्तारकं कुर्यात् सार्धहस्तोच्छ्रितं ततः ॥ १७९ ॥
 प(ष्ट)िष्ठी हस्तत्रयं जङ्घा पादहीनं विधीयते ।
 प्राग्यन् प्रस्तारकूटं तु कपोतं त्रिकरोच्छ्रितम् ॥ १८० ॥
 तस्योपरि भवेद् घण्टा हस्तपञ्चकमुच्छ्रिता ।
 कर्तव्यं पद्ममुपरि सुविचित्रं षडङ्गुलम् ॥ १८१ ॥
 कुर्याद् भार्गवकविशत्या कुम्भमा(द्धरणैतम्?भरणैर्युतम्) ।
 षड्भूमिकोऽयमाख्यातः कथ्यते सप्तभूमिकः ॥ १८२ ॥
 षड्भूमिकः
 पञ्चत्रिंशत्करः श्रोक्तो विस्तारान् स(प्त)भूमिकः ।
 सार्धैकैकान्नपञ्चाशत्कर्णं नित्योच्छ्रिता करान्(?) ॥ १८३ ॥
 त्रिद्वन्द्वं पीठभुजोधाजङ्घा पञ्चकरोच्छ्रिता ।
 सार्धैकैकान्नोच्छ्रितः कूटप्रस्तागो(ऽस्य) विधीयते ॥ १८४ ॥
 त्रिद्वन्द्वं वेदिकाधन्यां जङ्घोच्छ्रायधनुष्करः ।
 सार्धैकैकान्नमूर्ध्वतः कूटविश्र, प्लाग इत्येत ॥ १८५ ॥
 सार्धैकैकान्नोच्छ्रिता वेदी जङ्घा सार्धैकैकान्नमूर्ध्वतः ।
 सार्धैकैकान्नोच्छ्रितः कूटविश्र, प्लागः षड्भूमिकान्तः ॥ १८६ ॥
 सप्तद्वन्द्वं वेदी सप्तद्वन्द्वं (विश्र, प्लाग) कल्पयेत् ।
 सप्तद्वन्द्वं वेदी सप्तद्वन्द्वं (विश्र, प्लाग) कल्पयेत् ॥ १८७ ॥
 सप्तद्वन्द्वं वेदी सप्तद्वन्द्वं (विश्र, प्लाग) कल्पयेत् ।
 सप्तद्वन्द्वं वेदी सप्तद्वन्द्वं (विश्र, प्लाग) कल्पयेत् ॥ १८८ ॥



विलोमेनै(कःप) कथितः प्रासादो नवभूमिकः ।

नवभूमिकः ॥

इदानीमभिधास्यामः प्रासादं दशभूमिकम् ॥ २०० ॥

एकोनाशीतिरुत्सेधः सपादा विस्वृतिः पुनः ।

षट्पञ्चाशत्कराः कर्णमानाद् त्रूमोऽथ भागशः ॥ २०१ ॥

एकादशकरोत्सेधा कार्या प्रथमभूमिका ।

सार्धान् दश द्वितीया स्यात् तृतीया तु करान् दश ॥ २०२ ॥

सार्धानष्टौ चतुर्थी तु सप्त(सार्धस्वर्धास्तु) पञ्चमी ।

षष्ठी सप्तकरा प्रोक्ता सप्तमी षट्करा भवेत् ॥ २०३ ॥

पञ्चहस्ताष्टमी ज्ञेया नवमी तु चतुष्करा ।

त्रिहस्ता दशमी कार्या वेदी सांशं करद्वयम् ॥ २०४ ॥

++++ प्रमाणेन सार्धं करचतुष्टयम् ।

एवमेव समुद्दिष्टो विन्यासो दशभूमिके ॥ २०५ ॥

दशभूमिकः प्रासादः ॥

त्रूमः (समासादभीयै!)कादशभूमिकम् ।

पञ्चपष्टिकरः कार्यां द्विनवत्युच्छ्रित(थ) सः ॥ २०६ ॥

कर्णमानेन विज्ञेयः प्रासादः शास्त्रवेदिभिः ।

प्रथमा भूमिका तस्य चतुर्दशकरा भवेत् ॥ २०७ ॥

द्वितीया द्वादशार्धं च तृतीयैकादशोच्छ्रिता ।

नव सार्धाथतुर्थी स्यात् सपादानष्ट पञ्चमी ॥ २०८ ॥

सप्तहस्ता भवेत् षष्ठी षड्हस्ता सप्तमी ततः ।

पञ्चहस्ताष्टमी सार्धाथतुरो नवमी करान् ॥ २०९ ॥

चतुर्हस्ता तु दशमी सार्धमेकादशी त्रयम् ।

सपादद्विकरा वेदी षण्ठा सार्धचतुष्क(सा?रा) ॥ २१० ॥

प्रासादः कथितः सम्यगित्येकादशभूमिकः ।

एकादशभूमिकः ॥

त्रूमो द्वादशमीं स सप्तपष्टिकरायतः ॥ २११ ॥

4

विलोमेनै(कःप) कथितः प्रासादो नवभूमिकः ।

नवभूमिकः ॥

इदानीमभिधास्यामः प्रासादं दशभूमिकम् ॥ २०० ॥

एकोनाशीतिरुत्सेधः सपादा विस्वृतिः पुनः ।

षट्पञ्चाशत्कराः कर्णमानाद् त्रूमोऽथ भागशः ॥ २०१ ॥

एकादशकरोत्सेधा कार्या प्रथमभूमिका ।

सार्धान् दश द्वितीया स्यात् तृतीया तु करान् दश ॥ २०२ ॥

सार्धानष्टौ चतुर्थी तु सप्त(सार्धस्वर्धास्तु) पञ्चमी ।

षष्ठी सप्तकरा प्रोक्ता सप्तमी षट्करा भवेत् ॥ २०३ ॥

पञ्चहस्ताष्टमी ज्ञेया नवमी तु चतुष्करा ।

त्रिहस्ता दशमी कार्या वेदी सांशं करद्वयम् ॥ २०४ ॥

++++ प्रमाणेन सार्धं करचतुष्टयम् ।

एवमेव समुद्दिष्टो विन्यासो दशभूमिके ॥ २०५ ॥

दशभूमिकः प्रासादः ॥

त्रूमः (समासादभीथैः)कादशभूमिकम् ।

पञ्चपष्टिकरः कार्या द्विनवत्युच्छ्रित(थ) सः ॥ २०६ ॥

कर्णमानेन विज्ञेयः प्रासादः शास्त्रवेदिभिः ।

प्रथमा भूमिका तस्य चतुर्दशकरा भवेत् ॥ २०७ ॥

द्वितीया द्वादशार्थं च तृतीयैकादशोच्छ्रिता ।

नव सार्धाथतुर्थी स्यात् सपादानष्ट पञ्चमी ॥ २०८ ॥

सप्तहस्ता भवेत् षष्ठी षड्हस्ता सप्तमी ततः ।

पञ्चहस्ताष्टमी सार्धाथतुरो नवमी करान् ॥ २०९ ॥

चतुर्हस्ता तु दशमी सार्धमेकादशी त्रयम् ।

सपादद्विकरा वेदी घण्टा सार्धचतुष्क(साःरा) ॥ २१० ॥

प्रासादः कथितः सम्यगित्येकादशभूमिकः ।

एकादशभूमिकः ॥

त्रूमो द्वादशभूमिं स सप्तपष्टिकरायतः ॥ २११ ॥



9
10
11
12
13
14
15
16
17
18
19
20
21
22
23
24
25
26
27
28
29
30
31
32
33
34
35
36
37
38
39
40
41
42
43
44
45
46
47
48
49
50
51
52
53
54
55
56
57
58
59
60
61
62
63
64
65
66
67
68
69
70
71
72
73
74
75
76
77
78
79
80
81
82
83
84
85
86
87
88
89
90
91
92
93
94
95
96
97
98
99
100

अथ मेर्वादिविंशिकानागरप्रासादलक्षणं नाम त्रिपष्टितमोऽध्यायः ।

—:०:—

अधुना नागरान् वृषः प्रासादान् नामलक्षणैः ।

मेरुमन्दरकैलासाः कुम्भोऽथ मृगराड् गजः ॥ १ ॥

विमानच्छन्दसंज्ञश्च चतुरश्रस्तथापरः ।

अष्टाश्रिः षोडशाश्रिश्च वर्तुलः सर्व(तोद्?भद्र)कः ॥ २ ॥

सिंहास्यो नन्दनो नन्दिवर्ध(मा?)नो हंसको वृषः ।

(गुरुत्सा?गरुडः) पञ्चकाख्यश्च समुद्र इति विंशतिः ॥ ३ ॥

नागराणामिति प्रोक्ता प्रासादानां समासतः ।

शत(मुद्र?)श्चतुर्द्वारः षोडशक्षितिरूर्ध्व(तः) ॥ ४ ॥

विचित्रशिखराकीर्णो मेरुः प्रासाद उच्यते ।

मन्दरो द्वादशतलः कैलासो नवभूमिकः ॥ ५ ॥

अनेकशिखरश्चित्रश्चतुर्द्वारो महोच्छ्रितः ।

विमानच्छन्दकस्त्वष्टभूमिकः परिकीर्तितः ॥ ६ ॥

विंशत्यण्डकसंयुक्तः सप्तभूर्नन्दिवर्धनः ।

पङ्भूमिर्नन्दनः कार्यः प्रासादः षोडशाण्डकः ॥ ७ ॥

पञ्चभूः सर्वतोभद्रो भद्रशालाविभूषितः ।

अनेकशिखराकीर्णः कर्तव्यः प्रचुराण्डकः ॥ ८ ॥

बलभिच्छन्दकः कार्यो देवतानां (ए?)ष्टपः सदा ।

ष्टपस्तु स्वोच्छ्रितेस्तुल्यः सर्वतः स्वस्ति वर्तितः ॥ ९ ॥

मण्डलं (?) स तु विज्ञेय एकाण्डकविभूषितः ।

सिंहः सिंहाकृतिर्ज्ञेयो गजो गजसमाकृतिः ॥ १० ॥

कुम्भः कुम्भाकृतिस्तद्वद् भूमिकानवकोच्छ्रितः ।

अञ्जलीपुटसंस्थानः पञ्चाण्डकविभूषितः ॥ ११ ॥

मेर्वादिर्विशिकानागरप्रासादलक्षणं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः । १७१

षोडशाश्रिः समन्ताच्च विज्ञेयः स समुद्रकः ।
पार्श्वयोश्चन्द्रशाला च उच्छ्रयात् स द्विभूमिकः ॥ १२ ॥
तथाष्टाश्रिः पद्मनिभो भूमिकात्रयमुच्छ्रितः ।
षोडशाश्रिः स विज्ञेयो विचित्रशिखरः शुभः ॥ १३ ॥
मृगराजस्तु विख्यातश्चन्द्रशालाविभूषितः ।
प्राग्ग्रीवेण विशालेन भूमिका(स यदुःसु य उ)च्छ्रितः ॥ १४ ॥
अनेकचन्द्रशालस्तु गजः प्रासाद उच्यते ।
पर्यस्तो मृगराजस्तु गरुडो नाम नामतः ॥ १५ ॥
सप्तभूम्युच्छ्रितस्तद्वचन्द्रशालात्रयान्वितः ।
अश्रिभिः(विंहरं तस्य?) पद्भिर्युक्तः समन्ततः ॥ १६ ॥
स्यादन्यो गरुडस्तद्वदुच्छ्रयाये दशभूमिकः ।
पद्मकः षोडशाश्रिः स्याद् भूमिकाद्वितयाधिकः ॥ १७ ॥
पद्मतुल्यप्राणन(?)त्रावृक्षश्चतुरश्रकः ।
पञ्चाण्ड(मेःए)कभूमिस्तु गर्भ(र्भो) हस्तचतुष्टयम् ॥ १८ ॥
दृषो भवति ना(त्रायं?)प्रासादः सर्वकामिकः ।
सप्तकापञ्चकाभूमिप्रासादो(?)य इहोदिताः ॥ १९ ॥
(हिंस्य?)ते समा ज्ञेया ये चान्ये तत्प्रमाणकाः ।
विचित्रशिखराः कार्याश्चन्द्रशालाविभूषिताः ॥ २० ॥
सर्वे प्राग्ग्रीवसंयुक्ताः कर्तव्यास्तोरणान्विताः ।
ऐष्टिका दारवा यद्वा शैलजा वाजनाकुलाः ॥ २१ ॥
स्यात् पञ्चाशत्करान्मेरुसूत्रलिङ्गं नवोदयान् (?) ।
गर्भास्तु द्विगुणा लिङ्गाद् भिन्नयः स्वुश्चतुष्कराः ॥ २२ ॥
अन्धारिका हस्तपदकं विधातव्या समन्ततः ।
अन्धारिकां च कुर्वीत वाहाभित्तिं विचक्षणः ॥ २३ ॥
अयं साधारकः प्रोक्तो मेरुः सर्वगुणान्वितः ।
प्रासादानां तथान्येषां गर्भो (लिङ्गद्विसंगुणः?) ॥ २४ ॥

प्रासादगर्भमुत्सृष्टं यच्छेषं तेन कल्पयेत् ।
 सहान्वारिक्रिया स(र्वा?र्व) सनभागेन पूर्ववत् ॥ २५ ॥
 मे(वा/र्वा)या ये विमानान्ताः (मे+?) पूर्वं प्रकीर्तिताः ।
 शस्तास्ते (मृज्यः)न्निदानामन्येषां तु भयात् (इम्/हाः) ॥ २६ ॥
 वाट्टक्षमुख्या ये तूक्ता नन्दिवर्धनपथिमाः ।
 (तष्टो/तेऽष्टो) शुभा मध्यमानामन्येषां दुःखदाः स्मृताः ॥ २७ ॥
 हंसादयः समुद्रान्ताः पञ्च ये समुद्राहनाः ।
 प्रशस्तास्ते समुद्रिष्टा निदानां (विधीयसाः) ॥ २८ ॥
 मन्दरस्तु करान् कार्यशत्वार्तिशतु + + + ।
 + + + + + लामो विमानोपरोष्टिताः (?) ॥ २९ ॥
 हस्तद्वात्रिंशता कार्यः प्रासादो नन्दिवर्धनः ।
 हस्तास्तु नन्दनत्रिंशत् सर्वतोभद्र एव च ॥ ३० ॥
 अष्टाविंशतिमष्टा(भिः/थिः) षोडशा(थि)स्त्रिभिर्विना ।
 वर्तुलः पञ्चकः श्वेतो विमानच्छन्द एव च ॥ ३१ ॥
 एते द्वादशहस्ताः + कार्या विंशतिहस्तकौ (?) ।
 गजः सिंहश्च कुम्भश्च वज्रभीच्छन्द(क)स्तथा ॥ ३२ ॥
 चत्वार एते तुल्याः स्युर्हस्तेन्मेडसमानतः (?) ।
 वाट्टक्षो मृगराजश्च विमानच्छन्द एव च ॥ ३३ ॥
 एते द्वादशहस्ताः(स्युः) प्रमाणेन पृथक् पृथक् ।
 दशहस्तो भवेद् वा स गरु(ते/डोऽ)ष्टकरः स्मृतः ॥ ३४ ॥
 एतैः प्रमाणैः प्रासादा(न्) कुर्यादित्यपरे स्थिताः ।
 एकहस्ता द्विहस्ताश्च (त्रि/हस्ता ये च कीर्तिताः ॥ ३५ ॥
 यक्षनागग्रहादीनां विधेया रक्षसां च ते ।
 विधिरेष समुद्रिष्टः प्रासादानां समासतः ॥ ३६ ॥
 विशेषेण पुनर्नृपो विमानं शुद्धपुष्पकम् ।
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे पञ्चत्रिंशद्विभाजिते ॥ ३७ ॥

रथिका पञ्चभागा स्याद् द्विभागं सलिलान्तरम् ।
(कूट?)त्रिभागं पञ्जरं कुर्यात् प्राग्ग्रीवकविभूपितम् ॥ ३८ ॥

जलान्तरं द्वितीयं तु तदपि स्याद् द्विभागिकम् ।
शलैकादशभागा तु पूर्ववत् सलिलान्तरम् ॥ ३९ ॥

त्रिभागं पञ्जरं कुर्याद् द्विभागं सलिलान्तरम् ।
कूटं पञ्चकरं प्रान्ते दिक्षु सर्वास्वयं विधिः ॥ ४० ॥

नागरोऽयं तलच्छन्दः प्रासादे शुद्धपुष्पके ।
जङ्घा सपीठा क्षेत्रार्धविस्तारसदृशोदया ॥ ४१ ॥

साधैर्द्वितीया दशभिस्तृतीया नवभिः करैः ।
अष्टहस्ता चतुर्थी स्यात् सप्तहस्ता तु पञ्चमी ॥ ४२ ॥

पष्ठी तु भूमिका कार्या प्रमाणेनास्य पद्करा ।
सप्तमी पञ्चहस्ता तु (चतु)र्हस्ता ततोऽष्टमी ॥ ४३ ॥

त्रिहस्तं वेदिकावन्धं विचित्रं कारयेद् बुधः ।
विस्ताराद् द्विगुणोच्छ्रायः स्कन्धोऽयं (वेदिकावन्ध?) ॥ ४४ ॥

स्कन्धाद्धूर्ध्वं भवेद् घण्टा यदि त्रामलसारकम् ।
तद् वर्तुलं शुभं कार्यं घण्टा स्कन्धार्धमुच्छ्रिता ॥ ४५ ॥

घण्टाविस्तार(तः) कुम्भं चतुर्थांशेन कारयेत् ।
प्रमाणं समुदायेन भूमिकानामुदाह(ता?)तम् ॥ ४६ ॥

एकैक(स्या?)स्य)विशेषेण प्रविविच्याधुनोच्यते ।
प्रमाणेन विधातव्या (खकारा?)भूमिरङ्गिका ॥ ४७ ॥

(यं हस्तं तु?) खुरकं द्विभागा पञ्चपत्रिका ।
भागिका (कणकयास्त्र्यंश?) कुमुदं छेद एव च ॥ ४८ ॥

त्र्यंशस्तद्द्विगुणः कण्ठः किङ्किणीपट्टवान्वितः ।
तस्यार्धं पट्टिका कार्या तत्समा गिरिपत्रिका ॥ ४९ ॥

(भात्र्यंशावरण्डीतमध्ये पच्छीतलार्धभागिकी?) ।
पूर्वप्रोक्तेन कण्ठेन समसूत्रा च सा भवेत् ॥ ५० ॥

छेदं तदूर्ध्वं कुर्वीत स्तरमेकं विचक्षणः ।

पुनः कण्ठः प्रदातव्यो भागद्वितयसम्मितः ॥ ५१ ॥

पट्टिका स्तरमेकं तु तत्समा गिरिपत्रिका ।

चतुर्गुणाथ त्रिगुणा कार्या(विश्रुति)लक्ष्मणासिका ॥ ५२ ॥

स्तम्भद्वितयमध्ये तु पञ्चालयं कर्म कारयेत् ।

शोभनं तत्तु कर्तव्यं युक्तं तिलकना(मःस)या ॥ ५३ ॥

पुनश्छेदः प्रदातव्यः पूर्वमानेन धीमता ।

जड्या सप्तस्तरा मेढा वरण्डी त्रिस्तरोर्ध्वतः ॥ ५४ ॥

भवेदधस्ताज्जङ्घायास्त्रिस्तर(स्तरलः)कुम्भकः ।

घण्टा(पःम)ष्टपसंयुक्ता माला स्यात् (पञ्चरात्) ततः ॥ ५५ ॥

अर्धेन तस्या लशुनं स्तरेण भरणं भवेत् ।

कुर्वीत द्विस्तरं कुम्भं गण्डमेकस्तरं ततः ॥ ५६ ॥

उच्छालं द्विस्तरं कुर्याद् वीरगण्डं ततः स्तरम् ।

द्विस्तरः स्यात् ततः (पट्टः) पट्टस्यार्धेन पट्टिका ॥ ५७ ॥

तत्समा गिरिपत्री च वरण्डी त्रिस्तरा ततः ।

स्तम्भस्योर्ध्वं विधातव्या मनोज्ञा (व्यःत्र्य)र्धपादिका ॥ ५८ ॥

स्तरमेकं ततश्छेदस्ततः कण्ठः स्तरत्रयम् ।

पट्टिका स्तरमेकं स्यात् तत्समा गिरिपत्रिका ॥ ५९ ॥

वरण्डीं त्रिस्तरां कुर्यादध्रप्र(सःस्त)रसंयुतम् ।

पुनश्छेदः स्तरं कार्यः कण्ठस्तेन समस्ततः ॥ ६० ॥

तत्समा गिरिपत्री च त्र्यंशमामलमारकम् ।

ततश्छेदं च कण्ठं च गिरिपत्रीं वरण्डीकाम् ॥ ६१ ॥

पूर्वमानेन कुर्वीत छेदकस्ये तथा पुनः ।

गिरिपत्रीं स्तरं कुर्यात् (त्र्यंशच्छयमंस्ततः?) ॥ ६२ ॥

छेदं कण्ठं पत्रिकां च (मास्तरमेकं ततश्छेदकं कुर्यात् पुनर्धुयः)

वरण्डीं त्रिस्तरां कुर्यादध्रप्रस्तरसंयुतम् ॥ ६३ ॥

छेदं कण्ठं च पीठं च (प्राग्भवामलसारकण्ठं कुर्यात् तथापरम्?) ।

पूर्ववद् गिरिपत्रीं च द्विस्तरां वेदिकां ततः ॥ ६४ ॥

छेदं कुर्यात् तदर्धं च ततः कण्ठं स्तरद्वयम् ।

गिरिपत्रीं ततः कुर्यात् स्तरमेकं सुशोभनाम् ॥ ६५ ॥

चतुरश्रप्रमाणं च कुर्यादामलसारकम् ।

पद्मपत्रं तु तस्यार्धमुपरिष्ठात् प्रकल्पयेत् ॥ ६६ ॥

चतुःस्तरो भवेत् कुम्भः स्तरं कण्ठस्ततो भवेत् ।

स्तरमेकं ततः कर्णो द्विस्तरं बीजपूरकम् ॥ ६७ ॥

चतुर्भिः कूटविस्तरं ततो (भागे विराजयेत्?) ।

द्विभागं मञ्जरी कार्या (स्तःशू)रसेनैरलङ्कृता ॥ ६८ ॥

वरण्डिकाख्यो बन्धश्च भागं भागं (भागं?) भवेत् ततः ।

विस्ता(रं?राद्) मूलमञ्जर्याः शुकनासां प्रकल्पयेत् ॥ ६९ ॥

अथ निर्णयते द्व्यर्धपादाख्यं तत्र विस्तृतिः ।

उच्छ्रायाद् द्विगुणा कार्या पञ्चभागक्रमोऽथवा ॥ ७० ॥

शूरसेनोऽथवा कार्यः शु(क)नासास्त्रि(वेधे)त्यसौ ।

कृत्वा त्रिभागमुच्छ्रायं (चःम)करं चोर्ध्वभागिकम् ॥ ७१ ॥

स्तम्भयुक्तं गुणद्वारं (स्योतस्योधिः संप्रताम्?) ।

अर्धप्र(शः?)स्तरसंयुक्तं कुर्यात् + पार्श्वयोर्द्वयोः ॥ ७२ ॥

कर्तव्यं गर्भकूटं वा शुभं तत्र विपश्चिता ।

द्वितीयभूमिकायां तु पीठं सा(स्तः?)र्धदशस्तरम् ॥ ७३ ॥

(मेलान्ततोवती?) जङ्घा माला कार्या चतुःस्तरा ।

लशुनं द्विस्तरं प्रोक्तं स्तरं भरणमिष्यते ॥ ७४ ॥

कुम्भं(?) तद्वत् प्रकर्तव्यमुच्छालं द्विगुणान्वि(तः?)तम्) ।

गण्डकः स्तरमेकं स्यात् ततः षट् स्तरद्वयम् ॥ ७५ ॥

अर्धेन पट्टिका कार्या तथैव गिरिपत्रिका ।

(सू?)स्तरत्रयं वरण्डी स्याच्छूरसेनैरलङ्कृता ॥ ७६ ॥

स्तरमेकं भवेच्छेदस्ततः कण्ठः स्तरद्वयम् ।
 पट्टिका भागमेकं च तत्समं गिरिपत्रिका ॥ ७७ ॥
 त्रिभागं शिखरं कुर्याच्छेदं मे(रुः?)तु भागिकम् ।
 एकं कण्ठं प्रकुर्वीत (पथिकां गिस्तरं?) विदुः ॥ ७८ ॥
 स्तरमेकं भवेत् कण्ठः पट्टिकापि च तत्समा ।
 गिरिपत्रीं च कुर्वीत भागार्थेन विचक्षणः ॥ ७९ ॥
 (द्वाः?)धर्पादिकया युक्ता त्रिस्तरा स्याद् वरण्डिका ।
 छेदं कण्ठं च कुर्वीत पूर्वमानेन बुद्धिमान् ॥ ८० ॥
 पट्टिका गिरिपत्री च भागं भागं विधीयते ।
 द्विस्तरं शिखरं कुर्यात् (तथा) छेदं तु भागिकम् ॥ ८१ ॥
 एवं कण्ठं प्रकुर्वीत + + + + + पट्टिकाम् ।
 वरण्डिका (द्विभास्योदकारेण?) समन्विता ॥ ८२ ॥
 छेदं कण्ठं च पत्री च गिरिवर्ती त्रिभागिका(?) ।
 प्राग्बद् (विरिहिर?)कुर्याद् यथाशोभं प्र + + + ॥ ८३ ॥
 चतुर्थी भूमिका चोर्ध्वं कर्तव्या लक्षणान्विता ।
 त्रयोदशस्तरं पीठं मध्यजङ्घा च तत्समा ॥ ८४ ॥
 चतुःस्तरा भवेन्माला तदर्थं लशुनं ततः ।
 कुम्भं तेन समं (कार्यमुः?)कुर्याद्दुच्छालं द्विस्तरं भवेत् ॥ ८५ ॥
 तस्यार्थं गण्डकं कुर्यात् पट्टं तद्द्विगुणं ततः ।
 पट्टिका गिरिपत्री च विधातव्ये स्तरं स्तरम् ॥ ८६ ॥
 वरण्डी त्रिस्तरा कार्या छेदमेकस्तरं विदुः ।
 कुर्वीत द्विस्तरं कण्ठं तदर्थेन तु पट्टिकाम् ॥ ८७ ॥
 तत्समां गिरिपत्रीं द्वौ स्तरौ (खिरिहिरं?) ततः ।
 छेदः कण्ठः पट्टिका च गिरिपत्रीति भागिकाः ॥ ८८ ॥
 वरण्डी द्विस्तरा कार्या ततश्छेदः स्तरं भवेत् ।
 कण्ठश्च पत्रिका चेति गिरिपत्रीति भागिकाः ॥ ८९ ॥

१. 'पथिकां त्रिस्तरं' इति स्यात् । २. 'छेदः कण्ठश्च पत्री च गिरि
 भागिकाः' इति स्यात् ।

(प्राग्ब्रकाशिखिरिहिरं) कुर्याच्छेदं पूर्वक्रमेण च ।
द्विस्तरा तिलनासा (तु) विधातव्या विपश्चिता ॥ ९० ॥
कुर्वीत भागिकं छेदं ततः क(ण्टा?ण्ठं) द्विभागि(की?कम्) ।
पट्टिकां भागमेकं च तत्समां गिरिपत्रिकाम् ॥ ९१ ॥
घण्टा सप्तस्तरा प्रोक्ता पञ्च द्विस्तरमुच्यते ।
द्विगुणः कलशस्तस्यां छेदं पूर्ववदाचरेत् ॥ ९२ ॥
ऊर्ध्वं स्यात् पञ्चमी भूमिः पीठमेकादशस्त(तः?र)म् ।
तद्व(न्मेहा?) भवेज्जङ्घा माला च त्रिस्तरा ततः ॥ ९३ ॥
सार्धस्तरं स्याल्लग्नं स्तरेण भरणं भवेत् ।
कुम्भं गण्डकसंयुक्तं कुर्यात् सार्धस्तरं बुधः ॥ ९४ ॥
उच्छालं द्विस्तरं प्रोक्तं स्तरं गण्डो विधीयते ।
द्विस्तरः स्यात् (तरः?) पट्टः पट्टस्यार्धेन पट्टिका ॥ ९५ ॥
तत्समा गिरिपत्री च त्रिस्तरा तु वरण्डिका ।
स्तरमेकं भवेच्छेदः कण्ठस्तद्द्विगुणस्ततः ॥ ९६ ॥
तदर्थं पट्टिका कार्या तथैव गिरिपत्रिका ।
स्तर(कं?)द्वयं विरिहिरं तदर्थं छेदमाचरेत् ॥ ९७ ॥
एवं कण्ठः पट्टिका च स्यात् तथा गिरिपत्रिका ।
द्वौ स्तरौ तिलनासा स्याच्छेदः सार्धक(रो?रा)यतः ॥ ९८ ॥
कण्ठं तद्द्विगुणं कुर्याद् भागेनैकेन पट्टिकाम् ।
तत्समा गिरिपत्री स्याद् घण्टा पञ्चस्तरा भवेत् ॥ ९९ ॥
कुर्वीत द्विस्तरं पञ्च शेषं पूर्वक्रमात् ततः ।
ततो भूमिर्भवेत् पष्ठी पीठं तत्राभिधीयते ॥ १०० ॥
द्विस्तरा भूमिरक्षा स्या(तुंलः?)खुरकस्ततः ।
छेदो भवेत् तदर्धेन ततः कण्ठः स्तरद्वयम् ॥ १०१ ॥
पट्टिका भागमेकं स्याद् भागं च गिरिपत्रिका ।
परष्ठीं द्विस्तरां कुर्यात् तदर्थं छेदमादिशेत् ॥ १०२ ॥

१. 'प्राग्ब्र' धिरीहिरं' इति स्यात् । २. 'न्मेहा' इति स्यात् । ३. 'चतुल्लः' इति स्यात् ।

द्वादशां(श)मि(दं?तं) पीठं जङ्घा (मादा?) तदधेतः ।
 माला तु द्विस्तरा प्रोक्ता लशुनं तत्समं भवेत् ॥ १०३ ॥
 भरणं स्तरमेकं तु द्विभागः कलशो भवेत् ॥ ।
 उच्छालकं च तत्तुल्यं गण्डो भागं विधीयते ॥ १०४ ॥
 कुर्वीत द्विस्तरं पट्टं भागेनैकंन पट्टिकाम् ।
 पूर्ववद् गिरिपत्रीं + + स्तरां तु वरण्डिकाम् ॥ १०५ ॥
 स्तरमेकं भवेच्छेदः कण्ठस्तद्द्विगुणस्ततः ।
 पूर्ववत् पत्रिके द्वे तु द्वयंशं खिरिहिरं भवेत् ॥ १०६ ॥
 छेदः कण्ठः पट्टिका च गिरिपत्रीति भागिकाः ।
 द्विस्तरा तिलनासा स्याच्छेदः कार्यस्तु भागिकः ॥ १०७ ॥
 द्विस्तरः स्यात् ततः कण्ठो भागिका कण्ठपट्टिका ।
 भागिकी गिरिपत्री च विधातव्या ततः परम् ॥ १०८ ॥
 पञ्चस्तरा(न्) त्रिभागोना(न्) कुर्यादामलसारकम् ।
 त्रिस्तरं स्यात् ततः + + शेषं पूर्वक्रमाद् भवेत् ॥ १०९ ॥
 पञ्चम्यां भूमिकायां तु पीठं स्याद् द्वादशस्तरम् ।
 जङ्घा पञ्चस्तरा मेडा माला च स्याद् द्विभागिकी ॥ ११० ॥
 अर्धस्तरेण लशुनं स्तरेण भ(रं?रणं) भवेत् ।
 कुम्भं गण्डेन सहितं स्तरं कुर्याद् विचक्षणः ॥ १११ ॥
 उच्छालं द्विस्तरं कुर्याद् गण्डो भागं विधीयते ।
 पट्टः सार्धस्तरः कार्यः पट्टिका तु स्तरं भवेत् ॥ ११२ ॥
 तत्समा गिरिपत्री च त्रिस्तरा तु वरण्डिका ।
 छेदो भागत्रिभोगं कण्ठस्यार्धे गुणस्ततः(?) ॥ ११३ ॥
 पत्रिके द्वे तु भागिक्यौ + स्तरा तिलनासिका ।
 अर्धप्रस्तारयुक्तसौ कार्याथ प्रस्तारान्विता ॥ ११४ ॥
 छेदं भागेन कुर्वीत कण्ठं तद्द्विगुणं ततः ।
 (अर्धप्रस्तरं?) पूर्ववत् पत्रिके द्वे तु घण्टा स्तरचतुष्टयम् ॥ ११५ ॥

+ + का गर्भपादैः षड् भित्तयः स्युर्द्विभागिकाः ।
 (वर्धमानेनमथ त्रूमोः) विस्ताराद् द्विगुणं हि तत् ॥ ८ ॥
 द्वौ भागौ वेदिकावन्धो जङ्घा ज्ञेया चतुष्पदा ।
 (शान्तापत्राः) कपोताली सार्धभागं समुच्छ्रिता ॥ ९ ॥
 सार्धभागसमुच्छ्राया कार्या प्रथमभूमिका ।
 द्वितीया भूमिका ज्ञेया सार्धभागत्रयोदया ॥ १० ॥
 तृतीया च विधेया स्यात् सार्धभागद्वयोच्छ्रिता ।
 उच्छ्रालकं च जङ्घा च भूमिकार्धं विधीयते ॥ ११ ॥
 कूटं (तैः) चार्धतो देयं कर्मशोभासमन्वितम् ।
 घण्टा भागत्रयोत्सेधा बहुभिश्चाश्रिभिर्युता ॥ १२ ॥
 कलशं स्थापयेदूर्ध्वं भागद्वयसमुच्छ्रितम् ।
 वीजपूरकसंयुक्तं वर्तुलं पल्लवावृतम् ॥ १३ ॥
 शिखरार्धस्य कुर्वीत सपादमुदयं तथा ।
 इमं दिग्भद्रसंज्ञं यः प्रासादं कारयेत् पुमान् ॥ १४ ॥
 शतक्रतुफलं सोऽपि लभते नात्र संशयः ।
 लक्ष्म श्रीवत्ससंज्ञस्य प्रासादस्याभिधीयते ॥ १५ ॥
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे भक्ते पञ्चदशांशकैः ।
 (अस्योच्छ्रायो सकास्त्र्यंशस्त्रं क्षोणस्यादंशकैस्त्रिभिः) ॥ १६ ॥
 कर्णशालान्तरे कार्यौ द्वयंशौ प्रतिरथावुभौ ।
 (तयोरुभयोः सार्धं सादं तु माग्नौ निवेशयेत्) ॥ १७ ॥
 भागमेकं प्रविष्टौ च शाला भागत्रयात्मिका ।
 निर्गमः स्यात् पदार्धेन गर्भस्तु नवभागिकः ॥ १८ ॥
 त्रिपदा च भवेद् भित्तिरूर्ध्वमस्याथ कथ्यते(?) ।
 श्रीवत्सः कीर्तितः सम्प्रत्युच्यते वर्धमानकः ॥ १९ ॥
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे + + + भागकल्पितम् ।
 छेदादि गिरिपत्र्यन्तं दद्यात् पूर्वक्रमेण(तु) ॥ २० ॥

द्विस्तरा त्रिस्तरा चापि कर्तव्या वेदिका (नर्म)ता ।
 स्तरमेकं भवेच्छेदः कण्ठस्तद्विगुणो भवेत् ॥ २१ ॥
 पट्टिकां गिरिपत्रीं च तस्यैवार्धेन कारयेत् ।
 दशस्तरा ततो घण्टा यदिवामलसारकम् ॥ २२ ॥
 द्विस्तरं स्यात् ततः पञ्चं द्विगुणः कलशस्ततः ।
 तदूर्ध्वं भूमिका कार्या सपीठा लक्षणान्विता ॥ २३ ॥
 स्तरैः स्यात् पञ्चदशभिः पीठं जङ्घापि तावता ।
 चतुःस्तरा भवेन्माला लशुनं तु स्तरद्वयम् ॥ २४ ॥
 तस्या(प्य)र्धेन भरणं कुम्भं कुर्वीत तत्समम् ।
 तस्य द्विगुणमुच्छालं गण्डमेकस्तरं भवेत् ॥ २५ ॥
 पट्टं द्विगुणमेतस्मात् कुर्यादर्धेन पट्टिकाम् ।
 पट्टिकायाः प्रमाणेन कर्तव्या गिरिपत्रिका ॥ २६ ॥
 वरण्डी त्रिस्तरा कार्या शूरसेनैरलङ्कृता ।
 एकस्तरस्ततश्छेदः कण्ठस्तु द्विगुणस्ततः ॥ २७ ॥
 पट्टिका गिरिपत्री च विधातव्ये स्तरं स्तरम् ।
 उभौ (स्तरौ)खिरिहिरं भवेच्छेदः स्तरं ततः ॥ २८ ॥
 तथैव कण्ठस्तद्वच्च पट्टिकागिरिपत्रिके ।
 वरण्डिका द्विस्तरा स्याच्छेषं पूर्ववदाचरेत् ॥ २९ ॥
 उभौ स्तरौ खिरिहिरं छेदं कुर्वीत भागिकम् ।
 कण्ठश्च पत्रिका चैव गिरिपत्री च पूर्ववत् ॥ ३० ॥
 द्विस्तरा वेदिका कार्या (द्युवपादिकया?) युता ।
 छेदमेकं स्तरं कुर्यात् कण्ठं (तद्)द्विगुणं ततः ॥ ३१ ॥
 पत्रिकां गिरिपत्रीं च तस्यैवार्धेन कारयेत् ।
 स्तराष्टकेन घण्टा स्याद् यदिवामलसारकम् ॥ ३२ ॥
 भवेत्यमं(?) + + + कलशो द्विगुणस्ततः ।
 स्तरमेकं भवेद् ग्रीवा कर्णं कुर्वीत तत्समम् ॥ ३३ ॥

द्विगुणं वीजपूरं तु पूर्वत्राप्येवमाचरेत् ।
 (त्कृष्टा सप्तदशांशकैर्भागैस्त्रिभिर्भवेत्?) ॥ ३४ ॥
 द्विभागिकः प्रतिरथः शाला स्यात् पञ्चभागिका ।
 शालाप्रत्यङ्गयोरन्तर्भागार्धेनोदकान्तरम् ॥ ३५ ॥
 परस्परं विनिष्कासः पादहीनं पदं भवेत् ।
 गर्भः स्याद् दशभिर्भागैर्भित्तिः सार्धपदत्रयात् ॥ ३६ ॥
 चतुर्भिर्वेदिकावन्यो जङ्घा स्यादष्टभिः पदैः ।
 सार्धैः पञ्चभिराद्या भूः कपोतालीसमन्विता ॥ ३७ ॥
 (तु?द्वि)तीया भूमिका चास्य कर्तव्या पञ्चभिः पदैः ।
 सार्धैर्भवेत् तृतीयापि चतुर्भिर्भूमिका पदैः ॥ ३८ ॥
 चतुर्थी भूमिका भागैश्चतुर्भिः कीर्तिता पदैः ।
 घण्टा च त्रिपदा कार्या कूटभक्त्यादि पूर्ववत् ॥ ३९ ॥
 शुकनासादि कुम्भादि पूर्ववत् समुदाहृतम् ।
 उक्तोऽयं वर्धमानाख्यः प्रासादः शुभलक्षणः ॥ ४० ॥
 नन्द्यावर्तमथ त्रूमः क्षेत्रे सप्तदशांशके ।
 कोणांश्चतुष्पदान् कुर्यात् पञ्जरं सार्धभागिकम् ॥ ४१ ॥
 पद(भि)र्भागैर्भवेच्छाला गर्भस्तु दशभागिकः ।
 सार्धत्रिभागिका भित्तिरूर्ध्वमान(द्विभांगुणम्?) ॥ ४२ ॥
 वेदी चतुष्पदोत्सेधा जङ्घा भागाष्टकोच्छ्रिता ।
 पदपदा भूमिका + + + + पञ्चपदायता ॥ ४३ ॥
 स्यात् सम्पदे चतुर्भागा तृतीयान्या पदाच्छ्रिता ।
 (सांद्भिवांसेवघटा?) स्यात् पूर्ववत् कलशादिकाः ॥ ४४ ॥
 नन्द्यावर्तोऽयमाख्यातः प्रासादः सर्वकामदः ।
 अथातः सम्प्रवक्ष्यामः प्रासादं नन्दिवर्धनम् ॥ ४५ ॥
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे पदाष्टादशकाङ्किते ।
 कोणस्त्रिपदविस्तारः प्रत्यङ्गं स्यात् पदद्वयम् ॥ ४६ ॥

शाला चतुष्पदा प्रोक्ता चित्रकर्मोपशोभिता ।
पादोनभागमानेन निर्गमः स्यात् परस्परम् ॥ ४७ ॥
कोणप्रत्यङ्गयोर्मध्ये शालाप्रत्यङ्गयोस्तथा ।
भागेन विस्तृतं कार्यं सर्वत्र सलिलान्तरम् ॥ ४८ ॥
गर्भः स्याद् दशभिर्भागैर्भित्तिर्भागचतुष्टयात् ।
ऊर्ध्वमानमथ त्रूमो द्विगुणं तत् प्रकीर्तितम् ॥ ४९ ॥
वेदीवन्धोऽशकाः पञ्च जङ्घा स्यादष्टभागिका ।
प्रथमा भूमिका कार्या कपोतालीसमन्विता ॥ ५० ॥
सपादैः पञ्चभिर्भागैर्द्वितीया तद्वदेव हि ।
तृतीया तु भवत्यस्य भूमिका पञ्चभागिका ॥ ५१ ॥
चतुर्थी भूमिका ज्ञेया सार्धभागचतुष्टया ।
वण्टा तस्योर्ध्वतः कार्या पदत्रयसमुच्छ्रिता ॥ ५२ ॥
शुकाग्रा (द्युःशू)रसेनश्च स्तम्भिकाकूटभक्तयः ।
कलशस्योदयस्तस्य विधेयाश्वास्य पूर्ववत् ॥ ५३ ॥
अमुं यः कारयेदन्यः प्रासादं नन्दिर्वर्धनम् ।
स नन्दिगणसामान्यो जायते नात्र संशयः ॥ ५४ ॥
अतः परमथ त्रूमो विमानं शुभलक्षणम् ।
चतुरश्रीकृते क्षेत्रे विशत्या भाजिते पदैः ॥ ५५ ॥
को(णाः) पञ्चपदाः कार्या मध्ये च सलिलान्तरम् ।
कर्णिका सार्धभागेन भागार्धमुदकान्तरम् ॥ ५६ ॥
(सालोपद्यद?)विस्तीर्णा सार्धभागेन निर्गता ।
कोणस्य चार्धभागेन कर्णिकानिर्गमः स्मृतः ॥ ५७ ॥
गर्भश्वास्य विधातव्यो द्वादशांशकविस्तृतः ।
भित्तिश्चतुष्पदा कार्या दिक्षु सर्वास्ववस्थिता ॥ ५८ ॥
ऊर्ध्वमानमथैतस्य त्रूमस्तद् द्विगुणं भवेत् ।
वेदीवन्धोऽशकाः पञ्च जङ्घा नवपदोच्छ्रिता ॥ ५९ ॥

द्विगुणं वीजपूरं तु पूर्वत्राप्येवमाचरेत् ।

(लूटा सप्तदशांशकैर्भागैर्भिभिर्भवेत्?) ॥ ३४ ॥

द्विभागिकः प्रतिरथः शाला स्यात् पञ्चभागिका ।

शालाप्रत्यङ्गयोरन्तर्भागार्थेनोदकान्तरम् ॥ ३५ ॥

परस्परं त्रिनिष्कासः पादहीनं पदं भवेत् ।

गर्भः स्याद् दशभिर्भागैर्भित्तिः सार्धपदत्रयात् ॥ ३६ ॥

चतुर्भिर्वेदिकावन्यो जङ्घा स्यादष्टभिः पदैः ।

सार्धैः पञ्चभिराद्या भूः कपोतालीसमन्विता ॥ ३७ ॥

(तृःद्वि)तीया भूमिका चास्य कर्तव्या पञ्चभिः पदैः ।

सार्धैर्भवेत् तृतीयापि चतुर्भिर्भूमिका पदैः ॥ ३८ ॥

चतुर्थी भूमिका भागैश्चतुर्भिः कीर्तिता पदैः ।

घण्टा च त्रिपदा कार्या कूटभक्त्यादि पूर्ववत् ॥ ३९ ॥

शुकनासादि कुम्भादि पूर्ववत् समुदाहृतम् ।

उक्तोऽयं वर्धमानाख्यः प्रासादः शुभलक्षणः ॥ ४० ॥

नन्द्यावर्तमथ द्रुमः क्षेत्रे सप्तदशांशके ।

कोणांश्चतुष्पदान् कुर्यात् पञ्जरं सार्धभागिकम् ॥ ४१ ॥

पद(भि)र्भागैर्भवेच्छाला गर्भस्तु दशभागिकः ।

सार्धत्रिभागिका भित्तिरूर्ध्वमान(द्विभांगुणम्?) ॥ ४२ ॥

वेदी चतुष्पदोत्सेधा जङ्घा भागाष्टकोच्छ्रिता ।

पदपदा भूमिका + + + + पञ्चपदायता ॥ ४३ ॥

स्यात् सम्पदे चतुर्भागा तृतीयान्या पदोच्छ्रिता ।

(सांद्रिवांसेवघटा?) स्यात् पूर्ववत् कलशादिकाः ॥ ४४ ॥

नन्द्यावर्तोऽयमाख्यातः प्रासादः सर्वकामदः ।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामः प्रासादं नन्दिवर्धनम् ॥ ४५ ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे पदाष्टादशकाङ्किते ।

कोणस्त्रिपदविस्तारः प्रत्यङ्गं स्यात् पदद्वयम् ॥ ४६ ॥

शाला चतुष्पदा प्रोक्ता चित्रकर्मोपशोभिता ।
पादोनभागमानेन निर्गमः स्यात् परस्परम् ॥ ४७ ॥
कोणप्रत्यङ्गयोर्मध्ये शालाप्रत्यङ्गयोस्तथा ।
भागेन विस्तृतं कार्यं सर्वत्र सलिलान्तरम् ॥ ४८ ॥
गर्भः स्याद् दशभिर्भागैर्भित्तिर्भागचतुष्टयात् ।
ऊर्ध्वमानमथ ब्रूमो द्विगुणं तत् प्रकीर्तितम् ॥ ४९ ॥
वेदीवन्वोऽशकाः पञ्च जङ्घा स्यादष्टभागिका ।
प्रथमा भूमिका कार्या कपोतालीसमन्विता ॥ ५० ॥
सपादैः पञ्चभिर्भागैर्द्वितीया तद्वदेव हि ।
तृतीया तु भवत्यस्य भूमिका पञ्चभागिका ॥ ५१ ॥
चतुर्थी भूमिका ज्ञेया सार्धभागचतुष्टया ।
घण्टा तस्योर्ध्वतः कार्या पदत्रयसमुच्छ्रिता ॥ ५२ ॥
शुकाघ्रा (द्य?शू)रसेनश्च स्तम्भिकाकूटभक्तयः ।
कलशस्योदयस्तस्य विधेयाश्वास्य पूर्ववत् ॥ ५३ ॥
अमुं यः कारयेदन्यः प्रासादं नन्दिर्वर्धनम् ।
स नन्दिगणसामान्यो जायते नात्र संशयः ॥ ५४ ॥
अतः परमथ ब्रूमो विमानं शुभलक्षणम् ।
चतुरश्रीकृते क्षेत्रे विंशत्या भाजिते पदैः ॥ ५५ ॥
को(णाः) पञ्चपदाः कार्या मध्ये च सलिलान्तरम् ।
कर्णिका सार्धभागेन भागार्धमुदकान्तरम् ॥ ५६ ॥
(सालोपद्यद?)विस्तीर्णा सार्धभागेन निर्गता ।
कोणस्य चार्धभागेन कर्णिकानिर्गमः स्मृतः ॥ ५७ ॥
गर्भश्वास्य विधातव्यो द्वादशांशकविस्तृतः ।
भित्तिश्चतुष्पदा कार्या दिक्षु सर्वास्ववस्थिता ॥ ५८ ॥
ऊर्ध्वमानमथैतस्य ब्रूमस्तद् द्विगुणं भवेत् ।
वेदीवन्वोऽशकाः पञ्च जङ्घा नवपदोच्छ्रिता ॥ ५९ ॥

- द्विगुणं वीजपूरं तु पूर्वत्राप्येवमाचरेत् ।
 (त्कृष्टा सप्तदशांशकैर्भागैस्त्रिभिर्भवेत्?) ॥ ३४ ॥
- द्विभागिकः प्रतिरथः शाला स्यात् पञ्चभागिका ।
 शालाप्रत्यङ्गयोरन्तर्भागार्धेनोदकान्तरम् ॥ ३५ ॥
- परस्परं विनिष्कासः पादहीनं पदं भवेत् ।
 गर्भः स्याद् दशभिर्भागैर्भित्तिः सार्धपदत्रयात् ॥ ३६ ॥
- चतुर्भिर्वेदिकावन्धो जङ्घा स्यादष्टभिः पदैः ।
 सार्धैः पञ्चभिराद्या भूः कपोतालीसमन्विता ॥ ३७ ॥
- (तृद्वि)तीया भूमिका चास्य कर्तव्या पञ्चभिः पदैः ।
 सार्धैर्भवेत् तृतीयापि चतुर्भिर्भूमिका पदैः ॥ ३८ ॥
- चतुर्थी भूमिका भागैश्चतुर्भिः कीर्तिता पदैः ।
 घण्टा च त्रिपदा कार्या कूटभक्त्यादि पूर्ववत् ॥ ३९ ॥
- शुकनासादि कुम्भादि पूर्ववत् समुदाहृतम् ।
 उक्तोऽयं वर्धमानाख्यः प्रासादः शुभलक्षणः ॥ ४० ॥
- नन्द्यावर्तमथ ब्रूमः क्षेत्रे सप्तदशांशके ।
 कोणांश्चतुष्पदान् कुर्यात् पञ्जरं सार्धभागिकम् ॥ ४१ ॥
- पद(भि)र्भागैर्भवेच्छाला गर्भस्तु दशभागिकः ।
 सार्धत्रिभागिका भित्तिरूर्ध्वमान(द्विभांगुणम्?) ॥ ४२ ॥
- वेदी चतुष्पदोत्सेवा जङ्घा भागाष्टकोच्छ्रिता ।
 पदपदा भूमिका + + + पञ्चपदायता ॥ ४३ ॥
- स्यान् सम्पदे चतुर्भागा तृतीयान्या पदाच्छ्रिता ।
 (सांद्रिवांसेवद्यदा?) स्यान् पूर्ववत् कलशादिकाः ॥ ४४ ॥
- नन्द्यावर्तोऽयमाख्यातः प्रासादः सर्वकापदः ।
 अथातः सम्प्रवक्ष्यामः प्रासादं नन्द्रिवर्धनम् ॥ ४५ ॥
- चतुरश्रीकृते क्षेत्रे पदाष्टादशकाङ्किते ।
 कोणांश्चिपदविस्तारः नन्द्यं स्यात् पदद्वयम् ॥ ४६ ॥

शाला चतुष्पदा प्रोक्ता चित्रकर्मोपशोभिता ।
पादोनभागमानेन निर्गमः स्यात् परस्परम् ॥ ४७ ॥
कोणप्रत्यङ्गयोर्मध्ये शालाप्रत्यङ्गयोस्तथा ।
भागेन विस्तृतं कार्यं सर्वत्र सलिलान्तरम् ॥ ४८ ॥
गर्भः स्याद् दशभिर्भागैर्भित्तिर्भागचतुष्टयात् ।
ऊर्ध्वमानमथ ब्रूमो द्विगुणं तत् प्रकीर्तितम् ॥ ४९ ॥
वेदीवन्धोऽशकाः पञ्च जङ्घा स्यादष्टभागिका ।
प्रथमा भूमिका कार्या कपोतालीसमन्विता ॥ ५० ॥
सपादैः पञ्चभिर्भागैर्द्वितीया तद्वदेव हि ।
तृतीया तु भवत्यस्य भूमिका पञ्चभागिका ॥ ५१ ॥
चतुर्थी भूमिका ज्ञेया सार्धभागचतुष्टया ।
घण्टा तस्योर्ध्वतः कार्या पदत्रयसमुच्छ्रिता ॥ ५२ ॥
शुकाघ्रा (द्युशू)रसेनश्च स्तम्भिकाकूटभक्तयः ।
कलशस्योदयस्तस्य विधेयाश्वास्य पूर्ववत् ॥ ५३ ॥
अमुं यः कारयेदन्यः प्रासादं नन्दिवर्धनम् ।
स नन्दिगणसामान्यो जायते नात्र संशयः ॥ ५४ ॥
अतः परमथ ब्रूमो विमानं शुभलक्षणम् ।
चतुरश्रीकृते क्षेत्रे विंशत्या भाजिते पदैः ॥ ५५ ॥
को(णाः) पञ्चपदाः कार्या मध्ये च सलिलान्तरम् ।
कर्णिका सार्धभागेन भागार्धमुदकान्तरम् ॥ ५६ ॥
(सालोपद्यद?)विस्तीर्णा सार्धभागेन निर्गता ।
कोणस्य चार्धभागेन कर्णिकानिर्गमः स्मृतः ॥ ५७ ॥
गर्भश्वास्य विधातव्यो द्वादशांशकविस्तृतः ।
भित्तिश्चतुष्पदा कार्या दिक्षु सर्वास्ववस्थिता ॥ ५८ ॥
ऊर्ध्वमानमथैतस्य ब्रूमस्तद् द्विगुणं भवेत् ।
वेदीवन्धोऽशकाः पञ्च जङ्घा नवपदोच्छ्रिता ॥ ५९ ॥

द्विगुणं वीजपूरं तु पूर्वत्राप्येवमाचरेत् ।

(त्कृष्टा सप्तदशांशकैर्भागैस्त्रिभिर्भवेत्?) ॥ ३४ ॥

द्विभागिकः प्रतिरथः शाला स्यात् पञ्चभागिका ।

शालाप्रात्यङ्गयोरन्तर्भागार्थेनोदकान्तरम् ॥ ३५ ॥

परस्परं विनिष्कासः पादहीनं पदं भवेत् ।

गर्भः स्याद् दशभिर्भागैर्भित्तिः सार्धपदत्रयात् ॥ ३६ ॥

चतुर्भिर्वेदिकावन्धो जङ्घा स्यादष्टभिः पदैः ।

सार्धैः पञ्चभिराद्या भूः कपोतालीसमन्विता ॥ ३७ ॥

(तृ?द्वि)तीया भूमिका चास्य कर्तव्या पञ्चभिः पदैः ।

सार्धैर्भवेत् तृतीयापि चतुर्भिर्भूमिका पदैः ॥ ३८ ॥

चतुर्थी भूमिका भागैश्चतुर्भिः कीर्तिता पदैः ।

घण्टा च त्रिपदा कार्या कूटभक्त्यादि पूर्ववत् ॥ ३९ ॥

शुकनासादि कुम्भादि पूर्ववत् समुदाहृतम् ।

उक्तोऽयं वर्धमानाख्यः प्रासादः शुभलक्षणः ॥ ४० ॥

नन्द्यावर्तमथ ब्रूमः क्षेत्रे सप्तदशांशके ।

कोणांश्चतुष्पदान् कुर्यात् पञ्जरं सार्धभागिकम् ॥ ४१ ॥

पद(भि)र्भागैर्भवेच्छाला गर्भस्तु दशभागिकः ।

सार्धत्रिभागिका भित्तिरूर्ध्वमान(द्विभांगुणम्?) ॥ ४२ ॥

वेदी चतुष्पदोत्सेधा जङ्घा भागाष्टकोच्छ्रिता ।

पदपदा भूमिका + + + + पञ्चपदायता ॥ ४३ ॥

स्यात् सम्पदे चतुर्भागा तृतीयान्या पदाच्छ्रिता ।

(सांद्भिर्वासेवद्यथा?) स्यात् पूर्ववत् कलशादिकाः ॥ ४४ ॥

नन्द्यावर्तोऽयमाख्यातः प्रासादः सर्वकामदः ।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामः प्रासादं नन्दिवर्धनम् ॥ ४५ ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे पदाष्टादशकाङ्किते ।

कोणान्निपदाविस्तारः प्रत्यङ्गं स्यात् पदद्वयम् ॥ ४६ ॥

शाला चतुष्पदा प्रोक्ता चित्रकर्मोपशोभिता ।
पादोनभागमानेन निर्गमः स्यात् परस्परम् ॥ ४७ ॥
कोणप्रत्यङ्गयोर्मध्ये शालाप्रत्यङ्गयोस्तथा ।
भागेन विस्तृतं कार्यं सर्वत्र सलिलान्तरम् ॥ ४८ ॥
गर्भः स्याद् दशभिर्भागैर्भित्तिर्भागचतुष्टयात् ।
ऊर्ध्वमानमथ त्रूमो द्विगुणं तत् प्रकीर्तितम् ॥ ४९ ॥
वेदीवन्धोऽशकाः पञ्च जङ्घा स्यादष्टभागिका ।
प्रथमा भूमिका कार्या कपोतालीसमन्विता ॥ ५० ॥
सपादैः पञ्चभिर्भागैर्द्वितीया तद्वदेव हि ।
तृतीया तु भवत्यस्य भूमिका पञ्चभागिका ॥ ५१ ॥
चतुर्थी भूमिका ज्ञेया सार्धभागचतुष्टया ।
षष्ठा तस्योर्ध्वतः कार्या पदत्रयसमुच्छ्रिता ॥ ५२ ॥
शुकाग्रा (द्यःशू)रसेनश्च स्तम्भिकाकूटभक्तयः ।
कलशस्योदयस्तस्य विधेयाश्वास्य पूर्ववत् ॥ ५३ ॥
अमुं यः कारयेदन्यः प्रासादं नन्दिर्वर्धनम् ।
स नन्दिगणसामान्यो जायते नात्र संशयः ॥ ५४ ॥
अतः परमथ त्रूमो विमानं शुभलक्षणम् ।
चतुरश्रीकृते क्षेत्रे विंशत्या भाजिते पदैः ॥ ५५ ॥
को(णाः) पञ्चपदाः कार्या मध्ये च सलिलान्तरम् ।
कर्णिका सार्धभागेन भागार्धमुदकान्तरम् ॥ ५६ ॥
(सालोपद्यदः)विस्तीर्णा सार्धभागेन निर्गता ।
कोणस्य चार्धभागेन कर्णिकानिर्गमः स्मृतः ॥ ५७ ॥
गर्भश्वास्य विधातव्यो द्वादशांशकविस्तृतः ।
भित्तिश्चतुष्पदा कार्या दिक्षु सर्वास्ववस्थिता ॥ ५८ ॥
ऊर्ध्वमानमथैतस्य त्रूमस्तद् द्विगुणं भवेत् ।
वेदीवन्धोऽशकाः पञ्च जङ्घा नवपदोच्छ्रिता ॥ ५९ ॥

द्विगुणं वीजपूरं तु पूर्वत्राप्येवमानरेत् ।
 (त्कृष्टा सप्तदशांशकैर्मगिन्निभिर्भवेत्?) ॥ ३४ ॥
 द्विभागिकः प्रतिरथः शाला स्यात् पञ्चभागिका ।
 शालाप्रत्यङ्गयोरन्तर्भागार्धेनोदकान्तरम् ॥ ३५ ॥
 परस्परं विनिष्कासः पादद्वीनं पदं भवेत् ।
 गर्भः स्याद् दशभिर्भागैर्भित्तिः सार्धेपदत्रयात् ॥ ३६ ॥
 चतुर्भिर्वेदिकावन्धो जड्वा स्यादष्टभिः पदैः ।
 सार्धैः पञ्चभिराद्या भूः कपोतालीसमन्विता ॥ ३७ ॥
 (तुःद्वि)तीया भूमिका चास्य कर्तव्या पञ्चभिः पदैः ।
 सार्धैर्भवेत् तृतीयापि चतुर्भिर्भूमिका पदैः ॥ ३८ ॥
 चतुर्थी भूमिका भागैश्चतुर्भिः कीर्तिता पदैः ।
 घण्टा च त्रिपदा कार्या कूटभक्त्यादि पूर्ववत् ॥ ३९ ॥
 शुकनासादि कुम्भादि पूर्ववत् समुदाहृतम् ।
 उक्तोऽयं वर्धमानाख्यः प्रासादः शुभलक्षणः ॥ ४० ॥
 नन्यावर्तमथ द्रुमः क्षेत्रे सप्तदशांशके ।
 कोणांश्चतुष्पदान् कुर्यात् पञ्जरं सार्धभागिकम् ॥ ४१ ॥
 पद(भि)र्भागैर्भवेच्छाला गर्भस्तु दशभागिकः ।
 सार्धत्रिभागिका भित्तिरूर्ध्वमान(द्विभांगुणम्?) ॥ ४२ ॥
 वेदी चतुष्पदोत्सेधा जड्वा भागाष्टकोच्छ्रिता ।
 पदपदा भूमिका + + + + पञ्चपदायता ॥ ४३ ॥
 स्यात् सम्पदे चतुर्भागा तृतीयान्या पदोच्छ्रिता ।
 (सांद्भिवांसेवघटा?) स्यात् पूर्ववत् कलशादिकाः ॥ ४४ ॥
 नन्यावर्तोऽयमाख्यातः प्रासादः सर्वकामदः ।
 अथातः सम्प्रवक्ष्यामः प्रासादं नन्दिवर्धनम् ॥ ४५ ॥
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे पदाष्टादशकाङ्किते ।
 कोणस्त्रिपदविस्तारः प्रत्यङ्गं स्यात् पदद्वयम् ॥ ४६ ॥

शाला चतुष्पदा प्रोक्ता चित्रकर्मापशोभिता ।
 पादोनभागमानेन निर्गमः स्यात् परस्परम् ॥ ४७ ॥
 कोणप्रत्यङ्गयोर्मध्ये शालाप्रत्यङ्गयोस्तथा ।
 भागेन विस्वृतं कार्यं सर्वत्र सलिलान्तरम् ॥ ४८ ॥
 गर्भः स्याद् दशभिर्भागैर्भित्तिर्भागचतुष्टयात् ।
 ऊर्ध्वमानमथ त्रूमो द्विगुणं तत् प्रकीर्तितम् ॥ ४९ ॥
 वेदीवन्धोऽशकाः पञ्च जङ्घा स्यादष्टभागिका ।
 प्रथमा भूमिका कार्या कपोतालीसमन्विता ॥ ५० ॥
 सपादैः पञ्चभिर्भागैर्द्वितीया तद्वदेव हि ।
 तृतीया तु भवत्यस्य भूमिका पञ्चभागिका ॥ ५१ ॥
 चतुर्थी भूमिका ज्ञेया सार्धभागचतुष्टया ।
 षण्ठा तस्योर्ध्वतः कार्या पदत्रयसमुच्छ्रिता ॥ ५२ ॥
 शुकाग्रा (द्युःशू)रसेनश्च स्तम्भिकाकूटभक्तयः ।
 कलशस्योदयस्तस्य विधेयाश्वास्य पूर्ववत् ॥ ५३ ॥
 अमुं यः कारयेदन्यः प्रासादं नन्दिवर्धनम् ।
 स नन्दिगणसामान्यो जायते नात्र संशयः ॥ ५४ ॥
 अतः परमथ त्रूमो विमानं शुभलक्षणम् ।
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे विंशत्या भाजिते पदैः ॥ ५५ ॥
 को(णाः) पञ्चपदाः कार्या मध्ये च सलिलान्तरम् ।
 कर्णिका सार्धभागेन भागार्धमुदकान्तरम् ॥ ५६ ॥
 (सालोपद्यद?)विस्तीर्णा सार्धभागेन निर्गता ।
 कोणस्य चार्धभागेन कर्णिकानिर्गमः स्मृतः ॥ ५७ ॥
 गर्भश्वास्य विधातव्यो द्वादशांशकविस्वृतः ।
 भित्तिश्चतुष्पदा कार्या दिक्षु सर्वास्ववस्थिता ॥ ५८ ॥
 ऊर्ध्वमानमथैतस्य त्रूपस्तद् द्विगुणं भवेत् ।
 वेदीवन्धोऽशकाः पञ्च जङ्घा नवपदोच्छ्रिता ॥ ५९ ॥

द्विगुणं वीजपूरं तु पूर्वत्राप्येवमानरेत् ।

(लृष्टा सप्तदशांशकैर्भागैर्भिभिर्भवेत्?) ॥ ३४ ॥

द्विभागिकः प्रतिरथः शाला स्यात् पञ्चभागिका ।

शालाप्रत्यङ्गयोरन्तर्भागार्धेनोदकान्तरम् ॥ ३५ ॥

परस्परं विनिष्कासः पादद्वीपं पदं भवेत् ।

गर्भः स्याद् दशभिर्भागैर्भित्तिः सार्धेपदत्रयात् ॥ ३६ ॥

चतुर्भिर्वेदिकावन्धो जङ्घा स्यादष्टभिः पदैः ।

सार्धैः पञ्चभिराद्या भूः कपोतालीसमन्विता ॥ ३७ ॥

(वृःद्वि)तीया भूमिका चास्य कर्तव्या पञ्चभिः पदैः ।

सार्धैर्भवेत् तृतीयापि चतुर्भिर्भूमिका पदैः ॥ ३८ ॥

चतुर्थी भूमिका भागैश्चतुर्भिः कीर्तिता पदैः ।

घण्टा च त्रिपदा कार्या कूटभक्त्यादि पूर्ववत् ॥ ३९ ॥

शुकनासादि कुम्भादि पूर्ववत् समुदाहृतम् ।

उक्तोऽयं वर्धमानाख्यः प्रासादः शुभलक्षणः ॥ ४० ॥

नन्द्यावर्तमथ ब्रूमः क्षेत्रे सप्तदशांशके ।

कोणांश्चतुष्पदान् कुर्यात् पञ्जरं सार्धभागिकम् ॥ ४१ ॥

पद(भि)र्भागैर्भवेच्छाला गर्भस्तु दशभागिकः ।

सार्धत्रिभागिका भित्तिरूर्ध्वमान(द्विभागुणम्?) ॥ ४२ ॥

वेदी चतुष्पदोत्सेधा जङ्घा भागाष्टकोच्छ्रिता ।

पदपदा भूमिका + + + + पञ्चपदायता ॥ ४३ ॥

स्यात् सम्पदे चतुर्भागा तृतीयान्या पदोच्छ्रिता ।

(सांद्रिवांसेवघटा?) स्यात् पूर्ववत् कलशादिकाः ॥ ४४ ॥

नन्द्यावर्तोऽयमाख्यातः प्रासादः सर्वकामदः ।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामः प्रासादं नन्दिवर्धनम् ॥ ४५ ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे पदाष्टादशकाङ्किते ।

कोणस्त्रिपदविस्तारः प्रत्यङ्गं स्यात् पदद्वयम् ॥ ४६ ॥

शाला चतुष्पदा प्रोक्ता चित्रकमोपशोभिता ।
 पादोनभागमानेन निर्गमः स्यात् परस्परम् ॥ ४७ ॥
 कोणप्रत्यङ्गयोर्मध्ये शालाप्रत्यङ्गयोस्तथा ।
 भागेन विस्तृतं कार्यं सर्वत्र सलिलान्तरम् ॥ ४८ ॥
 गर्भः स्याद् दशभिर्भागैर्भित्तिर्भागचतुष्टयात् ।
 ऊर्ध्वमानमथ त्रूमो द्विगुणं तत् प्रकीर्तितम् ॥ ४९ ॥
 वेदीवन्धोऽशकाः पञ्च जङ्घा स्यादष्टभागिका ।
 प्रथमा भूमिका कार्या कपोतालीसमन्विता ॥ ५० ॥
 सपादैः पञ्चभिर्भागैर्द्वितीया तद्वदेव हि ।
 तृतीया तु भवत्यस्य भूमिका पञ्चभागिका ॥ ५१ ॥
 चतुर्थी भूमिका ज्ञेया सार्धभागचतुष्टया ।
 घण्टा तस्योर्ध्वतः कार्या पदत्रयसमुच्छ्रिता ॥ ५२ ॥
 शुकाग्रा (द्यःशू)रसेनश्च स्तम्भिकाकूटभक्तयः ।
 कलशस्योदयस्तस्य विधेयाश्वास्य पूर्ववत् ॥ ५३ ॥
 अमुं यः कारयेदन्यः प्रासादं नन्दिवर्धनम् ।
 स नन्दिगणसामान्यो जायते नात्र संशयः ॥ ५४ ॥
 अतः परमथ त्रूमो विमानं शुभलक्षणम् ।
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे विशत्या भाजिते पदैः ॥ ५५ ॥
 को(णाः) पञ्चपदाः कार्या मध्ये च सलिलान्तरम् ।
 कर्णिका सार्धभागेन भागार्धमुदकान्तरम् ॥ ५६ ॥
 (सालोपद्यदः)विस्तीर्णा सार्धभागेन निर्गता ।
 कोणस्य चार्धभागेन कर्णिकानिर्गमः स्मृतः ॥ ५७ ॥
 गर्भश्चास्य विधातव्यो द्वादशांशकविस्तृतः ।
 भित्तिश्चतुष्पदा कार्या दिक्षु सर्वास्ववस्थिता ॥ ५८ ॥
 ऊर्ध्वमानमथैतस्य त्रूमस्तद् द्विगुणं भवेत् ।
 वेदीवन्धोऽशकाः पञ्च जङ्घा नवपदोच्छ्रिता ॥ ५९ ॥

द्विगुणं वीजपूरं तु पूर्वत्राप्येवमाचरेत् ।
 (त्कृष्टा सप्तदशांशकैर्भागैस्त्रिभिर्भवेत्?) ॥ ३४ ॥
 द्विभागिकः प्रतिरथः शाला स्यात् पञ्चभागिका ।
 शालाप्रात्यङ्गयोरन्तर्भागार्धेनोदकान्तरम् ॥ ३५ ॥
 परस्परं विनिष्कासः पादहीनं पदं भवेत् ।
 गर्भः स्याद् दशभिर्भागैर्भित्तिः सार्धपदत्रयात् ॥ ३६ ॥
 चतुर्भिर्वेदिकावन्धो जङ्घा स्यादष्टभिः पदैः ।
 सार्धैः पञ्चभिराद्या भूः कपोतालीसमन्विता ॥ ३७ ॥
 (तृःद्वि)तीया भूमिका चास्य कर्तव्या पञ्चभिः पदैः ।
 सार्धैर्भवेत् तृतीयापि चतुर्भिर्भूमिका पदैः ॥ ३८ ॥
 चतुर्थी भूमिका भागैश्चतुर्भिः कीर्तिता पदैः ।
 घण्टा च त्रिपदा कार्या कूटभक्त्यादि पूर्ववत् ॥ ३९ ॥
 शुक्रनासादि कुम्भादि पूर्ववत् समुदाहृतम् ।
 उक्तोऽयं वर्धमानाख्यः प्रासादः शुभलक्षणः ॥ ४० ॥
 नन्द्यावर्तमथ त्रूमः क्षेत्रे सप्तदशांशके ।
 कोणांश्चतुष्पदान् कुर्यात् पञ्जरं सार्धभागिकम् ॥ ४१ ॥
 पद(भि)र्भागैर्भवेच्छाला गर्भस्तु दशभागिकः ।
 सार्धत्रिभागिका भित्तिरूर्ध्वमान(द्विभागुणम्?) ॥ ४२ ॥
 वेदी चतुष्पदोत्सेया जङ्घा भागाष्टकोच्छ्रिता ।
 पदपदा भूमिका + + + पञ्चपदायता ॥ ४३ ॥
 स्यान् सम्पदे चतुर्भागा तृतीयान्या पदोच्छ्रिता ।
 (सांद्रिवांसेवद्यथा?) स्यात् पूर्ववत् कलशादिकाः ॥ ४४ ॥
 नन्द्यावर्तोऽयमाख्यातः प्रासादः सर्वकामदः ।
 अथातः सम्प्रवक्ष्यामः प्रासादं नन्दिवर्धनम् ॥ ४५ ॥
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे पदाष्टादशकाङ्किते ।
 कोणात्रिपदविस्तारः प्रत्यङ्गं स्यात् पदद्वयम् ॥ ४६ ॥

शाला चतुष्पदा प्रोक्ता चित्रकर्मोपशोभिता ।
 पादोनभागमानेन निर्गमः स्यात् परस्परम् ॥ ४७ ॥
 कोणप्रत्यङ्गयोर्मध्ये शालाप्रत्यङ्गयोस्तथा ।
 भागेन विस्तृतं कार्यं सर्वत्र सलिलान्तरम् ॥ ४८ ॥
 गर्भः स्याद् दशभिर्भागैर्भित्तिर्भागचतुष्टयात् ।
 ऊर्ध्वमानमथ ब्रूमो द्विगुणं तत् प्रकीर्तितम् ॥ ४९ ॥
 वेदीवन्व्योऽशकाः पञ्च जङ्घा स्यादष्टभागिका ।
 प्रथमा भूमिका कार्या कपोतालीसमन्विता ॥ ५० ॥
 सपादैः पञ्चभिर्भागैर्द्वितीया तद्वदेव हि ।
 तृतीया तु भवत्यस्य भूमिका पञ्चभागिका ॥ ५१ ॥
 चतुर्थी भूमिका ज्ञेया सार्धभागचतुष्टया ।
 षण्ठा तस्योर्ध्वतः कार्या पदत्रयसमुच्छ्रिता ॥ ५२ ॥
 शुक्रात्रा (द्युःशू)रसेनश्च स्तम्भिकाकूटभक्तयः ।
 कलशस्योदयस्तस्य विधेयाश्वास्य पूर्ववत् ॥ ५३ ॥
 अमुं यः कारयेदन्यः प्रासादं नन्दिवर्धनम् ।
 स नन्दिगणसामान्यो जायते नात्र संशयः ॥ ५४ ॥
 अतः परमथ ब्रूमो विमानं शुभलक्षणम् ।
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे विंशत्या भाजिते पदैः ॥ ५५ ॥
 को(णाः) पञ्चपदाः कार्या मध्ये च सलिलान्तरम् ।
 कर्णिका सार्धभागेन भागार्धमुदकान्तरम् ॥ ५६ ॥
 (सालोपद्यद?)विस्तीर्णा सार्धभागेन निर्गता ।
 कोणस्य चार्धभागेन कर्णिकानिर्गमः स्मृतः ॥ ५७ ॥
 गर्भश्वास्य विधातव्यो द्वादशांशकविस्तृतः ।
 भित्तिश्चतुष्पदा कार्या दिक्षु सर्वास्ववस्थिता ॥ ५८ ॥
 ऊर्ध्वमानमथैतस्य ब्रूमस्तद् द्विगुणं भवेत् ।
 वेदीवन्व्योऽशकाः पञ्च जङ्घा नवपदोच्छ्रिता ॥ ५९ ॥

द्विगुणं वीजपूरं तु पूर्वत्राप्येवमाचरेत् ।
 (लुष्टा सप्तदशांशकैर्भागैस्त्रिभिर्भवेत्?) ॥ ३४ ॥
 द्विभागिकः प्रतिरथः शाला स्यात् पञ्चभागिका ।
 शालाप्रत्यङ्गयोरन्तर्भागार्धेनोदकान्तरम् ॥ ३५ ॥
 परस्परं विनिष्कासः पादहीनं पदं भवेत् ।
 गर्भः स्याद् दशभिर्भागैर्भित्तिः सार्धपदत्रयात् ॥ ३६ ॥
 चतुर्भिर्वेदिकावन्धो जड्वा स्यादष्टभिः पदैः ।
 सार्धैः पञ्चभिराद्या भूः कपोतालीसमन्विता ॥ ३७ ॥
 (तृ?द्वि)तीया भूमिका चास्य कर्तव्या पञ्चभिः पदैः ।
 सार्धैर्भवेत् तृतीयापि चतुर्भिर्भूमिका पदैः ॥ ३८ ॥
 चतुर्थी भूमिका भागैश्चतुर्भिः कीर्तिता पदैः ।
 घण्टा च त्रिपदा कार्या कूटभक्त्यादि पूर्ववत् ॥ ३९ ॥
 शुकनासादि कुम्भादि पूर्ववत् समुदाहृतम् ।
 उक्तोऽयं वर्धमानाख्यः प्रासादः शुभलक्षणः ॥ ४० ॥
 नन्द्यावर्तमथ द्रुमः क्षेत्रे सप्तदशांशके ।
 कोणांश्चतुष्पदान् कुर्यात् पञ्जरं सार्धभागिकम् ॥ ४१ ॥
 पद(भि)र्भागैर्भवेच्छाला गर्भस्तु दशभागिकः ।
 सार्धत्रिभागिका भित्तिरूर्ध्वमान(द्विभागुणम्?) ॥ ४२ ॥
 वेदी चतुष्पदोत्सेधा जड्वा भागाष्टकोच्छ्रिता ।
 पदपदा भूमिका + + + पञ्चपदायता ॥ ४३ ॥
 स्यात् सम्पदे चतुर्भागा तृतीयान्या पदोच्छ्रिता ।
 (सांद्भिर्वासेवघटा?) स्यात् पूर्ववत् कलशादिकाः ॥ ४४ ॥
 नन्द्यावर्तोऽयमाख्यातः प्रासादः सर्वकामदः ।
 अथातः सम्प्रवक्ष्यामः प्रासादं नन्दिवर्धनम् ॥ ४५ ॥
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे पदाष्टादशकाङ्किते ।
 कोणास्त्रिपदविस्तारः प्रत्यङ्गं स्यात् पदद्वयम् ॥ ४६ ॥

शाला चतुष्पदा प्रोक्ता चित्रकर्मोपशोभिना ।
 पादोनभागमानेन निर्गमः स्यात् परस्परम् ॥ ४७ ॥
 कोणप्रत्यङ्गयोर्मध्ये शालाप्रत्यङ्गयोस्तथा ।
 भागेन विस्तृतं कार्यं सर्वत्र सलिलान्तरम् ॥ ४८ ॥
 गर्भः स्याद् दशभिर्भागैर्भित्तिर्भागचतुष्टयात् ।
 ऊर्ध्वमानमथ त्रूमो द्विगुणं तत् प्रकीर्तितम् ॥ ४९ ॥
 वेदीवन्धोऽशकाः पञ्च जङ्घा स्यादष्टभागिका ।
 प्रथमा भूमिका कार्या कपोतालीसमन्विता ॥ ५० ॥
 सपादैः पञ्चभिर्भागैर्द्वितीया तद्वदेव हि ।
 तृतीया तु भवत्यस्य भूमिका पञ्चभागिका ॥ ५१ ॥
 चतुर्थी भूमिका ज्ञेया सार्धभागचतुष्टया ।
 घण्टा तस्योर्ध्वतः कार्या पदत्रयसमुच्छ्रिता ॥ ५२ ॥
 शुकाघ्रा (घ?शू)रसेनश्च स्तम्भिकाकूटभक्तयः ।
 कलशस्योदयस्तस्य विधेयाश्चास्य पूर्ववत् ॥ ५३ ॥
 अगुं यः कारयेदन्यः प्रासादं नन्दिर्वर्धनम् ।
 स नन्दिगणसामान्यो जायते नात्र संशयः ॥ ५४ ॥
 अतः परमथ त्रूमो विमानं शुभलक्षणम् ।
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे विशत्या भाजिते पदैः ॥ ५५ ॥
 को(णाः) पञ्चपदाः कार्या मध्ये च सलिलान्तरम् ।
 कर्णिका सार्धभागेन भागार्धमुदकान्तरम् ॥ ५६ ॥
 (सालोपद्यद्?)विस्तीर्णा सार्धभागेन निर्गता ।
 कोणस्य चार्धभागेन कर्णिकानिर्गमः स्मृतः ॥ ५७ ॥
 गर्भश्चास्य विधातव्यो द्वादशांशकविस्तृतः ।
 भित्तिश्चतुष्पदा कार्या दिक्षु सर्वास्ववस्थिता ॥ ५८ ॥
 ऊर्ध्वमानमथैतस्य त्रूमस्तद् द्विगुणं भवेत् ।
 वेदीवन्धोऽशकाः पञ्च जङ्घा नवपदोच्छ्रिता ॥ ५९ ॥

प्राथम्ये कार्ये भागैः पञ्चभिः समुच्छ्रिता ।

पत्रां कपोतालीं मध्ये चास्याः प्रकल्पयेत् ॥ ६० ॥

तीया भूमिका चास्य विधेया पञ्चभिः पदैः ।

वेङ्कस्याः स्तम्भकोच्छालं कूटं चार्धव्यवस्थितम् ॥ ६१ ॥

रस्परपार्थेन हमा(?)स्तिस्रोऽन्यभूमिकाः ।

भूमिकाकूटभरणशूरसेनाः सघण्टकाः ॥ ६२ ॥

शस्योदयश्चात्र प्राग्वत् कार्या विपश्चिता ।

इमं कारयेद् भक्त्या विमानारुखं नृपुङ्गवः ॥ ६३ ॥

भोगान् स लभते तथा (सत्कायदंविधे?) ।

य पद्माप्रियप्रीतिजननः पद्म उच्यते ॥ ६४ ॥

रश्रीकृते क्षेत्रे भक्ते षोडशभिः पदैः ।

णाश्वतुष्पदाः कार्याः सलिलान्तरभूयिताः ॥ ६५ ॥

तदः पञ्जरो ज्ञेयो गर्भे कोणाश्वतुष्पदाः ।

गःस्यात्?) षोडशांशेन तदन्ते सलिलान्तरम् ॥ ६६ ॥

ः स्यान्नवभिर्भागैर्भित्तिः सार्धपदत्रयम् ।

वर्मानमथ त्रूमस्त(थादि)स्य द्विगुणं भवेत् ॥ ६७ ॥

तीया भूमिका ज्ञेया भागैः पञ्चभिरुच्छ्रिता ।

योन्यं तु पदार्थेन हीनं स्याद् भूमिकाद्वयम् ॥ ६८ ॥

भूमिकाकूटभरणशुक्रा(ग्रःघ्रा)शूरसेनकाः ।

श(कारसः)विस्तारा भवन्त्येतस्य पूर्ववत् ॥ ६९ ॥

प्रासादमेनं यः कारयेद् भाक्तिसंयुतः ।

श्रीपतिरिव श्रीशो भवत्यवनिमण्डनः ॥ ७० ॥

भद्रमथ त्रूमः प्रासादमतिसुन्दरम् ।

रश्रीकृते क्षेत्रे विंशत्या सैकयाङ्किते ॥ ७१ ॥

णाश्वतुष्पदाः सार्धद्वयंशाः प्रत्यङ्गकाः स्मृताः ।

ला पञ्चपदा कार्या दिक्षु सर्वास्ववस्थिता ॥ ७२ ॥

परस्परं पदांशेन हीना' इति स्यात् । २. 'भागस्य' इति स्यात् । ३. 'कूटश'

पादोनभागविस्तारं कर्तव्यं सलिलान्तरम् ।
 गर्भस्त्रयोदशपदो भित्तयश्च चतुष्पदाः ॥ ७३ ॥
 ऊर्ध्वमानमथैतस्य त्रूमस्तद् द्विगुणं भवेत् ।
 वेदी चतुष्पदोत्सेधा जङ्घा स्यादष्टभागिका ॥ ७४ ॥
 सप्तभागसमुत्सेधा विधेया चादिभूमिका ।
 मध्ये सान्तरपत्रास्याः कपोताली पदत्रयम् ॥ ७५ ॥
 द्वितीयभूमिका चास्य सार्धैः पङ्क्तिभिः पदैः स्मृता ।
 भागभागविहीनास्तु तिस्रोऽन्या भूमिकास्ततः ॥ ७६ ॥
 घण्टा भागत्रयोत्सेधा पद्मपत्रिकया सह ।
 स्तम्भिकाकूटभरणशुकात्राशूरसेनकाः ॥ ७७ ॥
 कलशः (कुम्भं नद्याः?) प्राग्वत् तस्य भवन्त्यमी ।
 महाभद्रमिमं योऽत्र कारयेद् भक्तिमान् नरः ॥ ७८ ॥
 स स्वर्गे मुरनारीभिः सेव्यते मदनाज्ञया ।
 अथ श्रीवर्धमानस्य लक्ष्म साम्प्रतमुच्यते ॥ ७९ ॥
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे चतुर्विंशतिभाजिते ।
 कोणाः पङ्क्तिभागाः कार्याः शालाः स्युर्नवभागिकाः ॥ ८० ॥
 सार्धं पदद्वयं कार्यः शालानामत्र निर्गमः ।
 कुर्याज्जलान्तरं तत्र मध्यतः कोणशालयोः ॥ ८१ ॥
 विस्तृतं सार्धभागेन प्रविष्टमपि भागतः ।
 (कोणे मध्यं?) विधातव्यं भागेनैवोदकान्तरम् ॥ ८२ ॥
 नवांश(कुम्भकल)पञ्चशालायाः प्रत्यङ्गौ द्वाबुदाहृतौ ।
 भागद्वितयविस्तारौ भागेनैकेन निर्गतौ ॥ ८३ ॥
 चतुर्दशपदो गर्भो भित्तिः पञ्चपदा स्मृता ।
 ऊर्ध्वमानमथ त्रूमस्तदस्य द्विगुणं भवेत् ॥ ८४ ॥
 वेदिका पद्मदोत्सेधा जङ्घादशभिः पदैः ।
 प्रथमा भूमिका चास्य कार्या सप्तांशकोच्छ्रिता ॥ ८५ ॥
 पादोनैः सप्तभिर्भागैर्द्वितीया भूमिकेष्यते ।
 तृतीया भूमिका पङ्क्तिभिः सपादैर्जायते पदैः ॥ ८६ ॥

(पादेन पदकाः)भागेन चतुर्थी भूमिका स्मृता ।
भागं भागं त्रिधातव्यः प्रवेशः प्रतिभूमिकम् ॥ ८७ ॥

सपादैः पञ्चभिर्भागेः कार्यो षष्ठासमुच्छ्रयः ।
भागवयसमुत्सेषस्तदूर्ध्वं कलशो भवेन् ॥ ८८ ॥

+++++ पदाः स्मृताः ।
भागद्वितयविस्ताराः कतेव्या वालपडाराः ॥

गाला पदभागविस्तीर्णा भागद्वि(तयमुच्छ्रिता) ।
(हो)णप्रत्यययोर्मध्ये गालाप्रत्यययोस्तथा ॥

ह्रस्वान्तरे विधातव्यं भागि हं मञ्जिष्ठान्तरम् ।
गनेः स्याद् द्वयभिर्भागेमितिः कार्योस्य पदपदा ॥

पण्डा स्यात् प्रतीयात् भागोच्छ्रिताः पराः ।
स्य - - - - - स्त्रियो षष्ठा षष्ठासुच्छ्रिता ॥

ह्रस्वद्वयं कार्यो मुक्ताप्रदि न पूर्वम् ।
प - - - - - वि वेत्ता प्रायादधिकं कार्येण ॥

स्त्रो नु वेत्ता ऋत्यां स्त्र्यन्तव्योपिताम् ।
पण्डा स्य - - - - - वे ह्रस्वयोर्षी विधीयते ॥

नद्वयं प्रायात् कार्या ह्रस्वन्वायादधिकं ।
प - - - - - वे ह्रस्वयोर्षी प्रायादे पूर्वो नयम् ॥

द्वयं नित्यं वा पूर्वो न यथास्त्रीनिष्ठायाम् ।
द्वयोर्षी प्रायात् - - - - - स्त्र्यन्ति ॥

प्रायाद्व्युत्पत्ताः नूनन्द्वयवृक्ताः ।
स्योर्षी प्रायाद्व्युत्पत्ताः विधीयते
द्वयं नूनन्द्वयवृत्तं द्वयोर्षी ॥

१८७ भागं भागं त्रिधातव्यः प्रवेशः प्रतिभूमिकम् ॥ ८७ ॥

१८८ सपादैः पञ्चभिर्भागेः कार्यो षष्ठासमुच्छ्रयः ॥

१८९ भागं भागं त्रिधातव्यः प्रवेशः प्रतिभूमिकम् ॥ १८९ ॥

अथ भूमिजप्रासादलक्षणं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ।

—:०:—

भूमिजानां विमानानां ब्रूमो लक्ष्म क्रमागतम् ।

चतुरश्रीकृतानां च वृत्तानां (वृत्तं पूर्वशः ?) ॥ १ ॥

केपाश्चिन्निर्गमस्तत्र जायते भागसंख्यया ।

केपश्चित् पुनरेष स्याद् वृत्तमध्यमधिष्ठितः ॥ २ ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे दशभागविभाजिते ।

चतुर्भूमियुतस्याथ लक्ष्म (त्संशस्य?च्छन्दस्य) कथ्यते ॥ ३ ॥

चत्वारश्चतुरश्राः स्युर्निपथो मलयाचलः ।

माल्यवान् नवमाली च निपथस्तेषु कथ्यते ॥ ४ ॥

(कोणा शंभोतरो द्वयंशं भार्दशंभोर्धभागिकः?) ।

विस्तारायामतः प्रोक्तो भद्रं पञ्चांशविस्तृतम् ॥ ५ ॥

कार्या(ः) पादोनभागेन भद्रस्यैतस्य निर्गमाः ।

कार्या पल्लु(म्बि?वि)का तस्य पादभागेन विस्तृता ॥ ६ ॥

भागेन कर्णिका कार्या विस्तृत्या निर्गमेण च ।

प्रतिभद्रं च भागार्धनिर्गतं तत्र कल्पयेत् ॥ ७ ॥

पादोनभागद्वितयं प्रतिभद्रस्य विस्तृतिः ।

पद्भिर्भागैर्भवेद् गर्भो भित्तिरस्य द्विभागिका ॥ ८ ॥

तलच्छन्दस्य लक्ष्मोक्तमूर्ध्वमानमथोच्यते ।

विस्तृतेर्द्विगुणं तच्च चतुर्भागाधिकं भवेत् ॥ ९ ॥

वेदीवन्धो भवेदस्य सार्धभागद्वयोच्छ्रितः ।

तत्तु भागद्वयं सार्धं विभजेदर्धपञ्चमैः ॥ १० ॥

भागद्वयेन कुम्भः स्यात् कलशो भागिकः स्मृतः ।

भागार्धेनान्तरं पत्रं कपोताली तु भागिकी ॥ ११ ॥

१. 'अनुपूर्वशः' इति स्यात् ।

(उ)क्तोऽयं वेदिकावन्धो भागैरित्यर्धपञ्चमैः ।

अर्धपञ्चमभागैः स्याज्जङ्घोच्छालकसंयुता ॥ १२ ॥

त्रिभि + + + + + भूत्सेधः सवरण्डकः ।

द्वितीयास्य भवेद् भूमिरर्धपञ्चमभागिका ॥ १३ ॥

कुम्भः सोच्छालका + + + + + यापि तावता ।

तृतीया स्या(द्) भूर्विधेया(स्यासादा?) चतुरङ्गिका ॥ १४ ॥

चतुर्थी चतुरो (भागाच्चः समु + + + + + ?) ।

(कु)म्भः सोच्छालकः कूटस्योच्छ्रायोऽपिच पूर्ववत् ॥ १५ ॥

वेदी स्यान् सांशका सार्धपञ्चांशा स्कन्धविस्तृतिः ।

(+ + + + + सेत्सार्ध?) चतुर्गुणितविस्तरान् ॥ १६ ॥

नडे वा कविता गाला भागपञ्चकविस्तृता ।

स्कन्धस्थानं + + + + भागद्विगविस्तृता(ः) ॥ १७ ॥

मेवाद्येन कतेभ्याः प्रवेद्याथ क्र(मात्तु?माद् भु,याथ ।

मूलतः स्कन्धापर्यन्तं यथायाः पृ + + + याः ॥ १८ ॥

नोस्य प्रासादविस्तरः (पञ्चमर्षवः) गृन्दरः ।

(इहोऽन्वे-?) यन् स्याच्छ्रायाद्यावन्प्रमाणतः ॥ १९ ॥

... ये विस्तरः प्रोक्तस्तं + पद्विभिधानेन ।

नोर्गर्भेन कण्डस्य प्रवेद्यः पणितो जयेत् ॥ २० ॥

द्वन्द्वं ननुनामविष्णुं पणित्वमेव ।

द्वन्द्वमेवं त्रिभुवनार्धविभवेन तत्र भागिका च ॥ २१ ॥

द्वन्द्वमेवतः कार्यं प-प्रो-प्र-वीर्षो विपविता ।

अन्वेयात् कण्डयो इवेद्यः सार्धभागिन विष्णुतः ॥ २२ ॥

द्विग्वान् अन्वेद्येना न्यात् तवेव (विपविता ?) ।

अन् अन्वेद्यन्वेद्यः प्रासादो विपयो वाः ॥ २३ ॥

स्योऽन्वेद्ये दन्वेद्ये देवाणां विन्वुं विन्वुं विन्वुं ।

विपयो वाः ॥

द्वन्द्वमेवतः कण्डस्य प्रवेद्यः पणितो जयेत् ॥ २४ ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे द्वादशांशविभाजिते ।
कर्णा द्विभागिकाः कार्याः समं सलिलवर्त्मभिः ॥ २५ ॥
शाला स्यात् पञ्चभिर्भागैः सार्धांशस्तु प्रतीरथः ।
स शालाकर्णयोर्मध्ये कर्तव्यः सोदकान्तरः ॥ २६ ॥
प्रतीरथस्य + + + श्रार्धभागं विनिर्गमः ।
भवेत् (पथविकान्यः स विभागोऽन्य+?) पूर्ववत् ॥ २७ ॥
ते च(?) द्वादशभागा ये दशभिस्तान् विभाजयेत् ।
गर्भभित्तिं तथोत्सेधं जङ्घायाः प्रथमक्षितेः ॥ २८ ॥
वेदीबन्धस्य चोत्सेधं पूर्वमानेन कारयेत् ।
मध्यं पल्लविकान्तं तु शालयोर्दशभिर्भजेत् ॥ २९ ॥
क्षितेरारभ्य पूर्वस्याः स्कन्धं यावत् समुच्छ्रिताः(?)
कार्या द्वादशभिर्भागैरनन्तरनिरूपितैः ॥ ३० ॥
सार्धयैकोनविंशत्या भाजयेद् भूय एव ताम् ।
द्वितीयभूमिकोत्सेधस्तैर्भवत्यथ भागिका(?) ॥ ३१ ॥
तिस्रोऽन्याः पदपादेन हीनाः कार्या यथाक्रमम्
भागेन वेदिकोत्सेधः शाला कार्या च नागरः
ऊर्ध्वमा(द्यं?)क्षितेः कार्या मालायाः शूरेन्द्रा
कोणप्रतिरथा ये तु पञ्चभागसमुच्छ्रिताः
स्तम्भोच्छालकमध्येन तेषु कूटोच्छ्रिताः(?)
अर्धेन प्रविधातव्या भूष्वन्यास्वप्ययं विधिः
स्कन्धविस्ताररेखा भूप्रवे(शःशो) घण्टा =
कलशः शुकनासस्य चोच्छ्रितिः पृथक्
मलयाद्रिरयं प्रोक्तः प्रासादः शुभक
य एनं कारयेत् तस्य तुप्यन्ति मन्त्र
वर्षकोटिसहस्राणि स्वर्गलोके पदं

अथ माल्यवतो लक्ष्म यथावदिति

भजेदर्धयुतैः पञ्चदशभिश्चतुर + + ।

कर्णा द्विभागिकाः कार्याः शाला पञ्चांशविस्तृता ॥ ३८ ॥

कर्णाभ्यर्णेश्चयुगलं पादो(नाः!नं) स्युः प्रतीरथाः ।

शालायाः पार्श्वयोः कार्यौ प(ण्डा?ञ्ज)रौ सार्धभागिकौ ॥ ३९ ॥

पृथक्पञ्जरशालाया + + + + र्धभागिका ।

शालायाः पल्लवी या(चःस्या) निर्गमश्चार्धभागि(काःकः) ॥ ४० ॥

सार्धपञ्चदशोक्ता ये भागास्ता + + + + + ।

गर्भोऽथ भित्तिविस्तारस्तथा खुरचरण्डिका ॥ ४१ ॥

जङ्घाथः क्षितिराद्या च रेखोच्छ्रायश्च पूर्ववत् ।

+ + + + + भाज्यं पादहीनाष्टयुक्तया ॥ ४२ ॥

पञ्चभागसमुत्सेधा द्वितीया भूमिका भवेत् ।

पदपादविही(नाःस्युस्तिस्रोऽन्याभू)मयः (क्रमात्) ॥ ४३ ॥

सार्धांशो वेदिकोच्छ्रायः कर्तव्यो वास्तुवेदिभिः ।

स्कन्धस्य विस्तृती रेखा घण्टा च कलश(स्तथा) ॥ ४४ ॥

(? + + यांस्तरासमाश्च?) स्तम्भकूटादिकल्पना ।

शुकनासोच्छ्रति(श्चेति इति एतानिः) पूर्ववत् ॥ ४५ ॥

इत्येवं माल्य(वान् नाम) प्रासादः परिकीर्तितः ।

य एनं कारयेत् तस्य जायन्ते सर्वसिद्धयः ॥ ४६ ॥

शिवलोके निवासोऽस्य भवेत् कल्पायुरप्ययम् ।

माल्यवान् ॥

नवमालिकसंज्ञस्य लक्षणं कथ्यतेऽधुना ॥ ४७ ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे भक्तेऽष्टादशभिः पदैः ।

कर्णा द्विभागिकाः कार्याः समं सलिलवर्त्मभिः ॥ ४८ ॥

शाला स्यात् पञ्चभिर्भागैः पार्श्वयोर्वालपञ्जरौ ।

सपादभागिकौ तौ च कार्यौ (स)सलिलान्तरौ ॥ ४९ ॥

कर्णाभ्यर्णेश्च प्रतिरथौ (पादौ नालद्वयोन्मितौ ?) ।

तौ सोदकान्तरौ कार्यौ पञ्जरौ सार्धभागिकौ ॥ ५० ॥

शालायां शूरसेनाश्च' इति स्यात् । २. 'पादोनांशद्वयोन्मितौ' इति स्यात् ।

(द्वौ?) बालपञ्जरकस्यैतौ मध्ये प्रतिरथस्य च ।
 प्रतीरथः पञ्जरो वा (वा)लपञ्जरकस्तथा ॥ ५१ ॥
 शालापल्लविकां यावदेतानि तु पृथक् पृथक् ।
 भागार्धनिर्गमानि स्युर्भागा येऽष्टादशोदिताः ॥ ५२ ॥
 विभाजयेत् तान् दशभिर्विभागैर्वास्तुतत्त्ववित् ।
 गर्भो भित्तिः समुच्छ्रायो वेदिकाजङ्घयोरपि ॥ ५३ ॥
 आद्यभूम्युच्छ्रितिस्तद्वदुच्छ्रायः शिखरस्य च ।
 प्रासादेऽस्मिन्निदं सर्वं पूर्व(वत्) कथितं बुधैः ॥ ५४ ॥
 तत् पञ्चत्रिंशता भागैः पादोर्नैः शिखरं भवेत् ।
 द्वितीया भूमिका कार्या ततः पञ्चपदोच्छ्रिता ॥ ५५ ॥
 पदपादविहीनास्तु शेषाः स्युः (सप्त?) भूमयः ।
 पादोनभागाद्वितयं वेदिकायाः समुच्छ्रितिः ॥ ५६ ॥
 स्कन्धस्य विस्तृती रेखा घण्टाथ कलशस्तथा ।
 शालायां शूरसेनाश्च स्तम्भकूटादिकल्पना ॥ ५७ ॥
 शुकनासोच्छ्रितिर्भूमिप्रवेशश्चेह पूर्ववत् ।
 य इमं कारयेद् भक्त्या प्रासादं नवमालिकम् ॥ ५८ ॥
 तुप्यन्ति देवतास्तस्य भवन्ति च समृद्धयः ।

नवमालिकः ॥

इहानीमभिधीयन्ते प्रासादा वृक्षजातयः ॥ ५९ ॥
 वल्लभाः सर्वदेवानां भूमिजाः पुरभूषणम् ।
 आश्रयः श्रेयसामेको यशसामपि राशयः ॥ ६० ॥
 भुक्तिमुक्तिप्रदातारः (समागते कृता?) नृणाम् ।
 तत्रायः कुमुदो नाम कमलः कमलोद्भवः ॥ ६१ ॥
 (कि)रणः शतभृद्भ्य निरवयस्तथापरः ।
 सर्वाङ्गसुन्दरश्चेति प्रासादा वृ(त्?)क्षजातयः ॥ ६२ ॥
 नविस्तरान्नसंक्षेपाहृत्स्नैषामथ कीर्त्यते ।
 तत्रायः कुमुदो नाम सर्वानन्दकृद्दुष्पते ॥ ६३ ॥

घण्टोत्सेधार्धतः कुर्याद् घण्टार्धे पन्नशीर्षकम् ।
 घण्टोत्सेधसमा कुम्भे वीजपूर(वितोःसमु)च्छ्रितिः ॥ ७७ ॥
 (चतुरश्रांजितोच्छ्रयो विस्तारः कलशः स्मृताः?) ।
 य इमं कारयेत् प्रीत्या प्रासादं कुमुदाभिधम् ॥ ७८ ॥
 स मोदते जगद्भर्तुः शिवस्य भवने शुभे ।

कुमुदप्रासादः ॥

अथातः सम्प्रवक्ष्यामः प्रासादं कमलाभिधम् ॥ ७९ ॥
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे दशभागविभाजिते ।
 ततः कर्णार्धसूत्रेण वृत्तं तत्र समालिखेत् ॥ ८० ॥
 विस्तीर्णं पञ्चभिर्भागैः कुर्याद् (भद्र)चतुष्टयम् ।
 ('सुरेन्द्रसमतायस') कुवेराशास्वनुक्रमात् ॥ ८१ ॥
 भवेत् पल्लविका(या)स्तु विस्तारो भागपादिकः ।
 भागेन (का?) कार्या (भद्रा)णां निर्गमा वृत्तवाह्यतः ॥ ८२ ॥
 शालायाः प्रतिभद्रं स्यात् कर्णिकार्धेन निर्ग(ताः)तम् ।
 पादोनभागत्रितयात् कार्या (विःष्ट)त्तस्य विस्तृतिः ॥ ८३ ॥
 द्विभागविस्तरायामौ (रेशुकं द्वयमतोध्यगौ ?) ।
 परिवर्तनया कार्यौ द्वौ कोणौ सोदकान्तरौ ॥ ८४ ॥

पूर्वप्रासादवद् गर्भो विधेयो भित्तयोऽपि च ।
 वेदीवन्धादिकुम्भान्तं सर्वमेतस्य पूर्ववत् ॥ ८५ ॥
 द्वितीयभूमिपर्यन्तमूर्ध्वं प्रथमभूमितः ।
 शूरसेनं विधातव्यं शालासु (विःश्लि)ष्टमुत्तमम् ॥ ८६ ॥
 कूटस्तम्भादिकन्यासाः कोणप्रतिरथादिषु ।
 (शाला स्यान्नागरास्तले?) पञ्चांशा द्वयंशकोपरि ॥ ८७ ॥

शिखरस्य त्रिभागोना शुकाघ्रायाः समुच्छ्रितिः ।
 य एनं कमलं नाम प्रासादं कारयेन्नृपः ॥ ८८ ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे भक्ते + + + + + ।

+ + पञ्चदशांशा ये तान् भजेद् दशभिः पुनः ॥ १०१ ॥

गर्भोऽत्र पूर्ववत् कार्यः पूर्ववद् भित्तयोऽपिच ।

प्राग्वत् खुरवरण्डी स्याज्जङ्घाकूटोच्छ्रितस्तथा ॥ १०२ ॥

पूर्ववच्छिखरोत्सेधस्तं भजेत् पादहीनया ।

चतुरुत्तरविंशत्या भागानां तत्र भूमिका ॥ १०३ ॥

द्वितीया पञ्चभिर्भागैश्चतस्रस्त्वपराः पुनः ।

पादोनपदहीनाः स्युः क्रमशश्चास्य भूमिकाः ॥ १०४ ॥

वेदिका चास्य कर्तव्या सपादांशसमुच्छ्रिता ।

शुकनासोच्छ्रितिः शालास्तम्भकूटविभक्तयः ॥ १०५ ॥

रेखा स्तम्भस्य विस्तारो घण्टाकुम्भादि पूर्ववत् ।

कूटा द्राविड(काः) कार्याः प्रतिभूम्यथ (भौमज?) ॥ १०६ ॥

हरो हिरण्यगर्भश्च हरिर्दिनकरस्तथा ।

एषामेव विधेयोऽसौ नान्येषां तु कदाचन ॥ १०७ ॥

अगुं यः कारयेद् राजा प्रासादं किरणाभिधम् ।

स दुःसहप्रतापः स्यात् सहस्रकरवद् भुवि ॥ १०८ ॥

किरणप्रासादः ॥

कथ्यते शतशृङ्गोऽथ प्रासादः (शुभलक्षणः) ।

वल्लभः सर्वदेवानां (शि)वस्य (तु) विशेषतः ॥ १०९ ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे विंशत्यैकोन(यान्तिभे?) ।

कर्णा(द्वि?)र्ध)भूषेण ततो वृत्तमथ प्रकल्पयेत् ॥ ११० ॥

कर्णा द्विभागिताः कार्याः शाला स्यात् पञ्चनामिका ।

शालापट्टविका चास्य (निर्गता) वृत्तनध्यतः ॥ १११ ॥

द्वौ द्वौ प्रनिरस्यौ कार्या द्विभागितामभिरुह्यते ।

परं सर्वमतो वृत्तमथ (तान्) कोणशालयोः ॥ ११२ ॥

शालाकोणप्रतिरथान्तरेषु स्याज्जलान्तरम् ।

एकोनविंशतिं भागांस्तान् भजेद् दशभिः पुनः ॥ ११३ ॥

गर्भः प्राग्वत् तथा भित्तिः प्राग्वत् खुरवरण्डिका ।

जङ्घोत्सेधोऽथ भूत्सेधः पूर्ववच्छिखरोच्छ्रितिः ॥ ११४ ॥

(^१अथाभिस्ते?) मेरारभ्य पट्टचन्तं शिखरोच्छ्र(तिः?तिम्) ।

भागानामष्टविंशत्या(?) विभजेत् पादहीनया ॥ ११५ ॥

द्वितीयभूमिका तस्य कार्या पञ्चपदोच्छ्रिता ।

रेखास्तु पञ्च कर्तव्याः पदपादोच्छ्रिता भुवः ॥ ११६ ॥

सार्धभागोच्छ्रिता वेदी प्रविधेयास्य तद्विदा ।

(शालास्यस्तम्भक्तयदिविभक्तयदिविभक्तिः?) शुक्रनासिका ॥ ११७ ॥

(रेखाद्यं चकंभस्य?) प्राग्वत् स्यात् सर्वमप्यदः ।

शतशृङ्गमिमं कुर्याद् यः प्रासादं मनोरमम् ॥ ११८ ॥

तस्यैकविंशतिकुला + + + + + + + + ।

कर्ता कारयिता चेति द्वावेतौ जगतां प्रभोः ॥ ११९ ॥

त्रिपुरद्वेषिणः स्यातां नियतं गणनायकौ ।

शतशृङ्गप्रासादः ॥

^३ + + + + + यामो निरवद्यस्य लक्षणम् ॥ १२० ॥

स स्याज्ज्येष्ठोऽथ मध्यश्च कनीयानिति च त्रिधा ।

चत्वारिंशत्करो ज्येष्ठो (पिःमध्यः) त्रिंशत्करो भवेत् ॥ १२१ ॥

विंशत्या च करैरेप कनीयान् समुदाहृतः ।

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे विंशत्या भाजिते पदैः ॥ १२२ ॥

ततः कर्णाद्विसूत्रेण(?) वृत्तमत्र प्रकल्पयेत् ।

कार्या तैः पञ्चभिः शालापल्लवीं वृत्त(म)ध्यतः ॥ १२३ ॥

शालाविभक्तिः प्राग्वत् स्याच्छालयोरेतयोः पुनः ।

कोणे कोणे च पट्कर्णा + भागायामविस्तृताः ॥ १२४ ॥

१. 'अथादिभू' इति द्वात् । २. शालास्य स्तम्भकूटादिभक्तयः' इति स्यात् ।
३. 'प्रासादस्याय वक्ष्यामो' इति स्यात् । ४. 'कर्णाद्विसूत्रेण' इति पाठ्यं माति ।

परिवर्तनया कार्या वृत्तान्तः सोदकान्तराः ।

(ता तागा त्रिभागैः) विभजेद् दशभिस्ततः ॥ १२५ ॥

विमुच्य भूमिकाभागाञ्छेषं गर्भगृहादि यत् ।

तत् पूर्ववद् विधातव्यं तद्वच्च शिखरोच्छ्रितिः ॥ १२६ ॥

तामेकत्रिंशता भागैः साधेच्च विभजेत् पुनः ।

द्वितीयभूमिका कार्या पदैः पञ्चभिरुच्छ्रिता ॥ १२७ ॥

पदपादेन हीनाः स्युः शेषा (पदभासः) भूमिकाः ।

वेदी (पैश्वर्यं?) कार्या पादोनमिह शिल्पिना ॥ १२८ ॥

स्तम्भकूटादि शालानां विन्यासः शूरसेनकाः ।

शुकनासोच्छ्रितिर्घण्टा कलशादि च पूर्ववत् ॥ १२९ ॥

य इमं निरवधारण्यं प्रासादं कारयेत् सुधीः ।

स प्राप्नोति परं स्थानं ब्रह्मादीनां सुदुर्लभम् ॥ १३० ॥

निरवधप्रासादः ॥

सर्वाङ्गसुन्दरं ब्रूमः प्रासादमथ सुन्दरम् ।

भुक्तिमुक्तिप्रदातारं (वरवालय?) मण्डनम् ॥ १३१ ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे चतुर्विंशतिभाजिते ।

कर्णा द्विभागविस्ताराः शाला स्यात् पञ्चभागिका ॥ १३२ ॥

वृत्तान्तः पल्लवी कार्या शेषाः शालासु पूर्ववत् ।

प्रयस्त्रयः प्रतिरथा मध्ये स्युः कर्णशालयोः ॥ १३३ ॥

परिवृत्त्यंश्या) वृत्तमध्ये द्विभागायामविस्तृताः ।

शालाकर्णप्रतिरथप्रान्तेषु स्याज्जलान्त(रेःरम्) ॥ १३४ ॥

त्रिचतुर्विंशतिर्भागा विभाज्याः शिल्पिभिः पुनः ।

विधेयं गर्भभिच्यादि प्राग्बत् स्याच्च वरण्डिका ॥ १३५ ॥

जङ्घादिभूमिकोच्छ्रायः प्राग्ब(द्वि?) शिखरोच्छ्रितिः ।

(तं) पञ्चत्रिंशता भागैर्विभजेच्छिखरोच्छ्रयम् ॥ १३६ ॥

द्वितीया भूमिका चास्य कार्या पञ्चपदोच्छ्रिता ।

पदपादविहीनाः स्युः शेषाः सप्तास्य भूमिकाः ॥ १३७ ॥

त्रिभागो वेदिकोच्छ्रायो भूमिकानां प्रवेशनम् ।
 रेखानशेन कर्तव्यं शेषमेतस्य यत् पुनः ॥ १३८ ॥
 तन् पूर्ववद् विभक्त्यं स्वम्भूत्यादि तद्विदा ।
 सर्वाःस्तुन्दरं योज्य प्रासादं कारयेदमुम् ॥ १३९ ॥
 स स्वर्गस्तुन्दरीभोगानाप्नोति विपुञ्जान् द्विषि ।

सर्वास्तुन्दरः प्रासादः ॥

भवात्प्रजापतयः पश्यामो + + + भूमिजातिषु ॥ १४० ॥

वेद्यापः सासिहोत्र्यथ वज्रसास्त्रिकरांशितः ।

द्वीपा इभ्योऽत्रकल्पयेद्दृष्टानकः ॥ १४१ ॥

पन्थाया इत्यं वि पञ्चमः परिधीयतेः ।

अथानामर्षो षष्ठः + + + शिखरः ॥ १४२ ॥

सप्तमोऽत्रो वि विभक्त्यापगतः सप्तः ।

कर्मोऽत्रोऽप्यत्र पुनमप्य सप्तं विभक्तं ॥ १४३ ॥

सप्तमं नामप्यत्र वि विभक्त्योऽप्यत्रः पदेः ।

अथ सप्तमं विभक्त्या विभक्त्यं कल्पयतः ॥ १४४ ॥

अथ सप्तमं विभक्त्या विभक्त्यं कल्पयतः ।

अथ सप्तमं विभक्त्या विभक्त्यं कल्पयतः ॥ १४५ ॥

अथ सप्तमं विभक्त्या विभक्त्यं कल्पयतः ।

अथ सप्तमं विभक्त्या विभक्त्यं कल्पयतः ॥ १४६ ॥

अथ सप्तमं विभक्त्या विभक्त्यं कल्पयतः ।

अथ सप्तमं विभक्त्या विभक्त्यं कल्पयतः ॥ १४७ ॥

अथ सप्तमं विभक्त्या विभक्त्यं कल्पयतः ।

अथ सप्तमं विभक्त्या विभक्त्यं कल्पयतः ॥ १४८ ॥

अथ सप्तमं विभक्त्या विभक्त्यं कल्पयतः ।

अथ सप्तमं विभक्त्या विभक्त्यं कल्पयतः ॥ १४९ ॥

... ..

स्कन्धश्च षट्पदस्तत्र विधातव्यो विजानता ।
 पङ्गुणेनैव सूत्रेण वेणुकोशं समालिखेत् ॥ १५० ॥
 द्वादशांशो य उत्सेधो भागानां सम + + + ।
 तं कृत्वा पञ्चभिर्भागैः(स्ते द्विःस्तैर्द्विः)तीया भवेन्मही ॥ १५१ ॥
 पदपादोच्छ्रिताः कार्यास्ततस्तिस्रोऽपरा भुवः ।
 (गर्भा गर्भः?) विधातव्यं भूमिकानां प्रवेशनम् ॥ १५२ ॥
 वेदिका च ततः कार्या सार्धभागसमुच्छ्रिता ।
 पादोनद्विपदा घण्टा विभजेत् तां त्रिभिः पदैः ॥ १५३ ॥
 पदं स्यात् कण्ठकोत्सेधो ग्रीवा भागसमुच्छ्रिता ।
 अण्डकं भागिकं तस्यां कर्तव्यं सुमनोरमम् ॥ १५४ ॥
 कर्परं सार्धभागेन कुर्यात् सामलसारकम् ।
 (सीस्तन चाभागायाः?) सार्धभागचतुष्टयात् ॥ १५५ ॥
 घण्टाया विस्तरः कार्यस्तं भजेत् षड्भिरंशकैः ।
 चतुर्भिः कन्दविस्तारात् + + + + + ॥ १५६ ॥
 सार्धभागः समुत्सेधः कलशस्य तदर्धतः ।
 शिखरस्य त्रिभागेन शुकनासा विधीयते ॥ १५७ ॥
 विस्तारा(द्) गर्भमानेन हीना वाष्टांशतो भवेत् ।
 (विस्ताराथ सपादेन?) शूरसेनस्तदूर्ध्वतः ॥ १५८ ॥
 द्वितीयभूमिकातुल्य आद्यभूमेः स ऊर्ध्वतः ।
 शालाविस्तारतुल्यास्तु शूरसेनास्त्रयो मताः ॥ १५९ ॥
 शाला नागरिकाश्चाष्टौ ग्राह्यासविराजिताः ।
 य इमं कारयेद् धन्यः प्रासादं स्वस्तिकं शुभम् ॥ १६० ॥
 तस्यानुजन्म(शातानां?) स्वस्तिश्रीभाजनं भवेत् ।
 स्वस्तिकप्रासादः ॥
 अतः परं प्रवक्ष्यामो वज्रस्वस्तिकसंज्ञितम् ॥ १६१ ॥
 प्रासादं लक्षणोपेतं शक्रादिसुरवल्लभम् ।
 पूर्वोक्तलक्षणोपेते स्वस्तिके(दवमध्यदेः) ॥ १६२ ॥

भद्रे शृङ्गं प्रदातव्यं तीक्ष्णाग्रं सुमनोरमम् ।

पुरस्तान्मण्डपं कुर्यात् सर्वलक्षणसंयुतम् ॥ १६३ ॥

इत्येष कथितः सम्यग् वज्रस्वस्तिकसंज्ञितः ।

य इमं कारयेद् धन्यः प्रासादं सर्वकामदम् ॥ १६४ ॥

स स्याद् भोग्यः सुरस्त्रीणामैन्द्रं च पदमश्नुते ।

वज्रस्वस्तिकप्रासादः ॥

अथ हर्म्यतलं त्रुमः प्रासादं मण्डनं भुवः ॥ १६५ ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे विस्तारायामतः समे ।

कर्णार्धसूत्रपातेन तस्मिन् वृत्तं समालिखेत् ॥ १६६ ॥

तद् वृत्तं विभजेत् क्षेत्रं चतुःपष्ट्या पदैस्ततः ।

कर्तव्या विस्तरेणास्मिन्नष्टौ शालाश्चतुष्पदाः ॥ १६७ ॥

पृथ्वी वृत्तसूत्रेण बाह्यतो भद्रकर्णिके ।

कर्णौ द्वौ द्वौ विधातव्यौ शालाद्वितयमध्यतः ॥ १६८ ॥

(विंद्दि)भागायामविस्तारौ सलिलान्तरभूषितौ ।

परिवर्तनतोऽन्योन्यं कोणान् कुर्वीत षोडश ॥ १६९ ॥

अष्टास्वपिच दिक्ष्वेवं(माना कर्मभिरन्विता?) ।

गर्भो भित्तिश्च वेदी च जङ्घाप्रथमभूमिकाः ॥ १७० ॥

कर्तव्याः पूर्वमानेन स्वस्तिकोक्तेन तद्विदा ।

द्वादशांशो य उत्सेधो विंशत्या तत्र भाजितः ॥ १७१ ॥

सोऽ(त्रा)ष्टाविंशतिविधः कर्तव्य(सूस्त)त्र भूमिकः ।

द्वितीया पञ्चभिर्भागैः पदपादौज्जिताः पृथक् ॥ १७२ ॥

अन्याः स्युर्भूमयः पञ्च वेदी (व्यंद्दिः?) द्विभागिकाः (परा?) ।

चतस्रो मञ्जरीः कुर्यान्नागरैः कर्मभिर्युताः ॥ १७३ ॥

चतस्रः पुनरन्याश्च युक्ता द्रविडकर्मभिः ।

घण्टा स्कन्धस्य विस्तारो वेदिकाकलशोच्छ्रयौ ॥ १७४ ॥

शूरसेनः शुकाघ्रा च स्तम्भिकाकूट(वि?)भक्तयः ।

रेखा(श्च) पूर्ववत् कार्याः प्रासादस्यास्य जानताः ॥ १७५ ॥

प्रासादस्यास्य कर्ता यस्तथा कारयिता च यः ।
 (प्राप्नुतामिव लोकं?) तौ नित्यानन्दसुखोदयम् ॥ १७६ ॥
 हर्म्यतलकप्रासादः ॥

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि प्रासादमुदयाचलम् ।
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे भुजाकर्णसमे शुभे ॥ १७७ ॥
 ततः कर्णार्धसूत्रेण तस्मिन् वृत्तं समालिखेत् ।
 वर्तुलं कारयेत् क्षेत्रमशीतिपदभाजितम् ॥ १७८ ॥

शालाश्वाष्टौ विधातव्याः पूर्वदिक्षु चतुष्पदाः ।
 पल्लवी वृत्तसूत्रेण बाह्यतो भद्रकर्णिके ॥ १७९ ॥
 कुर्याच्छालाद्वयस्यान्तः कोणानां च त्रयं त्रयम् ।
 द्विभागायामविस्तारसलिलान्तरभूषिताः ॥ १८० ॥

एवं कोणा विधातव्या विंशतिश्चतुरस्रतरा ।
 परिवर्तनमन्योन्यमेपां कुर्याद् यथाक्रमम् ॥ १८१ ॥
 एत(त्साः?त्स)मप्रमाणेन गर्भं भित्तिं च वेदिकाम् ।
 जङ्घां च भूमिशिखरं पूर्ववत् परिकल्पयेत् ॥ १८२ ॥
 अष्टौ च मञ्जरीः कुर्याद् युक्ता नागरकर्मणा ।
 रुद्रेश्वरसमायुक्ता नीरधारोपशोभिताः ॥ १८३ ॥

(घण्टाकूटाश्च रेखा च स्तम्भिकाः शूरसेनकः ।
 शुका(घ्रा)स्कन्धविस्तारकलशेन समन्वितः?) ॥ १८४ ॥

स्वस्तिकोक्तविधानेन विदध्यादुदयाचलम् ।
 द्वादशांशो य उत्सेधो विंशत्या तत्र भाजितः ॥ १८५ ॥

स्यात् पञ्चत्रिंशता भाज्यो + + + तत्र भूच्छिद्रा
 पञ्चभागोच्छ्रिता कार्या ततोऽन्याः सम ॥ १८६ ॥

(पदपादोच्छ्रिता भागद्वयो यो तु वेदिका
 + + + + + सर्वलक्षणसंयुताः ॥ १८७ ॥

प्रासादं यस्त्रिमं सम्यग् भक्तिमान् कारयेन्नरः ।
शाश्वतं पदमाप्नोति स दुष्प्रापं सुररपि ॥ १८८ ॥

उदयाचलप्रासादः ।

इदानीं प्रक्रमायातः कथ्यते गन्धमादनः ।
स्वलक्षणप्रमाणान्व्यक्षितिसिन्नुदयाचले (?) ॥ १८९ ॥

कुर्वीत मञ्जरीरष्टौ युक्ता द्राविडकर्मभिः ।
कूटाश्च मणिकाः कार्या नानाकर्मभिरन्विताः ॥ १९० ॥

स्थानेषु शूरसेना + पुरोरेखात्रयं भवेत् ।
शुकनासां च वण्टां च स्कन्धं शिखरमेव च ॥ १९१ ॥

कूटा + स्तम्भिका कुम्भं पूर्ववत् परिकल्पयेत् ।
य इमं कारयेद् धन्यः प्रासादं मण्डनं भुवः ॥ १९२ ॥

विद्याधराधिपः श्रीमान् स भवेन्नात्र संशयः ।
भुङ्क्ते च त्रिविधान् भोगान् सुरस्त्रीभिश्च सेव्यते ॥ १९३ ॥
गन्धमादनप्रासादः ॥

उदयस्य विभेदेन रेखा याः पञ्चविंशतिः ।
लतिनागरभौमानां ताः कथ्यन्ते यथागमम् ॥ १९४ ॥
लतिनां (स्याद्वारंगतोः) नागराणां तु कूटकः ।
भूमिजानां विधातव्या (मायायाः?) पुरतो भुवः ॥ १९५ ॥

शिखरं व्यासकर्णाभ्यां तुल्यं स्याद्धमोत्तमम् ।
भाजनीयचतुर्युक्तविंशस्यादनन्तरम् (?) ॥ १९६ ॥

++++ भागरेखास्तावत्य ईरिताः ।
संख्या सा(?)शोभना भद्रा सुख्या मुमनोरमा ॥ १९७ ॥

शुभा चैव तथा शान्ता कावेरी च सरस्वती ।
लोका च करवीरा च कुमुदा पद्मिनी तथा ॥ १९८ ॥

कनका विकटा देवरम्या च रमणी तथा ।
वसुन्धरा तथा इंसी विशाखा नन्दिनीति च ॥ १९९ ॥

जया च विजया चैव सुमुखा च प्रियानंता ।
इत्येताः कीर्तिता रेखाः ++ यां पञ्चविंशतिः ॥ २०० ॥
रेखा एताः (?) ॥

एताः शुभफलाः सर्वाः कर्तुः कारयितुस्तथा ।
चतुरश्रचतुष्कमेवमुक्तं वृत्ताः सप्त च भूमिजा इमे(?) ॥

इति महाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारनाम्नि वास्तुशास्त्रे

भूमिजप्रासादाध्यायो नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ।

—————:0:—————

अथ मण्डपलक्षणं नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ।

—————:0:—————

इदानीं मण्डपानद्यौ त्रूमः प्रासादसंस्थितान् ।
प्रासादं कल्पयेत् पूर्वं भागशुद्धं सुलक्षणम् ॥ १ ॥
संवृतो वा भवेदेव व्यतिरिक्तोऽथवा क्वचित् ।
(चतुरश्रो विभागैश्च घटंतेः य समंवृतः?) ॥ २ ॥
(पशुभागैर्विघटंते?) व्यतिरिक्तः स कीर्तितः ।
गर्भो गर्भसमः शस्तः (सोन्यघटोपमावहेत्?) ॥ ३ ॥
एवं निवेशयेदग्रे मण्डपान्येव सन्नतः (?) ।
भजेच्छतपदाख्येन ज्येष्ठमध्यकनीयसः ॥ ४ ॥
मण्डपांस्तेषु भद्रः स्यान्नन्दनाख्यस्तथापरः ।
महेन्द्रो वर्धमानश्च स्वस्तिकः सर्वभद्रकः ॥ ५ ॥
महापद्मोऽष्टमश्रैपां गृहराजः प्रकीर्तितः ।
एते यथार्थनामानो लक्ष्मैतेषां प्रचक्ष्महे ॥ ६ ॥
प्रासादाद्विगुणायामः पादोनद्विगुणायतः (?) ।
कार्यो यस्तथा व्यर्थमग्रतः(?) सुरमन्दिरान् ॥ ७ ॥
प्रासादोच्चायतुल्यं वा कार्या मण्डपचिन्तृतिः ।
शुकनासान्विताः कार्यास्ते चालिन्दसमन्विताः ॥ ८ ॥

वातायनं तदर्धेन पादोनं (द्वा?चा)वलोकनम् ।
क्षणमध्ये प्रकुर्वीत चतुर्षीं विधिवच्छुभाम् ॥ २२ ॥
क्षोभायां बाह्यतो रेखा क्षात्या द्रमं च विवर्जयेत्(?) ।
दारुकर्मवि(धे?धि)र्मध्ये यथा स्यात् कथ्यते तथा ॥ २३ ॥
समैः क्षणैः समैः स्तम्भैः समैश्चालिन्दकैर्युतः ।
समैः कर्णैश्च + + + समद्रव्यविधानवान् ॥ २४ ॥
षड्दारुकैस्तिरश्चीनैः कार्याः कैश्चिन्मुखायतैः ।
तुला समतला यद्वा प्रोत्क्षिप्रा मध्यदेशगा ॥ २५ ॥
तुलाषड्दारुकाधी(नांस्त?ना त)दधीनानि तानि वा ।
केचिन्मन्थानसंस्थाना(लीगतियुताप?) ॥ २६ ॥
अथवा मध्यतः कार्या + स्तम्भालिन्दवेष्टिताः ।
महाधरयुता कार्या चतु(ष्क?ष्क्यु)भयतः समा ॥ २७ ॥
गजतालुलुमाकर्म द्रव्यैः स्यादुत्तरोत्तरैः ।
एते नानाविधाः कार्या द्रव्यैरविकलैस्तथा ॥ २८ ॥
या काचिद् रोचते प्राज्ञस्तामेकां कारयेत् क्रियाम् ।
(ल?)क्षणान्तराण्यलङ्कुर्यादिल्लीतोरणकैस्तथा ॥ २९ ॥
वज्रबन्धसमायुक्ता घण्टिकापल्लवैर्युताः ।
हारपद्मदलाकीर्णाः शालभञ्जीविराजिताः ॥ ३० ॥
स्तम्भकाश्च विधातव्याः पञ्चाभरणभूपिताः ।
कण्ठकैरतिचित्रैश्च रथकैस्तोरणैः सह ॥ ३१ ॥
विधानैर्विधाकारैरूपकमोपशोभितैः ।
एवंविधा विधातव्या सीमातुल्या(तु?स्तु)लोदयाः ॥ ३२ ॥
प्राग्ग्रीवकेष्वलिन्देषु मध्ये भागे च पार्श्वयोः ।
न तलानि विधीयन्ते यथाकामं क्रिया भवेत् ॥ ३३ ॥
सीमाद्वारे यथा वायोः प्रवेशं नैव पीडयेत् ।
(तथार्द्धरिका?) कार्या षट्स्योपर्यवस्थिता ॥ ३४ ॥

वेदिव्याजहपोनाली मन्वाराणतुलोदयः(१) ।
 नदसालहं - - भद्रे तज कुर्वीत बुद्धिमान् ॥ २५ ॥
 कथमे भगवोऽप्येवं मानवः कर्मवोऽपि च ।
 कर्मसालो मरुडो गिरिस्थानान्नास्यते हेः ॥ २६ ॥
 कर्मपात्राद्दोषोऽपि कर्म स्याद् भद्रमप्यपि ।
 इत्युवाच ततोऽपि वा दशस्तन्यात्मनां(२) कृतेः ॥ २७ ॥
 ननु यथा तन्नामोऽन्यथा रोने कर्म सा भवेत् ।
 इत्युवाच नारायणः बुद्ध्यासाम्पुच्छित्ते(३) ॥ २८ ॥
 इति सा तत्र इति सा तत्र कथापयान्तरम् ।
मद्रमप्यप्युवाच ॥
 उवाच इति तत्र कर्म सा तत्र कथापयान्तरम् ॥ २९ ॥
 इति तत्र कथापयान्तरम् इति तत्र कथापयान्तरम् ।
 इति तत्र कथापयान्तरम् इति तत्र कथापयान्तरम् ॥ ३० ॥
 इति तत्र कथापयान्तरम् इति तत्र कथापयान्तरम् ।
 इति तत्र कथापयान्तरम् इति तत्र कथापयान्तरम् ॥ ३१ ॥
 इति तत्र कथापयान्तरम् इति तत्र कथापयान्तरम् ।

पक्षद्वये नन्दनस्य भद्रे भिच्याभिवेष्टयेत् ।
गवाक्षकैरलङ्कुर्यान्न कुर्यादुदकान्तरम् ॥ ४७ ॥
स्वस्तिकोऽयं समाख्यातः सर्वलक्षणलक्षितः ।

स्वस्तिकः ॥

अथाभिधीयते सम्यक् सर्वतोभद्रलक्षणम् ॥ ४८ ॥

कर्णे कर्णे (लाङ्गले वेत्सार्धे?) भागद्वयायतम् ।
कार्या परस्परं तेषु दारुक(र्म)विकल्पना ॥ ४९ ॥

भागेनैकेन निर्यातं भागपट्केन चायतम् ।
षड्दारुकद्वयं भद्रं कारयेद् (वाह्यवस्थितम्?) ॥ ५० ॥
सर्वतोभद्रः ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे + प्राग्भागेविभाजयेत् ।
त्यक्त्वा(तेस मध्ये?) कर्णेष्वदध्याल्लाङ्गलानि च ॥ ५१ ॥

चतुर्भागान्तरस्थानि षड्दारुकयुतानि च ।
कर्तव्यं भागानिष्क्रान्तं दिक्षु भद्रचतुष्टयम् ॥ ५२ ॥

चतुष्पदस्तदायामात् सर्वतोऽलिन्दको वहिः ।
प्रतिभद्राणि कुर्वीत चतुर्भागयतानि च ॥ ५३ ॥

निर्गतानि(रभागेन?) दिक्षु स्तम्भान्वितानि च ।
इत्येतैर्लक्षणैर्युक्तो महापद्मः प्रकीर्तितः ॥ ५४ ॥

महापद्मः ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे चतुष्कोणविभूषिते ।
अलिन्दावेष्टितं कुर्यात् प्राग्ग्रीवं मुखसंश्रितम् ॥ ५५ ॥

गवाक्षकाश्च कर्तव्यास्तथा चन्द्रावलोकनाः ।
वातायनास्तथोद्घोताः समन्ताद् रूपशोभिताः ॥ ५६ ॥

गृहराजक्रिया ह्येवं सर्वशोभासमन्विता ।
एवं लक्षणसंयुक्त (मृत्गोमपि?) मन्दिरम् ॥ ५७ ॥

गृहराजः ॥

सपादद्विगुणाः सार्धद्विगुणाः सान्तरोद्भवाः ।
 क्षुद्रप्रासादकेषु स्युर्मण्डपा वहवोऽपरे ॥ ४ ॥
 क्षेत्रालाभे पुनरिमान् सर्वान् सर्वेषु योजयेत् ।
 दैर्घ्यादैर्घ्येण गृह्णीयाद् विस्तृती + + + तथा ॥ ५ ॥
 प्रमाणं मण्डपे(कार्ये?) बलभ्यां गरुडेऽपि च ।
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे दशधा प्रविभाजिते ॥ ६ ॥
 भागैश्चतुर्भिर्भद्रं स्याद् द्वौ भागौ प्रतिभद्रकम् ।
 अग्रतः पृष्ठतो वापि निर्गमो भागिको भवेत् ॥ ७ ॥
 भद्राणां निर्गमो भागं सार्धभागमथापि वा ।
 प्रासादस्य त्रिभागेन चतुर्भागेन वा भवेत् ॥ ८ ॥
 अर्धेनाथ पडंशेन पञ्चांशेनाथ निर्गतिः ।
 प्रासादानां समा कार्या पादोना वा प्रमाणतः ॥ ९ ॥
 कार्या त्रिभागहीना वा मण्डपास्तु समैः क्षणैः ।
 स्वविस्तारसमं भद्रे मुखे चैषा प्रकीर्तिता ॥ १० ॥
 कर्णा द्विभागिका ज्ञेयास्तेषां कोणचतुष्टये ।
 वामदक्षिणभागाभ्यां सह भद्रं पडंशकम् ॥ ११ ॥
 प्रतिभद्रे नचैतस्मिन् विदध्यादग्रपृष्ठयोः ।
 चतुःपष्टिधरोऽयं स्यात् पुष्पको नाम मण्डपः ॥ १२ ॥
 पुष्पकः ॥
 दिक्त्रये प्रतिभद्राणि मुखे प्राग्ग्रीव एव हि ।
 पुष्पभद्रो (तिस्तम्भश्चतुष्कः सुप्रभो?) भवेत् ॥ १३ ॥
 इति स्तम्भद्वयत्यगाद् द्रूमो मण्डपविंशतिम् ।
 (यो पुष्पभद्रस्तु व्रतोऽमृतनन्दनः?) ॥ १४ ॥
 फौसल्यो (सुद्वि?)संकीर्णो गजभद्रो जयावहः ।
 धीपत्तो विजयधैव वस्तुकीर्णभ्रुतिर्जयः ॥ १५ ॥
 यजुभद्रो विशालध सुनिरुष्टः शत्रुमर्दनः ।
 (भायंचो?) दमधैवै मानचो मानभद्रकः ॥ १६ ॥

सुग्रीवो मण्डपः प्रोक्तो भद्रैर्युक्तश्चतुष्पदैः ।

चतुर्भिस्त्रिपदैः कर्णैर्निर्गमैः प्रागुदाहृतैः ॥ १७ ॥

धराणामेव विंशत्या चतुरुत्तरया युतः ।

(अस्मद्वासस्तम्भं षडन्ये द्विधरक्षयात्?) ॥ १८ ॥

सुग्रीवो हर्षनामा च कर्णिकारः पदार्धिकः ।

सिंहश्च सा(ग?)भद्रश्च (सुस्तत्र?) श्रेति सप्तमः ॥ १९ ॥

सप्तविंशतिरित्युक्ता मण्डपानां समासतः ।

एषां विचित्ररूपाणां प्रासादाकृतिधारिणाम् ॥ २० ॥

मिश्रकाश्च परिज्ञेया हस्तैर्द्विव्येकमानतः ।

मूलप्रासादतुल्या वा व्यंशेनार्धेन चोर्जिताः ॥ २१ ॥

द्विस्तम्भशुकनासाग्रे विज्ञेयः पादमण्डपः ।

प्रासादभित्तिमानेन मण्डपे भित्तयः स्मृताः ॥ २२ ॥

(सपादसत्रिभागा वा वीं स्पु + + + + ?) ।

कचिद् भित्तिविहीनांश्च कुर्यादाकाशमण्डपान् ॥ २३ ॥

लतिष्वेप विधिः प्रोक्तः सान्धारेषु स्वमानतः ।

प्रासादो यादृशस्तादृङ् मण्डपोऽपि तदग्रतः ॥ २४ ॥

यानि प्रासादनामानि तानि स्युर्मण्डपेष्वपि ।

वास्तुभेदेन भेदोऽयं मण्डपानां विधीयते ॥ २५ ॥

शतार्धमण्डपस्थानं (नीलार्धं भोजनाय च?) ।

यज्ञार्थो यतिमुख्यार्था विहा(रा)र्थो नृपालदो(?) ॥ २६ ॥

कार्यो (दृशभ्य?) विस्तारो + + + नु शतावधेः ।

हस्तानां संख्यया मानं हस्तेन स्याद् गृहेशितुः ॥ २७ ॥

उपयोगानुसारेण स्वधिया परिकल्पितः ।

आयतश्चतुरश्रो वा कर्तव्यो नाद्यमण्डपः ॥ २८ ॥

शतमष्टोत्तरं ज्येष्ठश्चतुःषष्टिकरोऽथरः ।

कनिष्ठो मण्डपः कार्यो द्वात्रिंशत्करसंमितः ॥ २९ ॥

अद्विविस्तारोऽस्य स्यान्नेपथ्यगृहकादि तु (?) ।
 परिच्छेदानुसारेण स्वधिया परिकल्पयेत् ॥ ३० ॥
 द्वारद्वयं च कर्तव्यं तत्प्रमाणानुसारतः ।
 नेपथ्यगृहके चान्यत् तृतीयं रङ्गसम्मुखम् ॥ ३१ ॥
 समैः क्षणैः समैः स्तम्भैरलिन्दैश्च समैर्युताः ।
 समकर्णाः समा द्रव्यविधेया मण्डपाः शुभाः ॥ ३२ ॥
 (भित्तिमां चतुस्रस्यात्?) कार्यः कामं सनिर्गमः ।
 स्तम्भकोणाश्रितं मानं भित्तिः स्यान्मानवाह्यतः ॥ ३३ ॥
 वेदिर्मण्डपभूपाद्यैः स्यान्मध्ये वाह्यतोऽपि वा ।
 क्षेत्रलोभे तु कर्तव्या भित्तिमानस्य मध्यतः ॥ ३४ ॥
 चतुःषष्टिपदं ज्येष्ठे भद्रं कुर्याच्चतुष्पदम् ।
 एकाशीतिपदं मध्ये भद्रं स्यात् पञ्चभागिकम् ॥ ३५ ॥
 (सततागा?) विभक्ते तु खण्डशः स्यात् कनीयासि ।
 कर्णा द्विभागिकाः कार्या भित्तियुक्तश्च मण्डपः ॥ ३६ ॥
 भद्रप्रासादसदृशौ कर्णभद्रं च भाजयेत् ।
 क्षोभणं वाह्यतो रक्षेत् (पादनं?) स्याद् विपर्यये ॥ ३७ ॥
 क्षरकं कुम्भकलाशा(?) कपोतं जङ्घ्या सह ।
 प्रासादस्यानुरूपेण + + + + + ॥ ३८ ॥
 रुचकश्चतुरश्रः स्यादष्टाश्रिर्वज्र उच्यते ।
 द्विवज्रः षोडशाश्रिश्च प्रतीतो द्विगुणस्ततः ॥ ३९ ॥
 मध्यप्रदेशेऽयं स्तम्भो वृत्तो वृत्तः प्रकीर्तितः ।
 अधान्येन प्रकारेण षोढा कुर्वीत मण्डपान् ॥ ४० ॥
 त्रिपञ्चसप्तनवभिश्चतेक्षणैः उभयसमः (?) ।
 (साद्रमध्यक्षणोऽन्येभ्यः?) सत्र्यंशः सार्ध एव वा ॥ ४१ ॥
 एवमेव प्रकर्तव्यः षड्प्रकारेऽपि मण्डपे ।
 प्रासादगर्भस्यान्तेन (स्युस्ताद्वित्तिरथापिवा?) ॥ ४२ ॥

स्तम्भसूत्रस्य मार्गेण क्षणे मण्डपमध्यगे ।

मूलप्रासादगर्भेण कार्या वा भद्रविस्तृतिः ॥ ४३ ॥

शेषाः क्षणा विधातव्या (समसंख्याक्षतैर्धरैः?) ।

प्रासादच्छादनासाद्भिः(?) सत्र्यंशावापि मण्डपे ॥ ४४ ॥

सदृशां स समञ्चशद् द्वा + समतले भवेत्(?) ।

उच्छ्रायं मण्डपे त्रूमः प्रकारेणापरेण च ॥ ४५ ॥

तलार्थं पदमध्येया + यस्य विहितः शुभः ।

प्रासादे दशधा भक्ते चतुःपञ्चकरे समा ॥ ४६ ॥

नव्यंश मण्डपस्यादुत्तरपट्टयोर्द्वयोः(?) ।

पट्टयुद्सूहस्तेत्वष्टांशं सप्तभागे न वास्तके(?) ॥ ४७ ॥

दशैकादशके पट्टस्युः सार्धभागासु संख्यया ।

त्रयोदशक + + + हस्तयोः सार्धपञ्चकम् ॥ ४८ ॥

सपादाः पञ्चभागाः स्युश्चतुर्दश करे पुनः ।

तदूर्ध्वं विंशतिं यावदुच्छ्रितिः पञ्चभागिकी ॥ ४९ ॥

संमृता (व्यतिरिक्तव्या त यथा वापि?) प्रकल्पयेत् ।

शुकनासस्य यः स्तम्भः स्तम्भो यो मण्डपस्य च ॥ ५० ॥

मिथः श्रिष्टावपि व्यक्तौ यत्र तौ संश्रितौः दसः(?) ।

(प्रासादकोणस्तम्भो य ग्रस्तास्ते ग्रस्तमण्डपाः?) ॥ ५१ ॥

निर्गता व्यतिरिक्ताः स्युश्चतुर्भद्रविभूषिताः ।

तल्लपट्टाञ्छोकनासाव्यातले(?) भूपिरङ्गिका ॥ ५२ ॥

तल्लपट्टमत्रस्तस्या मण्डपानां नियोजयेत् ।

एवं परं परं कुर्यान्निम्नान्निन्नतरं बुधः ॥ ५३ ॥

सममेवाथवा कुर्यान् प्रासादतल्लमानतः ।

ध्रुवादिनाम्नां श्रीङ्कटः प्रवृत्तानां तथैव च (?) ॥ ५४ ॥

द्वचक्रप्रभृतीनां च या संज्ञा या विभक्तयः ।

मण्डपेष्वपि ता ज्ञेया (तस्ते)दसन्वन्धेषु नान्यथा ॥ ५५ ॥

देवालयोत्सवार्थाय विमानानि पृथक् पृथक् ।
 मण्डपादि समाख्यातादूर्ध्वं(?) स्युः सप्तविंशतेः ॥ ५६ ॥
 देवयात्रानिमित्तानि तथैव परिकल्पयेत् ।
 चतुःषष्टेरप्यधिकाः स्तम्भाः स्युः पदसंख्यया ॥ ५७ ॥
 प्रासादाङ्गानि + + स्युस्तत्क्षणान्मण्डपेन च ।
 संवास्तुपदं संबुद्ध्या(?) कर्तव्यो विषमैः क्षणैः ॥ ५८ ॥
 न दोषो जायते तत्र (शिल्पीच्छतेऽत्र?) कारणम् ।
 अथा दारुकलां त्रूमः + + मण्डपसंश्रयाम् ॥ ५९ ॥
 (या)दृक् समतलं तत्र विभागस्तादृगुच्यते ।
 प्रासादस्य विभागेन राजसेनं तु भागिकम् ॥ ६० ॥
 वेदी भागद्वयं ज्ञेया द्वौ भागौ मत्तवारणम् ।
 चन्द्रावलोकनं तद्वद् विधातव्यं द्विभागिकाम् ॥ ६१ ॥
 पट्टो भवति भागार्धमर्धभागिकमासनम् ।
 कूटस्तम्भं तु भागेन सपादेन प्रकल्पयेत् ॥ ६२ ॥
 शीर्षकं(?)करणं चैव सपादं भागमिष्यते ।
 एतत् समतले कार्यं विषमोऽपि क्वचिद् भवेत् ॥ ६३ ॥
 पट्टि(?)र्भागिकी विधातव्याः प्रकारेणापरेण च ।
 अधस्तादूर्ध्वपट्टस्य तलपट्टस्य चोर्ध्वतः ॥ ६४ ॥
 पदे त्रिभागमध्ये वा कार्या चन्द्रावलोकने ।
 तदधस्ताद् विधातव्यो विभागः पञ्चभिः पदैः ॥ ६५ ॥
 भागिकं राजसेनं स्याद् वेदिकापि द्विभागिकी ।
 मत्तवारणकं कार्यं भागद्वितयसंमितम् ॥ ६६ ॥
 दशभक्तेऽथवा कार्या चतुर्भिश्चन्द्रलोकना ।
 भागद्वयेन वेदी च तत्समं मत्तवारणम् ॥ ६७ ॥
 भागेन रूमहारस्तु भागेनैकेन कण्टिका ।
 मत्तवारणपातश्च त्र्यंशं नैकभागिकः ॥ ६८ ॥

भागार्थेनाथवा पातस्तयोर्मध्ये च मध्यमः ।

कूटागारेष्विदं मानमिदं चासनपट्टके ॥ ६९ ॥

भागद्वितयविस्तारमासनं परिकल्पयेत् ।

पिण्डो भागद्विकं तस्य त्र्यंशोना मत्तवारणा(?) ॥ ७० ॥

वेद्यां पिण्डः सपट्टः स्यात् कूटागारे तथैव च ।

राजसेनस्य पिण्डस्तु कूटागारसमो भवेत् ॥ ७१ ॥

कुम्भिकापि च तत्पिण्डा चोदरूर्ध्वतयासनम्(?) ।

विधात् + सशिरःस्तम्भः कूटकं + + + + + ॥ ७२ ॥

राजसेनसमा कुम्भी जङ्घा वेदिसमा भवेत् ।

एवमेतन् विधा प्रोक्तं (सूर्प?)च्छाद्यमथोच्यते ॥ ७३ ॥

मधःपदोर्ध्वपदान्तं पञ्चधा प्रविभाजयेत् ।

उभाभ्यां वा विभिर्यापि भजे(निगतिस्तु सायते?) ॥ ७४ ॥

+ + पदसमांश्व (द्वा?) त्रयोदशविभाजिते ।

शूर्पभागं त्यजेदूर्ध्वं (मधः)दना द्वादशाशिका ॥ ७५ ॥

द्वयोन्निपातं शूर्पस्य पञ्चभागमथापि वा ।

दण्डं कूर्ध्वेयच्छूर्पे मध्ये दण्डं विवर्जयेत् ॥ ७६ ॥

मध्ये च स्तम्भिका वेद्या मत्तवारणकस्य च ।

भामिन पट्टपिण्डस्तु मपादेनाथवा मयेत् ॥ ७७ ॥

तृचुत्वं स्यात् स पदभागपिण्डतुल्यं तु पट्टके ।

स्तम्भः पट्टमयः कार्यः त्रीणिकं त्रिगुणं ततः ॥ ७८ ॥

स्तम्भादप्यशिका कूटो शीरकादपि पट्टकः ।

काशापट्टवदृच्छ्रायः शुकनासस्य पट्टकं ॥ ७९ ॥

पट्टपिण्डोच्छ्रिता वेदी पट्टा पट्टापिका भवेत् ।

म-द्वे स्यात् तृचुत्च्छ्रायः विभर्ताः प्रविर्ताः श्यायः ॥ ८० ॥

स्तम्भमात्रदृच्छ्रायः वा पादस्य च सर्वोर्ध्वे वा ।

त्रिभोत्रयं तादृशैव त्रिदशायाम् ॥ ८१ ॥

कण्ठकश्चे + कार्येन विधातव्यो विचक्षणैः ।

छेदिकायोगतो मध्ये स्तम्भाः स्युर्वाह्यतोऽधिकाः ॥ ८२ ॥

पञ्चाशेनाष्टपष्टेन केशान्तात् सालभञ्जिकाः ।

रथिकाशालभञ्जीभिः स्थिताभिः पट्टिकोर्ध्वतः ॥ ८३ ॥

मध्ये(क?वा)राटकं कार्यं मनोज्ञं वा सरोरुहम् ।

छादयेद् वास + मलं विमानैर्वहुभेदवत् ॥ ८४ ॥

क्षणान्तरेषु रचयेद् दीप्तिकातोरणानि च ।

अन्यथा वा भवेद् वृत्तं चतुरश्रो यथा क्वचित् ॥ ८५ ॥

गजतालुयुतः पट्टस्योर्ध्वमष्टाश्रिरेववा ।

कुर्वीत मध्ये चाष्टाश्रिवाह्यतः पङ्क्तयस्तथा ॥ ८६ ॥

(विशेषं छादये ब्रूमः स्तम्भिकामूत्रद्वासयेत्?) ।

षोडश द्वादशाष्टौ वा + + + चतुरोच्छ्रयाः(?) ॥ ८७ ॥

पादान्यदूर्पर्यत् शिल्पीमवेक्षणवशात्(?) सदा ।

त्रयोविंशतिधा भाज्यमन्तरं पट्टवण्टयोः ॥ ८८ ॥

घण्टादूर्ध्व(?)पद्मपत्री सार्धभागसमुच्छ्रिता ।

उच्छ्रिता सार्धभागेन तदूर्ध्वं (दृष्टरी?) भवेत् ॥ ८९ ॥

कपोता ग्राससंयुक्ताः सार्धभागसमुच्छ्रिताः ।

कण्ठक(स्तःस्तु)द्विभागः स्यादमरस्तु द्विभागिका(?) ॥ ९० ॥

भागद्वयं विनिष्क्रान्तं त्रिभागे गजतालुके ।

(दत्ताभागानुच्छ्रितकौसलं भागं च धालिका भवेत्?) ॥ ९१ ॥

भागद्वयं द्वितीयं च तृतीयं च द्विभागिकम् ।

तस्योपरिष्ठात् कर्तव्या(वलिन्त्यार्धभागिका?) ॥ ९२ ॥

निर्गमः सूत्रमार्गेण एकैकस्य स्वमानतः ।

+ + गर्भकोणःस्यात् पक्ष्मपञ्चाश्व मस्तमे(?) ॥ ९३ ॥

विमृश्य सूत्रधारो वा निर्गमं कल्पयेत् स्वयम् ।

सप्तैर्भागैश्च पत्रैश्च विकटैः पद्मपत्रकैः ॥ ९४ ॥

इस्तितुण्डैर्वरालैश्च शालभञ्जीभिरण्डकैः ।

भल्लिकातोरणैश्चैव भूषणीया चतुष्क्रिका ॥ ९५ ॥

खेचरैर्मा(ल?लय)वन्धैश्च नानाकर्मवितानिभिः ।

मन्दारकैः शुक्तिभिर्वा पद्मैर्वा नागपाशकैः ॥ ९६ ॥

मण्डपं छादयेत् प्राज्ञो बाह्यतस्त्वभिधीयते ।

द्विगुणा(?) मौलिकद्वारात् पादोनद्विगुणं क्वचित् ॥ ९७ ॥

सार्धभागमितं यद्वा त्र्यंशोनं द्विगुणं क्वचित् ।

कापि त्र्यंशाधिकं कार्यं चतुर्द्वारं + मण्डपे ॥ ९८ ॥

द्वारे कार्यौ प्रतीहारौ भल्लिका तोरणास्तथा ।

स्तम्भयोश्च वरालौ द्वौ शालभञ्जिकया सह ॥ ९९ ॥

प्राग्ग्रीवं भद्रभद्रं च रथिका वेदिका वहिः ।

मण्डपे वरकस्योर्ध्वमधस्ताच्छिखरस्य च ॥ १०० ॥

भागार्धं छेदपट्टः स्याच्छेषं कुर्वीत संवृति(?) ।

(शिखरा त्र्यंशयुग्मेन पादोन वा कारयेत् (?) ॥ १०१ ॥

प्रासादे शुकनासं तु (सन्तु सम्भ्रमेऽथवा?) ।

मण्डपस्योदयः स्वस्मादधस्तादथवा भवेत् ॥ १०२ ॥

वामनाद्या अनन्तान्ताः प्राक् प्रोक्ता ये दशो(पयेः!दयाः)

कर्तव्यो मध्यतस्तेषामुदयः कोपि मण्डपे ॥ १०३ ॥

प्रविभज्योदयं त्रेधा ध्वष्टां भागेन कारयेत् ।

तत् त्रिभागेन तिलकस्तिलकार्धेन(कंसना?) ॥ १०४ ॥

क्रमैस्त्रिभिः पञ्चभिर्वा शूर्पैर्निर्माणमिष्यते ।

स्कन्धछाद्यवासने वामेपा सवणोदिता(?) ॥ १०५ ॥

शोभां भद्रेषु कर्णेषु यथायोगं प्रकल्पयेत् ।

वीथीभिश्चन्द्रशालाभिः सिंहकर्णैश्च शोभनैः ॥ १०६ ॥

रथिकाभिर्वरालैश्च तिलकैश्चात्तदर्शनैः ।

शुकनासैर्गत्रैः सिंहैरन्यैस्त्रिभ्रमादिभिः ॥ १०७ ॥

कर्मप्रकारैः कर्तव्या मण्डपे भूषणक्रिया ।
 त्रिविधैरथवा कूटैः सङ्घटैः कक्षकूटकैः ॥ १०८ ॥
 निलकैर्वा तमङ्गैर्वा सुरच्छाद्यैः सघट्टकैः ।
 शृङ्गादिभिः प्रभेदैश्च कार्या मण्डपसंवृतिः ॥ १०९ ॥
 शुक्नासोच्छ्रितेरूर्ध्वं न कार्या मण्डपोच्छ्रितिः ।
 अधस्ताद् यत्र या प्रोक्ता कर्तव्या सा त्वशङ्कितैः ॥ ११० ॥
 बलभ्यां शुक्नासान्ता कर्तव्या मण्डपोच्छ्रितिः ।
 (मण्डपः शुक्नासान्तं योग्रासकुलम् ?) ॥ १११ ॥
 न च तत् पुरमध्ये तु यत्र सा मण्डपोच्छ्रितिः ।
 (स पुत्रयस्तवन्धवतस्य तयः कर्तकारकैः ?) ॥ ११२ ॥
 हीनाधिकप्रमाणेषु (द्विविष्टेषु ?) वास्तुषु ।
 द्रव्यैर्वाधिकप्रमाणेषु (?) स्युरनर्थाः पदे पदे ॥ ११३ ॥
 ऋद्धिः पुरस्य न भवेत् स्यात् पुराधिपतेर्भयम् ।
 क्लृप्तैरेवं मण्डपैः सुप्रमाणै-
 लक्ष्मोपेतैः सद्विधानेन कर्तुः ।
 ऋद्धिः सिद्धिः कारकस्यापि लोके
 क्षेमं च स्याद् भूमिभर्तुर्जयश्च ॥ ११४ १/२ ॥

इति महाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारनाम्नि वास्तुशास्त्रे

सप्तविंशतिमण्डपाध्यायो नाम सप्तपष्टितमः ॥

—————:0:—————

अथ जगत्यङ्गसमुदायाधिकारो नामाष्टपष्टितमोऽध्यायः ।

—————:0:—————

त्रिदशागारभूत्यर्थं भूपाहेतोः पुरस्य तु ।
 मुक्तये मुक्तये पुंसां सर्वकालं च शान्तये ॥ १ ॥
 निवासहेतोर्देवानां चतुर्वर्गस्य(हे?) सिद्धये ।
 मनस्विनां च कीर्त्यायुर्यशस्सम्प्राप्तये नृणाम् ॥ २ ॥

जगतीनामथ व्रूमो लक्षणं विस्तरादिह ।
 प्रासादं लिङ्गमित्याहुः(स्त्रिग?)ल्यनाद् यतः ॥ ३ ॥
 ततस्तदाधारतया जगती पीठिका मता ।
 आकारविस्तृतायामानुच्छ्रयं (ते क्रिया?) ॥ ४ ॥
 विना तमङ्गप्रत्यङ्गा कल्पना नापि + क्रमम् (?) ।
 विभक्तिं तिलकन्दानां भद्रविस्तारनिर्गमम् ॥ ५ ॥
 जलाधार(प्रदोश्च?) प्रवेशं निर्गमोद्गमम् ।
 मानसंख्यां च शालानां संस्थानोन्मानलक्षणम् ॥ ६ ॥
 परिक्रमं(तेमेवासां?)संज्ञां च त्रिविधामपि ।
 पट्प्रकारत्वमे(वासां?) सम्भवस्य च कारणः(ऽणम्) ॥ ७ ॥
 मूलशा(लो?ला)परिच्छिन्ति परिक्रमविनिर्गमम् ।
 सञ्चयद्वारसोपानमुण्डिकामण्डसम्भवा(न्) ॥ ८ ॥
 द्वित्र्यादिदेवताधिष्ण्याज्जगतीस्तोरणानि च (?) ।
 युक्तानि लक्षणैः सर्वैर्यथावत् संप्रचक्ष्महे ॥ ९ ॥
 चतुरश्रा समा शस्ता मनोज्ञा सर्वतःपुत्रा ।
 अंशप्रगूढदिग्भागा प्रासादानुगता शुभा ॥ १० ॥
 चतुरश्रायता यद्वा वृत्ता वृत्तायता तथा ।
 अष्टाश्रिर्वा विधातव्या सा संशोध्यादितः क्षितिम् ॥ ११ ॥
 निरूप्य त्रिदशागारं संस्थानोन्मानलक्षणैः ।
 तदाकारवतीं पार्श्वे जगतीं तस्य योजयेत् ॥ १२ ॥
 कनीयसी मध्यमा च ज्येष्ठा चेति त्रिधैव सा ।
 कनीयःप्रभृतिष्वेताः प्रासादेषु नियोजयेत् ॥ १३ ॥
 जगत्यो(ध्रमणीभिः स्फारौकद्वित्रिस्त्रिभिः?) क्रमात् ।
 (नानाशातिशान्तिन्यकनिष्ठाद्या?) मनोरमाः ॥ १४ ॥
 प्रासादस्या(सुःनु)रूपेण साद्रोपाद्गादिसंख्यया ।
 शालास्तासां मताः कर्म प्रोच्यते सामुदायिकम् ॥ १५ ॥

१. 'प्रदेशश्च' इति स्यात् । २. 'तमङ्गानाम्' इति स्यात् ।

(श्री आ द्वादशकरादूर्ध्वमोर्ध्वा?) विंशतिहस्ततः ।

शालात्रिभागं तुर्याशः स्याद्वा द्वात्रिंशतः पुनः(?) ॥ १६ ॥

आसनार्धात्तु पञ्चाशच्छाला(?) प्रासादतो भवेत् ।

बहुदेवकुला या तु प्रासादस्यानुसारतः ॥ १७ ॥

त्रूमः प्रकाराब् शालानां यथायोगमिहाधुना ।

कर्णोद्भवा भ्रमो(च्छा?त्था) च भद्रजा गर्भसम्भवा ॥ १८ ॥

मध्यजा पार्श्वजा चेति भेदास्तासां भवन्ति षट् ।

(विस्तारायामतोस्यभिः कर्णजा पूर्वमारिणा?) ॥ १९ ॥

भ्रमजा तत्प्रमाणेन ++ पादेन वेष्टिता ।

भद्रजा कर्णजातीया सार्धाया(म्य?या) प्रकीर्तिताः ॥ २० ॥

गर्भजा मध्यजा चेति कर्णजाय(स?त)सम्मिते ।

पार्श्वजा भ्रमजाया(सा?मा) स्थानं तासामथोच्यते ॥ २१ ॥

कर्णेषु कर्णजा ख्याता भ्रमजा च परिभ्रमे ।

भद्रेषु भद्रजा ज्ञेया त्रयमध्ये च गर्भजा ॥ २२ ॥

मध्ये व्यवस्थिता या तु पञ्चानां मध्यजा तु सा ।

(पार्श्वसंस्थानश्चतस्रो यास्तासां शान्ताः?) पार्श्वद्वये स्मृताः ॥२३॥

पार्श्वद्वयं स्युः कर्णानां + स्ता अपिच पार्श्वजाः(?) ।

प्रासादविभूतेरर्धं विधातव्या भ्रमन्तिका ॥ २४ ॥

(पदवृद्धतिवाहस्याः कन्दा दिक्षु +++ च ।

सुरसन्धानुसारेण कुर्यादष्टौ विचक्षणः ॥ २५ ॥

(आरभ्य भद्रमालत्या यावत् त्रिंशमत्रिकाम्?)

नवाण्डकाया यावत् स्यादेकत्रिंशत्तमे क्रमात् ॥ २६ ॥

शालाकन्दाः स्मृतास्तासां चतुर्वर्गविभाजिताः ।

चतुष्पदा तत्र सास्या(?) स्याद् द्वादशपदो भ्रमः ॥ २७ ॥

क्रमेणानेन कर्तव्यं शालाकन्दनिवेश(तः?नम्) ।

तदूर्ध्वं तु भ्रमो नास्ति शालागणविभाजने ॥ २८ ॥

(रु?भ)द्राद् भ्रमोऽयं न पुनः कर्णनिर्गमधारिणाम् ।
 रुचकस्येव कर्तव्यः कर्णदेशात् परिक्रमः ॥ २९ ॥
 शालानुसारतो भद्रे विस्तारैः कन्दकाद् वहिः ।
 कर्तव्यो निर्गमस्तत्र बुधैः पदचतुष्टयम् ॥ ३० ॥
 उदकान्तरविस्तारो भागेनार्धेन वा क्वचित् ।
 प्रजाङ्गस्य विधातव्यं क्षोभणं च पदद्वयम् ॥ ३१ ॥
 प्रासादस्य च विस्तारं दत्त्वाग्रे सलिलान्तरम् ।
 गण्डौ तत्सूत्रगौ कार्यौ भ्रमाद् द्विपदनिर्गतौ ॥ ३२ ॥
 प्रासादानां तु विस्तृत्या स्युरेकद्वित्रिनित्रया(?) ।
 कर्णाद् विनिस्मृतौ गण्डौ ज्येष्ठमध्यकनीयसा(म्) ॥ ३३ ॥
 (भवग्रे गुण्डिकाः?) कार्यः कर्णशालाविनिर्ग(मः?ताः) ।
 पात्रामोपानसंयुक्ताः प्रतीहारममाकुल्याः ॥ ३४ ॥
 शलाघ्नी चाग्रतः कार्यो सपयो + गेला दृढा ।
 भ्रमोऽथ जगतीपीठं तत्र कुर्यादिकदस्तकं ॥ ३५ ॥
 प्रासादे विस्तृतस्तुल्यमपुत्रमेव विचक्षणः ।
 द्विदस्तकं तु पादानं व्यंगदीनं त्रिदस्तकम् ॥ ३६ ॥
 चतुदस्ते (तु) कर्तव्ये मागेदस्तद्वयोच्छिन्नम् ।
 चतुष्टया त्रया च + + द्वादशदस्तकम् (?) ॥ ३७ ॥
 कर्नायोमव्यव्येशानुदयान् कल्पयेत् क्रमान् ।
 अथ वा कर्णशालायाः पादानं वाथ तन्ममम् ॥ ३८ ॥
 अनेन (च) प्रकाश्या ज्येष्ठमध्यकनीयौ ।
 प्रासादयोत्रिगन्तुया कर्णप्रासादपानतः ॥ ३९ ॥
 पीठस्य चः सप्तमिन्वा . . . नं विनामयेन ।
 मागेन चतुदं दृष्टात् मागेनैकं चतुर्ना(?) ॥ ४० ॥
 द्वादशस्य चतुदस्तकं पादौ द्विनामं द्वादशं त्रया ।
 द्वादशं नागिदोस्तेनं त्रयस्यत्रयादस्तकम् ॥ ४१ ॥

वरण्डीं भागिकीं कुर्यात् तथा पट्टं च भागिकम् ।
जगत्याः खुरकाद् भागं (प्रचिशोकोद्भक्तः सुरः?) ॥ ४२ ॥

पट्टो भागेन सार्धेन प्रतिष्ठाजगतीखुरान् ।
(खुरकारकुम्भकाकिञ्चित्कुम्भका क्षणरुस्तथा?) ॥ ४३ ॥

(कणकादन्तेरपत्र?) कपोतार्लीं तथैव च ।
पट्टिकानां प्रवेशांश्च नासिकावर्तनास्तथा ॥ ४४ ॥

निम्नोन्नतप्रवेशांश्च विदधीत मनोहरान् ।
+ धिकाभिर्विचित्राभिः कूटैश्चानेकशेखरैः ॥ ४५ ॥
सुविभक्ता विधातव्याः शालानां कन्दका(मूःस्त)ले ।
कर्माण्यतिविचित्राणि स्थानस्थानोचितानि तु ॥ ४६ ॥

कुर्यात् पीठेषु शोभार्थं प्रासादानां विचक्षणः ।
यथा सिंहासनं राज्ञां शोभते मणिदीप्तिभिः ॥ ४७ ॥

तथा प्रासादराजस्य पीठं कर्मभिरुत्तमैः ।
पट्टस्योर्ध्वं विधातव्यमुत्कृष्टं राजसेनकम् ॥ ४८ ॥

पुष्पितैः कमलैर्युक्तं शोभितं भारपुत्रकैः ।
तदर्धं वेदिका देया नानापत्रसमाकुला ॥ ४९ ॥

(रूपं संघटकोपेता ततश्चासमघट्टकः ।
स्तम्भिकाभिरनेकाभिर्धारयेत् तं समन्वितः?) ॥ ५० ॥

तस्योपरि विधातव्यं (करव्यासनसमुत्तमम्?) ।
अन्तरं कणशालानां तलपादार्धपट्टयोः ॥ ५१ ॥

राजसेनयुतां वेदीं तत्रिभागेन कारयेत् ।
वेदिकार्धं त्रिभागं वा तले स्याद् राजसेनकम् ॥ ५२ ॥

कूटारं + त्रिभागेन वेदेरूर्ध्वं मनोहरम् ।
करभात्रसमुत्सेधं कर्तव्यं भक्तवारणम् ॥ ५३ ॥

सुखलीलाशनार्धं तत् सप्रवेशं सनिर्गमम् ।
(गन्द्राग्रे सुकाग्रे?) च प्रतोल्पग्रे तथैव च ॥ ५४ ॥

तोरणं त्रिनिचं ज्ञेयं कर्तव्ययोग्यमोचनम् ।

इत्यं जगत्यागतनस्य गन्धर्वक

प्रासादादीदृश्यं च सम्प्रदिष्टम् ।

विधानमेतज्जगतीषु (नाम-

मन्यथाभिदन्ताः साः लक्षणात् ॥ १५२ ॥

इति श्रीमद्भारतव्याख्ये जगतीषु १२ ॥ १५२ ॥ समग्रं जगत्यागतनस्य गन्धर्वक

जगत्याक्षय्यसमुदायाधिकारात् नामाष्टपण्डितमोऽध्यायः ।

—:—

अथ जगतीलक्षणं नामैकोनमस्ततितमोऽध्यायः ।

—:—

वसुधा वसुधारा (च) वहन्ती च तथाप(रे?रा) ।

श्रीधरा भद्रिका चैव एकभद्रा द्विभद्रिका ॥ १ ॥

त्रिभद्रिका भद्रमाला वैमानी भ्रमगवली ।

स्वस्तिका हरमाला च कुलनीला महीधरी ॥ २ ॥

मन्दारमालिकानल्लेखाथोत्तवमालिका ।

नागारामा मारभव्या तथाच मकरध्वजा ॥ ३ ॥

नन्द्यावर्ता(नं?) च भूपाला पारिजातकमञ्जरी ।

चूडामणिप्रभा चैव तथा श्रवणमञ्जरी ॥ ४ ॥

विश्वरूपादिकमला तथा त्रैलोक्यमुन्दरी ।

गन्धर्ववालिका चान्या विद्याधरकुमारिका ॥ ५ ॥

सुभद्रा च समाख्याता तथान्या सिंहपञ्जरा ।

(वज्रपकुरवाद्याः?) गन्धर्वनगरी तथा ॥ ६ ॥

तथामरावती ज्ञेया रत्नधूमा च नामतः ।

त्रिदशेन्द्रसभा चैव तथान्या देवयन्त्रिका ॥ ७ ॥

चत्वारिंश(द्वि?दि)तीयं स्यादेकोना नामसंख्यया ।

(यमलाम्बरधरा नेत्रा दन्तुडाः खण्डिला सिता?) ॥ ८ ॥

१. 'यमलाम्बुधरा नेत्रा दोर्दण्डा खण्डिला सिता' इति स्यात् ।

अथातः कथ्यते तासां त्रिविभागो दधायथा ।
जगतीनां क्रमेणैव शालानां च यथोदितः ॥ ९ ॥
चतुरश्रीकृते क्षेत्रे (पडेते स?) विभाजिते ।
समं वाचार्थयुक्ते वा गुणेऽथ मुख्यायताम्(?) ॥ १० ॥
मण्डपेनोज्जिते कुर्याज्जगतीमनुस्मारतः ।
द्वौ भागौ मध्यदेशे स्यात् प्रासादो भागिको भ्रमः ॥ ११ ॥
(कर्णादृशां समुज्य?) पार्श्वयोरुभयोः पुरः ।
श्रीखण्डिका विधातव्याः प्रासादमं ++ मिमाम् (?) ॥ १२ ॥
मत्तवारणसंयुक्ता प्रतोल्यादिविभूषिता ।
प्रथमेश्मा) च समाख्याता जगती वसुधाभिधा ॥ १३ ॥
वसुधा वसुधारा स्यात् समायुक्ताग्रशालया ।
निर्गमः पुरतः कार्यः प्रासादस्य प्रमाणतः ॥ १४ ॥
+विस्तारस्तथा कार्यस्तं चतुर्धा विभाजयेत् ।
भागिका श्रमणी कार्या शेषशाला द्विभागिका ॥ १५ ॥
मुण्डिका चापि पूर्वोक्तमानेनैवायता भवेत् ।
वसुधा च पुनः कर्णशालाभ्यां राजसिद्धिका ॥ १६ ॥
प्रासादाद्येन ते कार्येभ्यो कर्णयोस्त्वयोऽपि ।
स्वमानाद्येन च तयोर्भ्रमणी परिकल्पयेत् ॥ १७ ॥
भूलप्रासादविस्तारा कर्तव्या मुण्डिका पुरा ।
शाला स्याद् वसुधा राजसिद्धिका(?) पुरो यदा ॥ १८ ॥
श्रीधरी सा तदा तस्याः पुरोऽथयन्तः पूर्वोत्तः ।
यदा तु संस्कारस्थाने शाले स्तोत्रकर्मस्थाने ॥ १९ ॥
तदप्ये तद्व्यभाषे च तदा सा योऽपि तद्विदुः ।
चतुरश्रीकृते क्षेत्रे पुरोऽथयन्तः विभाजिते ॥ २० ॥
पूर्वोक्तमन्त्रेभ्यो कर्तव्यं तद्विदुः ।
मण्डपस्थानसंयोगाद् वसुधायां कर्तव्ये ॥ २१ ॥

मध्ये देवालयः कार्यश्चतुर्वर्गपदान्वितः ।

बहिर्द्विपदविस्तारो भ्रमस्तस्य समन्ततः ॥ २२ ॥

कर्णे कर्णे च कर्तव्या द्विपदायामविस्तृता ।

चतुर्दिशं कर्णशाला या (पदि?)भ्रमणान्विता ॥ २३ ॥

पदद्वितयविस्तारा त्रिपदायामसंयुता ।

पदिका च भ्रमणा(?) कार्या भद्रशालाश्च सुन्दराः ॥ २४ ॥

वार्यन्तराणि परितः कुर्यान्मध्येषु शालयोः ।

पदमेकं प्रविष्टानि तदर्थं विस्तृतानि च ॥ २५ ॥

शालायाः पृष्ठभद्रे स्यादेकभद्रद्विभद्रिका(?) ।

(कपोकृताभ्यां त्रिभद्राणि पृष्ठकुक्षिषु?) ॥ २६ ॥

शालाभि(स्याःश्वा)थ तिसृभिर्जगती भद्रमालिनी ।

एकमद्रादिचतुष्टयम् ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे चतुर्विंशतिभाजिते ॥ २७ ॥

पञ्चगलक्षणोपेतो मध्ये कार्यः सुरालयः ।

देवालय(स्य)परितस्त्रिपदः स्यात् परिभ्रमः ॥ २८ ॥

ततः शालाविभक्तिश्च कर्तव्या प्रोक्तलक्षणा ।

पञ्चभागायता मध्ये(भूचतुर्विस्तृता?) पदः ॥ २९ ॥

भद्रशालाश्च कर्तव्यास्तन्मध्ये भागिकभ्रमः ।

भद्रस्य पार्श्वद्वितये द्वि(तःप)दायामविस्तृतम् ॥ ३० ॥

शालाद्वयं त्रिधातव्यं द्वादशी गुत + भ्रमम्(?) ।

भागमेकं प्रवेशस्तु तयोः (कर्णः)द्वयोर्भवेत् ॥ ३१ ॥

निम्नस्त्रिन्ना भवन्त्येवं शालादि(कः?शु) नि(ष्ट)व्यपि ।

पदेवोदकमार्गाश्च कार्या भागार्धनिष्मृताः ॥ ३२ ॥

भागमेकं प्रविष्टाश्च भवेद्युदिकत्रयंऽपि ते ।

कर्णां च पुरतः कार्यां भागद्वितयसम्मिता ॥ ३३ ॥

समुच्छिन्ना(?) विमानोऽयं सुरामुरनराचि(ताःतः) ।

सुच्छिन्नायं यदेतस्यां शालाप्रामादसंयुतम् ॥ ३४ ॥

संस्तुता किन्नरैः सिद्धैस्तदा स्याद् भ्रमरावलिः ।
वक्त्रशालाविहीना तु पार्श्वशालाद्वयान्विता ॥ ३५ ॥

तद्रूपा तत्प्रमाणा या स्वस्तिकी सा प्रकीर्तिता ।
प्रासादाभिमुखी शाला स्वस्तिक्यामेव चेद् भवेत् ॥ ३६ ॥

तदानीं हंसमालति विख्याता जगती भुवि ।
मुख्यैस्वस्य पार्श्वद्वितये भागं वार्यन्तरं यदा ॥ ३७ ॥

कृत्वा (प्रासादयद्ग्रेः) भद्रमानेन निर्गमम् ।
प्रासादसंमितं सूत्रं शालास्तु गलभूषिताः ॥ ३८ ॥

शुण्डिका तदवस्थे च मुखे स्याच्छालया विना ।
कुलशैला तदा ज्ञेया हंसमालागमाश्रया ॥ ३९ ॥

सदा महेश्वरस्येष्टा स्कन्दस्य तु विशेषतः ।
अस्या एव यदा शाला पुरोभद्रे विधीयते ॥ ४० ॥

तदा महीधरा प्रोक्ता महीधरमनःप्रिया ।
चतुरश्रीकृते क्षेत्रे साष्टाविंशतिभाजिते ॥ ४१ ॥

चतुःपट्टिपदं मध्ये कुर्याद् देवालयं बुधः ।
चतुष्पदो भ्रमः कार्यो देवागारस्य सर्वतः ॥ ४२ ॥

भ्रमसूत्रस्य कर्णस्था द्विपदायतविस्त्रुताः ।
शालाश्च(तुस्तत्तसः) कर्तव्या भागिकन्नमवेष्टिताः ॥ ४३ ॥

तासां पार्श्वेषु सन्त्यज्य भ्रमाद् भागचतुष्टयम् ।
(शालां कं +) प्रकुर्वीत + भागायतविस्त्रुतम् ॥ ४४ ॥

एकभागिकविस्तारः कर्णः (स्यात्) पार्श्वशालयोः ।
मध्ये भागे जलाध्वा स्याद् विहाय त्रिदशं वहिः ॥ ४५ ॥

द्विभागविस्त्रुतां तां च कुर्याद् भागत्रयायताम् (!) ।
अन्तरेण जलाध्वा स्याद् भद्रपार्श्वज(लाःशा)लयोः ॥ ४६ ॥

१. 'हरमाले'ति लक्षणे पश्यते । २. 'कुलशैले'ति पूर्वं पठिता । ३. 'शाङ्ग-
स्कन्दम्' इति स्याद् ।

स च भागार्धमायामा(त्) प्रविष्टस्तावदेव च ।
 कृत्वा तिसृष्टु दिक्ष्वेवं सुण्डिकाकन्दमध्यतः ॥ ४७ ॥
 प्रासादार्धसमायामौ सम्यक् तुण्डौ निवेशयेत् ।
 तयोरेपिच शाले द्वे भ्रमक्रमविभूषिते ॥ ४८ ॥
 कार्ये मन्दार(शाःमा)ला स्यादेवं हरमनःप्रिया ।
 सुण्डिकायां यदा तस्याः शाला सम्पद्यते तदा ॥ ४९ ॥
 अनङ्गलेखा भवति जगती पार्वतीप्रिया ।
 यत्रास्मिन्नेव विन्यासे मुखशाले विना कृते ॥ ५० ॥
 शुण्डिकागण्ड + + न्यां शाला सोपानमालिका ।
 मुखशालान्विंतां सैवं यदा नागाङ्गना तदा ॥ ५१ ॥
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे द्वात्रिंशद्भाग(विः)भाजिते ।
 चतुःपष्टिपदं मध्ये कर्तव्यं सुरमन्दिरम् ॥ ५२ ॥
 कार्यस्तस्य भ्रमः सम्यक् समन्ताच्च चतुष्पदः ।
 भ्रम(न्तिःन्ती) द्विपदायामे शाले (तु) भ्रमसंयु(तौःते) ॥ ५३ ॥
 स्वप्रमाणाद् विधातव्ये मध्यगे भद्रकर्णयोः ।
 स्युः षोडशप(दःःदाः) कन्दास्तेषु शालाश्चतुष्पदाः ॥ ५४ ॥
 चतुर्ष्वपिच कर्णेषु प्रविष्टा भ्रमजाः पदम् ।
 कर्तव्यं द्विपदायामं भद्रशालायुगं तथा ॥ ५५ ॥
 विस्तारात् प्र + पादोनमन्योन्याभिमुखं भवेत् ।
 आयता(द्) द्वयंशविस्तारा पदेनैकेन वेष्टिता ॥ ५६ ॥
 भद्रशाला विधातव्या सार्धत्रिपदनिर्गमा ।
 सौम्यानिनीवारुणीषु नैर्ऋतीया(म्ययो)रपि ॥ ५७ ॥
 शालास्तिस्रः प्रतिदिशं(मशालामेययायदिना मुरविद्विपः?) ।
 अस्या एव मुखे शाला यदि तन्मकरध्वजा ॥ ५८ ॥
 अमराणां कृतानन्दा कृत्वैनां मोक्षमाप्नुयात् ।
 मुखशालां परित्यज्य यदैकैकाग्रकर्णयोः ॥ ५९ ॥

शाला प्रदीयते सा स्यान्नन्द्यावर्त(यत्यहर्पतेः?) ।

विकर्णकन्दधोराग्रे(?) यदास्याः पृष्ठवंशगा ॥ ६० ॥

द्विभागायामविस्तारा शाला भवति शोभना ।

चतुर्ष्वसंस्थिता(?) शाला शालायाः संमुखी भवेत् ॥ ६१ ॥

ताम्रमूला तदा ज्ञेया ब्रह्मविष्णुह(रि?र)प्रिया ।

यदास्याः पृष्ठवंशस्था (हस्तायाम्योत्तरात्तथा ॥ ६२ ॥

शाले क्रियेते?) तदा ज्ञेया पारिजातकमञ्जरी ।

(वारणीचतुष्टःस्थिता?) शालायाः सम्मुखी भवेत् ॥ ६३ ॥

(ताम्रयाम्यासौम्यासु?) शालाः स्युर्यदि वंशगाः ।

प्रिया स्यात् सर्वदेवानां तदा चूडा(मणिः प्रभोः?) ॥ ६४ ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे चतुरश्रः समन्ततः ।

दशांशः (स्यादुभायान्ता?) मध्ये प्रासादनायकः ॥ ६५ ॥

+ + + पुरतश्चैवं पार्श्वयोरुभयोरपि ।

भ्रमास्तस्या विधातव्याः + + + पञ्चभिः पदैः ॥ ६६ ॥

कर्णकन्दाश्च कर्तव्या भ्रमसूत्राद् वहिः स्थिताः ।

द्विभागायामविस्ताराश्चतुःशालोपशोभिताः ॥ ६७ ॥

अमुनैव क्रमेण स्युर्भद्रकन्दाः पदाधिकाः ।

मूलप्रासादमालायां मालात्रितयधारिणाम्(?) ॥ ६८ ॥

कर्णे कर्णे तु याः शालास्ता द्व्यंशायामविस्तृताः ।

द्विभागिकजलाधारा(स्तथा) भागपरिभ्रमाः ॥ ६९ ॥

पदप्र(पि)ष्टाम्बुपदा भ्रमपद्धतिसंयुताः ।

तुल्याश्चतुर्षु कर्णेषु तुल्या भद्रत्रयेऽपि च ॥ ७० ॥

भागद्वितयविस्तीर्णा भागत्रितयमायताः ।

(सुन?)भ्रमाश्च कर्तव्या भ्रमशालाद्विद्वान्तयोः ॥ ७१ ॥

१. 'तां विवर्षते' इति च ॥ २. 'सुन' इति लक्ष्मणदेवेण पठ्यते । ३. 'मजि-
प्रभा' इति पाठ्यं भाति । ४. ६९ अक्षयिणीयज्ज्वालादीनाम् चिद्विद्वान्मिन् प्रतिभाति ।

शेषं च पूर्ववत् कार्यं शुण्डिकागण्डमण्डनम् ।
 स्यात् कर्णमञ्जरीत्येषा त्रिलोक्यानन्ददायिनी ॥ ७२ ॥
 कर्णमञ्जरिकाभद्रे विभक्ते दशभिः पदैः ।
 द्विभागायामविस्तारां तुर्यां शालां निवेशयेत् ॥ ७३ ॥
 उद (क) क्षणपूर्वाणि मुखान्यासां प्रकल्पयेत् ।
 परिक्रम(स्त्रिःस्तु) सर्वासां भागैकः सर्वतो भवेत् ॥ ७४ ॥
 द्वौ भागौ भद्रकर्णाभ्यां संक्षेपो(भ्याभयपार्श्वयोः) ।
 भागिकोभयविस्तारा भद्रेऽन्या कर्णिका भवेत् ॥ ७५ ॥
 पदैः षोडशभिर्यु(क्तःक्ता)विचित्रभ्रमविभ्र(मं?मा) ।
 भद्रास्या (च) चतुष्की स्यात् पुरतः संवृतान्त(रः?रा) ॥
 श्रीमण्डपं प्रकुर्वीत प्रभूतस्तम्भमण्डितम् ।
 (दितामेतानेन परिक्षिप्तं छाद्यकाले हसंयुत?) ॥ ७७ ॥
 (एश्वास्याद् विश्वरूपे च कस्यायास्तुदपुरस्करा?) ।
 चतुष्किका(भि)स्तिसृभिर्भवेत् त्रैलोक्यसुन्दरी ॥ ७८ ॥
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे भक्ते द्वादशभिः पदैः ।
 त्रिभागायामविस्तारा मध्ये शाला चतुर्मुखी ॥ ७९ ॥
 सर्वतः सार्धभागा(श्च?च) कर्तव्या पदपद्धतिः ।
 तस्याः प्रागुदक + + + + शालाचतुष्टयम् ॥ ८० ॥
 द्विभागायामविस्तारं विधातव्यं सुशोभनम् ।
 भागिकालिन्दकेनैतत् स्यात् प्राक्से+न वेष्टितम् ॥ ८१ ॥
 कक्ष्यास्थाभिर्द्विभागाभिः कर्णिकाभिरलङ्कृतम् ।
 एवैत् कर्णमञ्जर्याः कर्णे + + विधीयते(?) ॥ ८२ ॥
 जगती स्याच्छिवस्येष्टा तदा गन्धर्व(मा?वा)लिका ।
 इय(वे?मे)वापरे भागे चतुर्थ्यां शालयान्त्रि(तं?ता) ॥ ८३ ॥
 विज्ञेया जगती नाम्ना विद्याधरकुमारिका ।
 अपरस्यां चतु(र्थी?र्थीं) तु हित्वा शालां (विनीयते?) ॥ ८४ ॥

ते द्वे + (कुयोः) कुर्वीत सुभद्रां त्रिदशप्रियाम् ।
 (चतसृषु भद्रेषु प्रत्येकं पञ्च कर्णिगा ॥ ८५ ॥
 शालाः स्युर्यादिश्चन्द्राष्टा?) तदा स्यात् सिंहपञ्जरा ।
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे चतुर्दशविभाजिते ॥ ८६ ॥
 त्रिभागायामविस्तीर्णं मध्ये देवकुलं भवेत् ।
 भागेनैकेन कर्तव्यो भ्रमो दिक्षु तिसृष्वथ ॥ ८७ ॥
 प्रासादायामविस्तीर्णे तस्याग्रे मुखमण्डपः ।
 भद्रस्य पार्श्वद्वितये बाह्यतो भद्रविस्तृतम् ॥ ८८ ॥
 शालायुग्मं विधातव्यं त्रिपदायामविस्तृति ।
 भागिक(भद्रमाभ्रम)णोपेतं (यदिकाच्च पयास्वित?) ॥ ८९ ॥
 द्विभागायामविस्तारे भागिकभ्रमणान्विते ।
 शाले द्वे पुरतः कार्ये साम्मुख्याच्च परस्परम् ॥ ९० ॥
 (पञ्चस्वलं?) भवेदेवं पृष्ठभद्रं यदा शुभम् ।
 याम्योत्तरे चतुःशाले (भद्रद्वयपञ्चकञ्जरा?) ॥ ९१ ॥
 पृष्ठभद्रं यदैतस्या + + + न्मध्यशालया ।
 (कक्षाभद्रे तथा स्यायुते?) गन्धर्वनगरी तदा ॥ ९२ ॥
 पञ्च त्रीण्येव भद्राणि पञ्चशालान्वितानि च ।
 (शिशुतत्?) पट्त्रिंशत्तमा ज्ञेया सा जगत्यमरावती ॥ ९३ ॥
 शुण्डिकाग्रे यदैतस्याः शाला सम्पद्यते क्वचित् ।
 तदा स्याद् दन्तचूडेति जर्गती जगतः प्रिया ॥ ९४ ॥
 (इयनि?) शुण्डिकाशाला गण्डशालाद्वयान्विता ।
 त्रिदशेन्द्रसभा ज्ञेया ससुण्डी देवयन्त्रिका ॥ ९५ ॥
 (इति चतुरस्राणां कीर्त्यतेपायताः कासानकामाः) ।
 सप्तभागायते क्षेत्रे भागपञ्चकविस्तृते ॥ ९६ ॥
 द्विभागायतविस्तारे स्तः शाले वामदक्षिणे ।
 चतुष्किकैकभागेन तयोरेवाग्रतो भवेत् ॥ ९७ ॥

भ्रमश्च भागिको मध्ये समन्ताच्च निर्धायते ।
 प्रतोल्या भूपिता खण्डशुण्डिकाभिरलङ्कृता ॥ १८ ॥
 मत्तवारणशोभाढ्या (यमलेखा!) प्रकीर्तिता ।
 यदा स्यात् पृष्ठतः कन्दो भागत्रितयविस्त्रुतः ॥ १९ ॥
 भागत्रितयनिष्क्रामश्चतुर्धा भाजितः पुनः ।
 द्विभागायामविस्तारा शाला भागद्वयं भ्रमः ॥ १०० ॥
 तदा पयोधरा नेत्रा शालाभ्यामग्रपृष्ठयोः ।
 (नेत्राद्याश्चेत्यरशालास्यातां तु काया ॥ १०१ ॥
 पौरस्त्ययोरुभयोः सान्त्रमूत्कन्दो भागनिर्गतः?) ।
 भागमन्तः प्रविष्टश्च विभाज्यः सोऽपि पूर्ववत् ॥ १०२ ॥
 (शालयोः स्यांतमोमानभ्रमयोरपि पूर्ववत् ।
 पार्श्वयोर्भ्रामण्यं चागौ द्वे च चेन्मूलशालायाः ॥ १०३ ॥
 शेषं तु पूर्ववत् सर्वदोर्दण्डा प्रासादाः प्रकीर्तिताः?) ।
 दोर्द(ण्डयोः?ण्डाया)स्तु पार्श्वेऽपि शालासुश्लिष्टकर्णयोः ॥ १०४ ॥
 राक्षसानिलयोः शाले कुर्यादाखण्डला भवेत् ।
 आखण्डालायास्तु यदा पश्चाच्छाला विधीयते ॥ १०५ ॥
 (पयो यं सरयोनि इव वच्छिदेति?) जगती भवेत् ।
 (शिवायं वारुणी यद्वा शालात्रयविभूषिता ॥ १०६ ॥
 शुण्डिकारालय मचेन्माहेन्द्री वंपका तदा ।
 कौकैणेषु यमेलयासाद्यदा शालाचतुष्टय ॥ १०७ ॥
 भद्रत्रयोऽपि तिस्रस्ताः पूर्वभद्रममालकम् ।
 ये कर्ण व + कन्दाः स्युः सार्धत्र्यंशविनिर्गतः?) ॥ १०८ ॥
 चतुर्भिस्तेषु भक्तेषु शाला भागद्वयं भवेत् ।
 भागं भागं भ्रमण्यः स्युः कर्णशाला इमा वहिः ॥ १०९ ॥
 (त्रिनिष्क्रान्ता सृविस्तीर्णा भद्रकन्दास्थिते वहिः ।
 चतुर्भिच्येषुतैः शाला स्युरार्धो भ्रमस्तथा ॥ ११० ॥

१. 'यमलेखा' इति स्यात् ।

पदार्थसंमितः कुष्ठौ जलमार्गो विधीयते ।

पृष्ठसाधोसिकास्तस्या द्वौ कुलामोदिकाष्टमा ॥ १११ ॥

भागार्थयलमाला + + + द्वितयशालिना ।

पृष्ठभद्रेण जगतीतिलकाले केचिस्तुता? ॥ ११२ ॥

एतस्यां शुण्डिकायां स्याच्छाला चेन्मुखभूषणम् ।

असौ + पल्लवा ना(व?म) जगती जायते तदा ॥ ११३ ॥

तिलका गण्डकण्डेषु(?) शा(ला?ले) द्वे भ(व)तो यदा ।

(तेदा सिद्धार्थसंमुखा?) तदा विद्याधरी भवेत् ॥ ११४ ॥

त्रिविस्तृतं द्विनिष्क्रान्तं पृष्ठशालातलं यदि ।

विद्याधर्याः पृष्ठभद्रे तदा यक्षं विनिदिशेत् ॥ ११५ ॥

पट्भागविस्तृते क्षेत्रे दशभागकृतायते ।

द्विभागायामविस्तारं कुर्याच्छालात्रयं बुधः ॥ ११६ ॥

तदग्रे तत्समं कुर्यान्मण्ड(पा अधिवाधिकात्?) ।

यथाकामं प्रकुर्वीत कर्मशोभाविभूतये ॥ ११७ ॥

+ + भागं भ्रमं कुर्यात् तासां पार्श्वचतुष्टये ।

(विशेषकरणायंच शालानां मध्यमरपि?) ॥ ११८ ॥

मत्तवारणसंयुक्ताः सुण्डिकागण्डमण्डिताः ।

इयं त्रिकूटा जगती ख्याता (तृपुपपूर्वा?) ॥ ११९ ॥

त्रिकूटा पूर्ववंशस्था त्रिभागायामविरुता ।

(विदध्यात् सवमां शालां प्राग्बत् र्याचित्रहृदिका?) ॥ १२० ॥

यथा पृष्ठे तथाग्रेऽपि यदि शाला विधीयते ।

तदा सरनिकूटीनि विशेषा जगती बुधः ॥ १२१ ॥

(युक्ता प्राणास्य लाभ्यान्त्रशालाविराजिता) ।

उपमेवाजोत्तमा? ता जगती विमुक्ता हविः ॥ १२२ ॥

नैर्नितानलवाध्याशङ्कान्नास्तद्वैभुता ।

(त्रिहृत्मेवैभुर्दे विभक्तपदत्वा यथा ॥ १२३ ॥

चित्रकूटा क्रमानर्या द्विभजनं पूर्वविक्रवद् विचक्षणः ।
त्रिकूटायामतो रूपे सिद्धिद्वयायामविस्तृतम्? ॥ १२४ ॥

कर्णे कर्णे कृतं कन्दं चतुर्था ग्रविभाजयेत् ।
भागद्वयेन शाला स्याद् भागेन भ्रमणं तथा ॥ १२५ ॥

(मूलतार्थविस्तारं भवतच्चेह मानतः ।
याम्योत्तरे चतुर्भागविस्तार भागं निर्गताम् ॥ १२६ ॥

+++++ भद्रं भागिकद्वयान्वितम् ?) ।
शेषं तु भ्रमणं तत्र मध्यपार्श्वेषु कारयेत् ॥ १२७ ॥

एवमग्रेऽपि शाले द्वे द्वारस्योभयपार्श्वयोः ।
कर्तव्ये भागनिष्क्रान्ते भागिकायामविस्तृती ॥ १२८ ॥

पृष्ठमद्रं च कर्तव्यं सार्धांशद्वयविस्तृतम् ।
द्विभागनिर्गमं युक्तं शालया सार्धभागया ॥ १२९ ॥

याम्योत्तरेण चास्यैव कार्यं शालाद्वयं ततः ।
(प्रमाणे पसन्नकार्ये भागे प्रवेशनम्?) ॥ १३० ॥

शेषो भ्रमः स्याच्छालानां सप्तानां मध्यगस्ततः ।
स्याच्छैवी (श्रयणी?) त्वेषा सर्वाभ्रमणप्रिया ॥ १३१ ॥

अस्या एव मुखे शाला यदा संजायते तदा ।
त्रिविक्रमेति विख्याता जगती जायते शुभा ॥ १३२ ॥

यदा सार्धविनिष्क्रान्ते सार्धांशद्वयविस्तृते ।
पार्श्वमद्रद्वये शाले भवेतां भागविस्तृते ॥ १३३ ॥

+++++ सार्धभागि(कं?क)भ्रमणान्विते ।
(लिप्यते चापि मा शाला?) क्रमायाता तदा भवेत् ॥ १३४ ॥

शालायाः शुष्टिकाग्रे तु त्रिपया सैव जायते ।
(चतुर्थातो श्रोक्ता?) कथ्यन्ते वृत्तजातयः ॥ १३५ ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे चतुर्भागविभाजिते ।
मध्ये देवगृहं वृत्तं सार्धांशायामविस्तृति ॥ १३६ ॥

भ्रमयेज्जगतीवृत्तं (समगां?) भागिकं ततः ।
 पूर्वोक्तविधिना कार्यं पार्श्वतो मत्तवारणम् ॥ १३७ ॥
 गोपुरद्वारशोभाढ्या जगती वलया भवेत् ।
 वलयापृष्ठतः कन्दं मूलशालासमायतम् ॥ १३८ ॥
 पूर्वोक्तविधिना भक्तां शालां कुर्यात् तदर्धतः ।
 कलशेयं समाख्याता जगती कलशाकृतिः ॥ १३९ ॥
 कर्णस्थं द्विपदायामं कर्णशालाचतुष्टयम् ।
 चतुरश्रं भवेद् यत्र (शाताम्ये + ?)भिधीयते ॥ १४० ॥
 सप्तभागायते क्षेत्रे चतुरश्रे समन्ततः ।
 भागांस्त्रीन् वर्जयेदग्रे चतुरः(पृव्यन्तरश्चतान्?) ॥ १४१ ॥
 सार्धांस्त्रीन् पार्श्वयोर्भागांस्त्यक्त्वा (गर्भततो कयेत् ?) ।
 द्विभागायामविस्तारं वृत्तं स्याद् देवमन्दिरम् ॥ १४२ ॥
 भागमेकं भ्रमस्तस्य विधातव्यः समन्ततः ।
 भ्रमण्याः पृष्ठतः कन्दो भागायामविभूषितः ॥ १४३ ॥
 तस्याधेन भवेच्छाला तदर्धेन परिक्रमः ।
 गर्भाद् भागद्वयस्यान्त ईशानानलयोर्दिशोः ॥ १४४ ॥
 द्विभागौ भवतः कन्दावर्धभागप्रवेशितौ ।
 पृष्ठशालोर्ध्वगे तिर्यक्सूत्रे(ण?) दत्ते भ्रमान्तिके ॥ १४५ ॥
 कर्णिकाद्वितयं कार्यं राक्षसानिलयोर्दिशोः ।
 (व्यय?)शालां च कुर्वीत पृष्ठशालासमां ततः ॥ १४६ ॥
 प्राक् (च?) पश्चात् कन्दगर्भ(स्था?स्थ)सूत्रद्वितययोगतः ।
 कुर्वीत कर्णि(का?कां) ती(क्ष्णा?क्ष्णां)पार्श्वयोरुभयोरपि ॥ १४७ ॥
 (शेषा भ?) पूर्ववत् सर्वा शुण्डिकादिक्रिया भवेत् ।
 (यदागभी?) करवरेयमीशादित्रिदशप्रिया ॥ १४८ ॥
 पतस्या एव पृष्ठस्था यदा सन्त्य(प?ष्ट) कर्णि(को?काः) ।
 वामशाले विधीयते नालिनीति तदा भवेत् ॥ १४९ ॥

१. 'सा कर्णेत्' इति स्यात् । २. 'पृष्ठतश्च तान्' इति स्यात् । ३. 'गर्भे ततोऽङ्घ्रयेत्' इति स्यात् ।

(दत्तंशस्य सालिख्यात् तद्यौ दशभिः पदैः ?) ।
 सूत्राणि पातयेत् तस्य ततो दिक्षु विदिक्षु च ॥ १५० ॥
 प्रासादभ्रमणस्यान्ते द्विपदायाम(वःवि)स्वृती(न्) ।
 कुर्वीताष्टसु सम्पातेष्वष्टौ कन्दान् समन्ततः ॥ १५१ ॥
 (विधाय तां चतुर्भक्तां कुर्याद् ज्रामांस्तथा?) ।
 अन्तरेण च कन्दानां कर्तव्यं कर्णिकाष्टकम् ॥ १५२ ॥
 देशात् सार्धं यदा सूत्रे(?) यथा सम्पत्स्यते मिथः ।
 पार्श्वद्वयात् कर्णिकानां संस्थानं स्यात् तथाविधम् ॥ १५३ ॥
 भक्तवैवं सर्वभद्राणि त्रिपदोऽन्तः सुरालयः ।
 पार्श्वभ्रमो व्यर्थपादो(?) दशधा भाजिते भवेत् ॥ १५४ ॥
 कन्दाश्च द्विपदाः कार्या वहिर्दिक्षु विदिक्षु च ।
 अन्योन्याभिमुखस्तेषु शालाः कार्या यथोदिताः ॥ १५५ ॥
 (शक्तियस्ता समीक्षते?) विष्णोरप्रतिमौजसः ।
 कार्येयं तस्य (तान्येस्युः?) (पुण्डरीकविनामतः?) ॥ १५६ ॥
 एतस्याः कर्णिकास्थाने यदा वृत्तं प्रकल्प्यते ।
 तदानीमातपत्रं स्यात् कर्तव्या ब्रह्मणश्च सा ॥ १५७ ॥
 कृत्वा वृत्तायतं क्षेत्रं विभजेद् दशभिः पदैः ।
 तस्य मध्ये विधातव्यं देवागारं पदैस्त्रिभिः ॥ १५८ ॥
 तस्य पार्श्वेषु कर्तव्यो भ्रमः सार्धं(द्वि)भागिकः ।
 द्विभागं वाद्यवृत्तं स्यात् तत्र कुर्यादिमां क्रियाम् ॥ १५९ ॥
 भागैर्द्वादशभिस्तत्र तुल्यमानैर्विभाजयेत् ।
 एकैकं च पुनर्भागं चतुर्धा तेषु भाजयेत् ॥ १६० ॥
 द्विभागायामविस्तारा शाला मध्ये विधीयते ।
 भागिकश्चतुरश्रश्च दिष्टा(?)त्वा(वृःत्रि)तये भ्रमः ॥ १६१ ॥
 यामदक्षिणतः शाले (नौ?) ये भवतः शुभे ।
 ने वृत्ते संविद्यानव्ये संमुखे च परस्परम् ॥ १६२ ॥

१. 'विधाय तां चतुर्भक्तां कुर्याद् दिक्षु भ्रमंस्तथा' इति स्यात् । २. 'विना
 नामतः' इति स्यात् । ३. 'नामां' इति स्यात् ।

(शाला तु खुमागंस्याच्छालार्धभागार्धविस्तृतः?) ।
 कल्प्यस्तेनैव मानेन (सच्चावा?) भ्रमणं भवेत् ॥ १६३ ॥
 जगत्येषा समाख्याता चक्रवालेति नामतः ।
 दिवाकराय कर्तव्या सग्रहायाधवेन्दवे ॥ १६४ ॥
 (समक्षवायभद्रायामात्रिपुक्ताय वा पुनः?) ।
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे दशभागविभाजिते ॥ १६५ ॥
 गर्भात् कोणगसूत्रेण सर्वतो वृत्तमालिखेत् ।
 वह्निस्रिपदविस्तारं कन्दं कुर्याच्चतुष्पदम् ॥ १६६ ॥
 शा(लायां'लां) च द्विपदायामां विस्तारात् सार्धभागिकाम् ।
 शेषं तु भद्रशालायाः समन्ताद् भ्रमणं भवेत् ॥ १६७ ॥
 भद्रस्योभयतो वृत्ते द्विभागायतविस्तृते ।
 शाले च वृत्तयोरन्तर्भागिकायामविस्तृती ॥ १६८ ॥
 याम्यसौम्यापरास्वेवं दिक्षु भद्रत्रयं भवेत् ।
 सार्धमायामविस्तारा(स्तः?त्त)र्धभ्रमणान्विताः ॥ १६९ ॥
 शाला विदिक्षु कर्तव्याः शोभनाश्वतसृष्वपि ।
 भद्रमध्ये स्थितां शालां हित्वा प्राच्या(तु सा) भवेत् ॥ १७० ॥
 सार्धमायामविस्तारा(स्तः?त्त)र्धभ्रमणान्विता ।
 सनक्षत्राय सोमाय कर्तव्या पुष्टिहेतवे ॥ १७१ ॥
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे दशभागविभाजिते ।
 पञ्चभागायतां मध्ये शालां वृत्तां प्रकल्पयेत् ॥ १७२ ॥
 सार्धभागद्वय(स्तः?)मिता देवागारस्य बाह्यतः ।
 (भ्रमण संविद्यातव्य?) कर्णशालाश्च कर्णगाः ॥ १७३ ॥
 कर्णमानं वह्निर्द्वत्तं भ्रमयित्वा(सारन्दः?समन्त)तः ।
 भद्रोपभद्रकर्णेषु वृत्ताः शालाः प्रकल्पयेत् ॥ १७४ ॥
 पदद्वयसमायामा(ः) पदत्रितयविस्तृता(ः) ।
 भागि(का?क)भ्रमणोपेता(ः) शालाः कुर्वन्ति भद्रजाः ॥ १७५ ॥

द्वे भद्रात् पार्श्वयोः शाले द्वे च प्रतिरथाश्रये ।

भागिकायामविस्ता(रा?रे) कुर्यादर्थपदिभ्रमे ॥ १७६ ॥

(वौ?त्रा)हल्यायामतः सार्धभागा(ः?) शालार्धकर्णमा ।

तासां तदर्थमानेन विधातव्यः परिक्रमः ॥ १७७ ॥

प्रविष्टौ तु पदार्धेन भद्रान् प्रतिरथानुभौ ।

इत्येषा जगती प्रोक्ता मानतश्चन्द्रमण्डला ॥ १७८ ॥

अथ वृत्ता ++ त्रूमो जगतीः पद् यथाक्रमम् ।

पञ्चभागायताः क्षेत्रा विस्तरेण चतुष्पदाः(?) ॥ १७९ ॥

विदध्यादायतं वृत्तं (चमस्यां भवभागिकः?) ।

मध्ये स्यात्(त्रिपदास्तामा सद्विपदविस्तृताः?) ॥ १८० ॥

मत्तवारणसंयुक्ता (य?प्र)तोल्यालङ्कृता शुभा ।

सोपानशुण्डिकाग्रान्तं ++ गण्डितमण्डिता(?) ॥ १८१ ॥

उक्तेयं मातुलिश्रीति जगत्यमरवृद्धभा ।

अस्या एव यदा पृष्ठे द्विभागायामविस्तृतिः ॥ १८२ ॥

शाला पूर्वक्रमेण स्यात् तदा ज्ञेया घटीति सा ।

तद्रूपे (तद्यतालालं?) द्वे शाले वामदक्षिणे ॥ १८३ ॥

(यदि पश्चिमशाला च तत्रेस्यायमती जगती तदा?) ।

घटीकर्णेषु सर्वेषु द्विभागायामविस्तृ(ती?ताः) ॥ १८४ ॥

यदि स्युर्भ्रमसंयुक्ता(ः) शाला(ः) प्राग्बद् विभाजिता(ः) ।

(कुरुक्ष्येर्धायंतरिक्षे द्वे च पृष्ठे वार्तन्तदूर्य?) ॥ १८५ ॥

कालिङ्गीयं भवेदेवं (पार्श्वयो अंयुर्लमदात्रेषु?) ।

(पुस्यांसु?एतस्यां तु) यदा शाला शुण्डिकाननसं(त्रिःस्थि)ता ॥

वृत्तायतविनिर्माणा जगती स्या(ष्टः)त् + + + + ।

एता वृत्तायताः ॥

त्रूमोऽथाष्टाश्रिसंस्था(न?ना) जगतीः शुभलक्षणाः ॥ १८७ ॥

चतुरश्रीकृतं क्षेत्रं सपादैर्दशभिर्भजेत् ।

परित्यजेत् ततः सूत्रं कर्णे कर्णे पदत्रयम् ॥ १८८ ॥

१. 'वृत्तायताः' इति स्यात् । २. 'त्रिपदायामा सार्धद्विपदविस्तृता' इति स्यात् ।

सपादांश्चतुरो भागान् मध्यभागेऽवशेषयेत् ।
संसिध्य(तेःति) च साष्टाश्रि तस्यार्धे स्यात् सुरालयः ॥ १८९ ॥
अष्टाश्रिमध्यभागस्थः + शेषं भ्रमणं भवेत् ।
प्रासादश्च (च)तुर्द्वारश्च(च?)तुर्भिर्मण्डपैर्यु(ताः?तः) ॥ १९० ॥
(प्रासादसाकसूत्र?) मुखलिङ्गं निवेशयेत् ।
मूलकन्दार्धतः (कन्दा क्रमादिक्षु च?) ॥ १९१ ॥
तुल्यप्रमाणकानष्टौ चतुर्भागविभाजि(ताःतान) ।
भ्रमशालाश्च पूर्वोक्तक्रमेण परिकल्पयेत् ॥ १९२ ॥
सोपानशुण्डिकागण्ड(स्ताःगो)पुराद्यैरलङ्कृताः ।
(करव्यासामेरुपेता ववा सर्वायमुदाहृता?) ॥ १९३ ॥
कृत्वा पूर्ववदष्टाश्रि क्षेत्रं भद्रं (विःद्वि)धा भजेत् ।
कुर्याद् भागार्धकं भद्रे पक्षयोश्च विनिर्गतम् ॥ १९४ ॥
तद्विस्तारं भजेत् पङ्क्तिभिर्निर्गमस्तैस्त्रिभिः पदैः ।
परिक्रमो भवेत् ++ पार्श्वयोः पृष्ठ(तोऽ)ग्रतः ॥ १९५ ॥
शेषं (शाला)युगं कार्यं भागद्वितयमायतम् ।
सार्धभागिकविस्तारं (संघचेस्यरस्यं च?) ॥ १९६ ॥
अनेनैव प्रकारेण भद्रे भद्रे भवेद् गतिः ।
कर्णभद्रं विधातव्यं त्रिपदायामविस्तृति ॥ १९७ ॥
चतुर्धा भाजिते तस्मिन् भागेन भ्रमणं भवेत् ।
शेषं तु शाला विज्ञेया द्विपदायामविस्तृता ॥ १९८ ॥
विदिग(न्ते)षु सर्वेषु न्यासोऽयमतिमुन्दरः ।
मूलशाला तु कन्दार्धे (भ्रमश्चार्धभ्रमं ततः?) ॥ १९९ ॥
मातृकेयं समाख्याता (जगतुपसरचन्दितकिन्नरोशप्रदिति?) ।
भद्रं ++ पदेभ्यः स्याद् (भद्र?भाग)त्रितयनिर्गतम् ॥ २०० ॥

१. 'कन्दान् क्रमाद् दिक्षु विदिक्षु च' इति स्यात् । २. 'भ्रमश्चार्धभ्रमस्ततः' इति स्यात् ।

मौलिकभ्रमणस्यान्ते त्रिपदायतविस्तृता ।
 शालातिशोभना कार्या सार्धभागभ्रमान्विता ॥ २१३ ॥
 द्विपदायामविस्तारे भागिकभ्रमणान्विते ।
 कर्तव्ये पार्श्वयोस्तस्याः शाले द्वे चारुदर्शने ॥ २१४ ॥
 प्रतिभद्रं विधातव्यं भागपञ्चकविस्तृतम् ।
 भागत्रयं प्रविष्टं च तत्र शाला त्रिभागिकी ॥ २१५ ॥
 भागद्वितयविस्तारा भागिकभ्रमणान्विता ।
 पार्श्वयोः प्रतिभद्रस्य कर्णिके भागनिर्गमे ॥ २१६ ॥
 सार्धभागायते स्यातां कर्णाः शालायुगान्विताः ।
 पूर्ववच्छुण्डिकाद्यं च कमलेयमुदाहृता ॥ २१७ ॥
 चतुर्दशविभक्तासु सप्तस्वस्तिपु(?) कल्पयेत् ।
 निर्गमायामतुल्यासु शालाः पञ्च पृथक् पृथक् ॥ २१८ ॥
 अग्रभद्रे तु कर्तव्यं शालात्रितयमुत्तमम् ।
 इति वि(ज्ञेय?ज्ञैः) समाख्याता शाला वज्रधरप्रिया ॥ २१९ ॥
 इत्थं जगत्यश्चतुरश्रसंस्थाः
 (स्पदायतां?) वर्तुलसन्निवेशाः ।
 (वृत्तायता थस्तियुताश्चयः सम्भ्यग्?)
 जङ्घाः सदा शिल्पिभिरप्रमत्तैः ॥ २२० ॥

इति धीमहाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणवृत्तधारनाम्नि वास्तुशास्त्रे
 जगतीलक्षणाध्यायो नामैकोनसप्ततितमः ॥

—:o:—

अथ लिङ्गपीठप्रतिमालक्षणं नाम सप्ततितमोऽध्यायः ।

—:o:—

अथ प्रमाणं लिङ्गानां लक्षणं चाभिधीयते ।
 (लोहं हस्तत्रिभागेन कनीयसम्?) ॥ १ ॥

(व्यंशवृद्धानावेवं स्युराहस्तात्रतवाविधेः) ।
 (ह्रस्वमध्योत्तमाख्यानि त्रीणि त्रीण्यकल्पकादिभिः ॥ २ ॥
 लिङ्गनामभिः प्रासादस्यानुसारतः?) ।
 अतश्च द्विगुणानि(स्युंवारुणाजानि प्रमाणतः?) ॥ ३ ॥
 (त्रिगुणान्यस्माज्जातानि?) मृत्तिकाप्रभवानि च ।
 स्वस्य स्वस्य कनिष्ठस्य पदेन परिवर्तनात् ॥ ४ ॥
 कनिष्ठायाने(?)हीनं च कर्तव्यं लक्षणं युयैः ।
 (सप्तमे यदि वा तिर्यग्रज्जलोधसनिभाम् ॥ ५ ॥
 स्तम्भद्रातौ दैतकैवलेषा विष्णुवारिता?) ।
 पक्षरेखा विधातव्या लक्षणोद्धरणार्थनी(?) ॥ ६ ॥
 पक्षक्षेत्रे कृते षोढा त्यक्तार्धांशकरैर्वृता(?) ।
 पुत्रार्थिनां पक्षलेखा हिता (राद्यपिर्थिनानामपि?) ॥ ७ ॥
 अष्टभिर्नवभिर्वास्मिन् भक्ते त्यक्त्वांशकावधः ।
 स्यात् पक्षलेखा पङ्क्तिश्च सप्तभिश्चेष्टकामदा ॥ ८ ॥
 यद्वा षोडशभिर्भक्ते विहायार्धोऽशकद्वयम् ।
 (पशुरेखासरैर्नन्दैः स्तयैः शक्रैश्च शस्यते?) ॥ ९ ॥
 लिङ्गेऽङ्गुलानि यावन्ति यवच्यंशैस्तदुन्मितैः ।
 लक्षणाद्वारणा कार्यमन्तरं लक्ष्यरेखयोः(?) ॥ १० ॥
 रेखान्तरेषु (मांशस्य नर्थाशे?) पूर्वकसम्मितम् ।
 खातं कुर्वीत रेखायां विस्तारं च विचक्षणः ॥ ११ ॥
 कुर्यान्न लक्षणे द्वाः(णोद्धारं) लिङ्गे (लोहेच्चरत्रजे?) ।
 वाणलिङ्गे चले चापि (तथातोजाहिलक्षणम् ?) ॥ १२ ॥
 मूजांशमेकादशधा भक्तवोर्ध्वं सर्वतः स(मा?म)म् ।
 तिर्यक् तथैकनवति भागानां शिरसो भजेत् ॥ १३ ॥

१. 'व्यंशवृद्धा नवेवं स्युरा हस्तात्रतवाविधेः' इति स्यात् । २. 'स्युर्दादजानि प्रमाणतः' इति स्यात् । ३. 'त्रिगुणान्यस्मज्जातानि' इति स्यात् । ४. 'विद्यार्थिना-
 ' इति स्यात् । ५. 'लक्षणोद्धरणं कार्यमन्तरे पशुरेखयोः' इति स्यात् ।

भवेत् सहस्रं लिङ्गानां सैकमित्यसमैः पदैः ।

सहस्रलिङ्गमित्युक्तं (पञ्चाङ्गव्यङ्गमेवता?) ॥ १४ ॥

(अर्था विभागं व्रवधा लिङ्गे सर्वमे भावयेत्?) ।

ऊर्ध्वं भागत्रयं त्यक्त्वा भागभागेन कल्पयेत् ॥ १५ ॥

भागेन (शकास्य?) ग्रीवाः कुर्यात् ततः परम् ।

भागद्वयेन (स्कन्धांशपणौ युग्मपटानि च?) ॥ १६ ॥

(पुष्पसंस्थे च?) माशासु विहिते चतसृष्वपि ।

चतुर्मुखं भवेद्विङ्गमर्चितं सर्वकामदम् ॥ १७ ॥

त्रिमु(खं?खे) तु ललाटा(दी)(ना?न्य)ङ्गान्यंशेन साङ्घ्रिणा ।

पृथक् पृथक् विधेयानि शेषांशात् स्कन्धकल्पना ॥ १८ ॥

एकचक्रे(?) तु सार्धेन ललाटा(दान?दीनि) कल्पयेत् ।

नवभक्ते (त्यात्रे?त्यजेद्) द्वौ द्वौ विभागौ पार्श्वयोर्द्वयोः ॥ १९ ॥

विधिरेप चतुर्वक्त्रे (विभक्ते?) पार्श्वयोर्द्वयोः ।

सार्धं सार्धं त्यजेद् (भूषा?)मेकवक्त्रे(र्धशस्य च ?) ॥ २० ॥

चन्द्रार्धालङ्कृतं कार्यं (कू?ज)टाकूटधरं शिरः ।

शिरसो (वर्तते?) कार्या पूर्वप्रोक्तेन वर्त्मना ॥ २१ ॥

(एकत्र चातुरो स्यातां विसृते?) मुखनिर्गमः ।

स्याद्वा विभागै(राकेन्द्रि काराख्यैर्यथाक्रमम्?) ॥ २२ ॥

मुखलिङ्गं न कर्तव्यं लिङ्गात् सर्वसमाहृते ।

सर्वेषां मुखलिङ्गानां द्विदलं पीठमिष्यते ॥ २३ ॥

(तैज दैर्घ्य?) जायन्ते त्रयस्त्रिंशत् सहोदितैः ।

(लो?लौ)हानि तद्वद् दाख्त्थान्य(स्म?श्म)मृ(त्प?त्प्र)भवानि च ॥

तेषां (यवनवाल्यायान्यान्तराणि च ततोऽपि पट्?) ।

चतुराधाश्चतुर्वृद्धा हस्तैः (सहस्तपद्धतः?) ॥ २५ ॥

१. 'एकवक्त्रे' इति स्यात् । २. 'भाग' इति पाठः स्यात् । ६. 'वर्त्मना' इति स्यात् । ४. 'एकत्रिचतुरास्यानां विस्तृतेः' इति स्यात् ।

ये प्रासादा निरन्धारा नवलिङ्गानि तेष्विह ।
 पञ्च+द्वादशाद्येषु साधारेष्व्वा शतार्धतः ॥ २६ ॥
 एकाद्येकोत्तरैहस्तैः शैलजानि प्रचक्षते ।
 प्रासादगर्भमानाद् वा प(ञ्चदःश्चां)शैलिभिरुत्तमम् ॥ २७ ॥
 नवांशैः पञ्चभिर्मध्यं कनीयोऽर्धेन तद् भवेत् ।
 प्रभेदैरन्त(रःरै)स्तेषां यथायोगं त्रिभिस्त्रिभिः ॥ २८ ॥
 षडन्यानि भवन्त्येवं नवलिङ्गानि पूर्ववत् ।
 तेभ्योऽप्यवान्तरैर्भेदैः प्राग्वत् सत्रिविधैर्युता(?) ॥ २९ ॥
 दिशानया दारुजानि '++ यल्लोहजानि च ।
 (दौष्पे?दैर्घ्ये) षोडशधा भक्ते चतुर्भिः सुरपूजितम् ॥ ३० ॥
 लिङ्गं विष्कम्भतो (नाद्यं भूतैः स अंशतैः?) शुभैः ।
 भवेत् सर्वसमं षड्भिराद्याख्यं चतुरश्रकम् ॥ ३१ ॥
 कोणे क(र्मा?र्णा)र्धसूत्रेण लाञ्छिते शेषलोप(मा?ना)त् ।
 अष्टाश्रि स्यात् सप्तभक्ते (हानातुणेशयोरन्य?) ॥ ३२ ॥
 गर्भसीमार्धसूत्रेण वर्तनाद् वृत्तनिर्मि(त?ता) ।
 अथोमध्योर्ध्वभागाः स्युश्चतुरश्रादिकाः क्रमात् ॥ ३३ ॥
 ब्रह्मविष्णुमहेशानां दैर्घ्यालिङ्गे समोत्तमाः ।
 (नमस्तेष्वपि लिङ्गानां थुथुभागतः?) ॥ ३४ ॥
 (पूनाधेवै?) विधातव्यौ भागौ ब्रह्मशिवाश्रयौ ।
 लिङ्गस्य दैर्घ्यं जं पीठे विस्तारोऽसौ विधीयते(?) ॥ ३५ ॥
 लिङ्गविस्तारतश्चान्यत् पार्श्वपीठे विशिष्यते ।
 तत्समो ब्रह्मणो भा(ग?गा)त् संग्रदायापहत्य वा ॥ ३६ ॥
 रुद्रभागो विधातव्यो ब्रह्मभा(गे?गो)ऽपि तद्वशात् ।
 एवं कृते परिहृत(स्वा?स्त्वा)यदोषो भवेदिह ॥ ३७ ॥
 कर्तुः (कैरेष्टेतुश्च?) स्यात् तस्मिन् परिहृते शुभम् ।
 ऊर्ध्वं व्यंशस्य दानेन वर्तनाद् बालचन्द्रमाः ॥ ३८ ॥

१. 'कल्पये' इति स्यात् । २. 'हानात् कर्णाद्ययोरय' इति स्यात् । ३. 'कारयिदुश्च' इति स्यात् ।

(कुक्कुटाण्डचंतुर्यस्य त्रपुसम्भवे तु?) ।

अष्टमां(स्या स?शस्य) तुच्छत्रं दानादर्धस्य वर्तनात् ॥ ३९ ॥

कृतेऽष्टांशे चतुर्धास्मिन् भागवृद्ध्या तदुच्यते ।

पुण्डरीकं विशालाख्यं श्रीवत्सं (शक्रसर्वनम्) ॥ ४० ॥

लिङ्गेषु (लक्षणेद्वार?) कर्तव्यः स च कथ्यते ।

रुद्रभागं त्रिधा भ(क्त्या?क्त्वा) द्वाभ्यां लक्षणमुद्धरेत् ॥ ४१ ॥

(शिरोर्धायतो लिङ्गे लक्षणापि?) तदिष्यते ।

यद्वायताननं पष्ठे कर्त(व्य?व्यं) नवमांशके ॥ ४२ ॥

+ वायं ++ वाकारपक्षरे(खा)विवर्जितम् ।

पार्श्वरेखात्रिभागेन विस्तृतं चतुरश्रकम् ॥ ४३ ॥

प्राग्वदष्टा(स्ति?श्रि) वृत्तं च पडाश्रिच्छत्रमस्तकम् ।

शत्रुमर्दनसंज्ञेन च्छत्रेण समलङ्कृतम् ॥ ४४ ॥

लिङ्गमिन्द्रार्चितं शस्तमैन्द्रदिग्विजयार्थिना(म्?) ।

प्रतिष्ठाप्यमिदं शत्रोर्यद्वा स्तम्भनमिच्छता ॥ ४५ ॥

लोकपालैश्चेति कुर्यात् + त्र्यंशार्धलक्षणम् ।

एन्द्रे वज्राभमध्येऽ(स्या?स्य) (प)क्षरेखा विधीयते ॥ ४६ ॥

स्वर्द्धर्यदलरुद्रांशैः पञ्चभिश्चित्रभावना(म्?) ।

विस्तृतं चतुरश्रं स्यान्मध्ये वृत्ते च पूर्ववत् ॥ ४७ ॥

अश्रिभिः सप्तभिर्युक्तं वृत्तं स्वा(स्त्रा?स्त्र)विवर्जितम् ।

(प्राग्विस्तारार्थविस्तारि लक्ष्मस्योतमस्तकम्?) ॥ ४८ ॥

(पृद्धये?यद्वै)कादशभिर्भक्ते पक्षयोश्च(छिभिः?)स्त्रिभिः ।

लुप्तैरंशैस्तदेवां(शैर्नो?शैर्नो)च्छ्रितं छत्रमिष्यते ॥ ४९ ॥

इदमग्न्यार्चितं लिङ्गं कृत्वाग्नेर्योजयेद् दिशम् ।

चिकीर्षुणारिसन्तापं प्रतिष्ठाप्यमिदं सदा ॥ ५० ॥

१. 'यधुमर्दनम्' इति स्यात् । २. 'लक्षणेद्वार' इति स्यात् । ३. 'त्रिभिः' इति स्यात् ।

स्व(थै?दै)व्यार्धनवांशानां पञ्चकेन प्र(वि)स्तृतम् ।
 कुर्यात् कुण्डं च(ष्टाष्टं च पार्श्वयुगं?) त्रिभिस्त्रिभिः ॥ ५१ ॥
 नवधा सर्वतः कृत्वा त्रींस्त्रीनुत्सृज्य कोणगान् ।
 कुर्वीताप्य(स्र?स्त्र)मेवं स्यात् क्रमाद् वृत्तं विनाश्रिभिः ॥ ५२ ॥
 मूर्धानं दशभिर्भक्त्वा भागात्रितय(ला?लो)पने ।
 पक्षयोर्विहिते कुर्यादुच्छ्रितिं दशमांशतः ॥ ५३ ॥
 लक्षणं पूर्ववत् कार्यं (दण्डाग्रकोर?)मग्रतः ।
 (कैथं यान्यादिष्वि?)++ लिङ्गमेतज्जिगीषुभिः ॥ ५४ ॥
 वधार्थं वा विपक्षाणां सर्वैर्वैवस्वता(न्वि?चि)तम् ।
 (आश्रयवत्कविष्णोसाः किन्त्वर्तुस्यदशापिक ॥ ५५ ॥
 स्वराशिर्मस्तकेरुक्ते?) सार्धभागपरिक्षते ।
 पार्श्वयोः (स्यादभिर्लाभ?) खड्गाग्राभं च शस्यते ॥ ५६ ॥
 (पद्भा?खड्गा)भिधामिदं लिङ्गं प्रतिष्ठाप्य (तु) निर्कृतिः ।
 (अथापश्यन्दिरासत्व?) तच्च(व्यो?यो)गं च शाङ्करम् ॥ ५७ ॥
 (सर्वं सप्तांशकलिविष्वास्यारुणान्वितो?) ।
 चतुर्भिलक्ष्म चैतस्य पाशाग्राभं (कतासिचत?) ॥ ५८ ॥
 लिङ्गमेतत् प्रतिष्ठाप्य (वैरुणास्वादिगासतम्?) ।
 यो(नं?गं)तथाप्तवानैशं कि(न्तै?न्त्वे)तच्छान्तिपुष्टिकृत् ॥ ५९ ॥
 (स्वर्थे द्वादशभागांशैः सप्तभिः पुवतेनिले ।
 वेष्णासांकं शोकैः भक्ते द्वित्रिलोपने परश्वतम्?) ॥ ६० ॥
 विधेयं पूर्ववद् वृत्तं शरच्छत्रं विनापरम् ।
 लक्ष्म ध्वजाग्रवचास्य (त्यैतसृपतांपरिः) ॥ ६१ ॥
 अथाप (मुंदिर्गसेत्वं?) तथा योगं च शामवम् ।
 द्विपदुच्चाटविश्लेष(परौक्षकंपान्विधेश्वाभिः?) ॥ ६२ ॥

१. 'दण्डाग्राकारम्' इति स्यात् । २. 'स्याप्यं गाम्यादिशि' इति स्यात् ।

३. 'अथाप त्वं दिगीशत्वं' इति स्यात् । ४. 'दण्डः स्वादिगीशताम्' इति स्यात् ।

५. 'स्त्रदिगीशत्वं' इति स्यात् ।

प्रतिष्ठाप्यमिदं लिङ्गं (व्यधीयां+?) मनीषिभिः ।

(कार्यवारुणः सव्याक्षं किन्त्वाचोसे गुरुदशाम्?) ॥ ६३ ॥

(पैतांशेमूर्द्धि?) पार्श्वस्थ + पादांशपरिच्युतेः ।

छत्रं स्यात्(परिच्युतेः?) लक्ष्म चैतस्य गदाग्रसदृशं भवेत् ॥ ६४ ॥

एतन्ननेश्वरः कृत्वा (स्वैदिर्गासत्वसाच्च?)वान् ।

योगं च शिवधामाप्त्यै विभू(त्यं?तिं) प्राप्तवानतः ॥ ६५ ॥

(स्वदे?) रुद्रांशकैः पद्भिर्विस्तृतं चतुरश्रकम् ।

(भवंभक्ते त्रयं?) त्यागाद् भवत्य(धा?ष्टा)श्रि पार्श्वयोः ॥ ६६ ॥

वृत्तं तु पूर्ववत् कार्यं कुक्कुटाण्डनिभं शिरः ।

(ज्यंशवस्यैर्नवभिः?) कुक्कुटाण्डमिदं भवेत् ॥ ६७ ॥

(मूपनवभिः पार्श्वयोस्त्रिस्त्रिंशत्तनाः कुक्कुटाण्डकम्?) ।

आश्रित्रयं च कर्तव्यं पूजाभागसमाश्रयम् ॥ ६८ ॥

शू(द्रा?ला)ग्रप्रतिमं लक्ष्म लिङ्गे कर्तव्यमैश्वरे ।

स्यादिदं योगसाम्राज्यज्ञानसम्प्राप्तिकारकम् ॥ ६९ ॥

ब्राह्मे स्याद् रौद्रवत् स(र्वे?र्व) पद्मकुड्मलवच्छिरः ।

लक्ष्मा(स्मा?स्मि)न् कमलाकारं लि(ङ्गं?ङ्गे) कमलजन्म(नि?नः) ॥

लिङ्गमेतत् प्रतिष्ठाप्य प्राजापत्यं प्रजापतिः ।

लेभे पद्मतः (स्थांसिदं व्येपूपदेस्यतिः?) ॥ ७१ ॥

वैष्णवे रौ(द्र)वत् सर्वं शिरोऽस्मिन् कु(न्तु?न्त)सन्निभम् ।

भ(क्ता?क्त्वा) भवजतुल्यं वा कर्तव्यं लक्ष्म वैष्णवे ॥ ७२ ॥

पुण्यक्षेत्रोद्भवमिदं द्विजादीनां (सिताश्रया?) ।

संग्राहयेच्छिलाद्रव्यं (गुक्तयोपितयान्विराम्?) ॥ ७३ ॥

इदं पद्मपङ्कं वा (लोहतू?)भयगर्भितम् ।

अप(कुं?के) वज्रलेपाद्यं कर्तव्यं सिद्धि(सास्तु?)निः ॥ ७४ ॥

१. 'जायन्त्यायां' इति स्यात् । २. 'लहाशे मूर्द्धि' इति स्यात् । ३. 'स्वैदिर्गा-
सत्वसाच्च' इति स्यात् । ४. 'भक्ते भागवत' इति स्यात् । ५. 'स्यान्मिदं भवदे-
द्रुभिः' इति स्यात् ।

भूतये लोहजं लिङ्गं सीसकत्रपुत्रजितम् ।

काञ्चन(पर्यं?)शत्रुच्छेद(काययि संचितम्?) ॥ ७५ ॥

(यास्य लिङ्गोक्तलक्ष्मैतत् त्रापुंसांनागाकुन्मचात्र्यादि?) ।

लोहोद्भवं वा यन्मातृ + + गुह्यकसिद्धिकृत् ॥ ७६ ॥

भिक्ष(क्षु?)णां चलमेतत् स्यान्मु(मूक्षु?मुक्षु?)णां च वेश्मशु ।

श्रेष्ठं समस्त(रान्ताच्छं?) व(ज्जज्जं?ज्जजं) तदरिच्छिदे ॥ ७७ ॥

पद्मरागं (महाभृत्यौ?) सौभाग्या(पर?) मौक्तिकम् ।

पुष्परागम(हा)नीलौ +यातीरसमुद्भवम् ॥ ७८ ॥

यशसे कुलसन्तत्यै तेजसे सूर्यकान्त(र?क)म् ।

ता+च्छं स्फाटिकं सर्वकामदं (शूलारस्रो?) ॥ ७९ ॥

मणिजं + + + श(क्र?त्रु)क्षयाय (पुलका?) तथा ।

सस्यकं सस्यनिष्पच्यै (भोजगं?) दिव्यसिद्धिदम् ॥ ८० ॥

श्रेष्ठं (सारक्त+?) लिङ्गमारोग्याहितचेतसाम् ।

वैकु(त?न्त)कसहावर्तराकायस्कान्तजं हितम् ॥ ८१ ॥

(क्षुद्र सिद्धिपु?) तन्मन्त्र + + + जातिसंस्कृतम् ।

फलं सम्यग् गुणादूह्यमन्यासु मणिजातिषु ॥ ८२ ॥

वर्णाभिधानसंस्थानविशेषाभ्य + तद्विदा ।

(पृथिव्यां सपीठं वा त?) स्यान्नोर्ध्वं नवाङ्गुलान् ॥ ८३ ॥

सिद्धये (चरदारान्तावध्वनकाद्या?) प्रशस्यते ।

सुसंस्थानं मुदीप्तं चेद(वाक्यं पिनयं?) दोषकृत् ॥ ८४ ॥

(मूक्ष्मोपकोगुणोपेत?) बलीयान् सर्वदोषकृत् ।

सान्निध्यकारणं दीप्तिः समस्तमणि(य?ज)न्मनाम् ॥ ८५ ॥

मानोन्मानप्रमाणादित्येषु ग्राह्यं नवा वृधः ।

शूलं हस्तादधः (स्ये?श्रे)यः प्रासादेषु च शस्यते ॥ ८६ ॥

१. 'प्रभव' इति, २. 'महाभृत्यै' इति, ३. 'य तु' इति, ४. 'पृथिव्यां वा सपीठे वा इत्' इति च स्यात् ।

ततश्चलमपि प्राहु(हीणाश्रयसिद्धियो ।
 इतश्चेदकृत्ये सुयवांकं पिण्डिकाधियाङ्गम् ॥ ८७ ॥
 अर्था भागद्वये ता + + भागपिण्डिकावटे?) ।
 वृत्ता भागास्त्रयोऽप्यस्य प्रतिष्ठा स्याद् गुहासु च ॥ ८८ ॥
 क्षेत्रे परिशृहीतेऽसौ देशे देशाधिपक्षयः ।
 [निष्पन्नरूपप्रगुप्तं मण्डलां भाव्यसाकया ॥ ८९ ॥
 सिद्धरालाप्तधौतेस्मिनभिः सिद्धरसं गतम् ।
 यत्रोक्तः गर्भस्तंकास्यात् तत्रालेखात् समा भवेत् ॥ ९० ॥
 करखीज्जटाकाङ्का हरितालविष्टेभिभिः ।
 सर्वेषाभिः प्रविष्टाभिरनालिं ने लेखनीकृतम् ॥ ९१ ॥
 प्रदेशो यानित्यां विभ्रान्ति?] व्यक्तिक्वद् भवेत् ।
 विपरुद्रजटापथ्या(चत्र?)कन्दविभीतकैः ॥ ९२ ॥
 सुदर्शनाश्वमाराभ्यामविदुग्धेन संयुतः ।
 प्रलेपो यदि वा पार्श्वे (चि)ह्वाभिव्यक्तिहेतवे ॥ ९३ ॥
 इदानीमिह पीठानां (स्तथाव?) कथ्यते ।
 मानतो नामतो(र्घाच?)विशेषेतरसिद्धये ॥ ९४ ॥
 (देव्यादि भेदवतीं तु पदेको गर्भमानतः ।
 तत्सिद्धिर्मुखतः प्रोक्तं शुभं पंगे मुक्तयो ॥ ९५ ॥
 कारादिलिङ्गमानेन यामितंन्यमुखं ततः?) ।
 भुक्तये मुक्तये चैतान्युपदिष्टानि मुख्यतः ॥ ९६ ॥
 लिङ्गवद् गर्भमानेन सम्यग्वा (ता)नि कल्पयेत् ।
 लिङ्गदैर्घ्यप्रमाणानि (मानेषु वेदमसा?) ॥ ९७ ॥
 अव्यक्तमुक्तलिङ्गानां समं [विष्पतः ।
 कारादिलिङ्गमानेन यामितान्यनुपङ्गतः ॥ ९८ ॥
 भुक्तये भुक्तये तेनात्फपदिव्यभानां तदर्दाग्रविस्तृतिः ।
 नृपार्कविक्रजायामास्तदर्धोच्छ्रायविस्तृतिः?] ॥ ९९ ॥

उत्तमादि सहायानां(?) सिद्धयै कुर्वीत पीठिकाम् ।
वृत्तं वा चतुरश्रं वा सर्वप्रासादलिङ्गमम् ॥ १०० ॥

वृत्तं व्यक्तेषु न हितं विनाशादि + + + + ।
विधिना पृथिवी + + (पो?पा)वकी पूर्णसंज्ञिता ॥ १०१ ॥

भाभावती त्रपाक्षी(?) च गण्यन्ते ताश्च नामतः ।
इन्द्रादिलोकपालानां कार्या लिङ्गे(व्यचसु?)क्रमात् ॥ १०२ ॥

ऐशानलिङ्गे रौद्रान्ति + + या पीठिका भवेत् ।
ते चैतासु त्रयेऽन्यास्तु(?) भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ॥ १०३ ॥

(पपापपावरावापी वज्ज?) चन्द्रकला स्मृता
संवर्ता नन्दिकाव(ते?र्ता) चैताः साधारणा मताः ॥ १०४ ॥

अथ लक्षणमे(तेषां?तासां) सर्वासामभिधीयते ।
ऐन्द्रलिङ्गा वृत्ता पृथ्वी स्तम्भादौ चतुरश्रिका(?) ॥ १०५ ॥

चतुरश्रस्य यः कर्णस्तच्चतुर्थांशमष्टधा ।
कृत्वांशसप्तकेनास्य (तुर्यात्तर्गतसकल्पनात्?) ॥ १०६ ॥

पाश्चात्यभागयोः पार्श्वे वहिः सूत्रस्थिताव(थे?) ।
वृत्तद्वयस्य भ्रमणं विदधीत विचक्षणः ॥ १०७ ॥

(चतुरश्रे पुरोगर्भसूत्राष्टस्यासवर्धनात् ।
कृतपत्रभमुद्देशं पार्श्वीभ्यां सूत्रमात्रयेत्?) १०८ ॥

लोपनात् त्यक्तभाग(स्या होतासि?) पीठिका भवेत् ।
आग्नेयलिङ्गं स्याच्छ(क्र?त्रु)नाशसन्तापदाहकृत् ॥ १०९ ॥

क्षेत्रे+चतुरश्रेऽस्य द्वादशांशं परित्यजेत् ।
(पामदो गर्भनस्तेन?) वृत्तस्यार्धं समालिखेत् ॥ ११० ॥

इत्यर्धचन्द्राकारोऽयं (सामी?)भवति पीठिका ।
याम्यलिङ्गस्य नगरा(दिक्षिणास्था?)रिनाशनी ॥ १११ ॥

चतुरश्रे विभागार्धवर्धनात् पार्श्वयोर्द्वयोः ।
(पुरिस्वी?) भागवृद्ध्या च सूत्रद्वयन्निपावनात् ॥ ११२ ॥

(रौत्संचत्त्या?) नैर्ऋती स्त्रीमरणद्वेपरोगकृत् ।
 (पूर्वचन्द्रमाकृतिर्णा?) वारुणी परिमेखला(:?) ॥ ११३ ॥
 शान्तिके पौष्टिके (चष्ट?चाथ) मृत्युनाशे(ने?च) पीठिका ।
 प्रतीच्यो(?) पडंशस्य वृद्धिं कृत्वा + + + तः ॥ ११४ ॥
 (गर्भाव?) वृत्तलेखेन यत् सम्पातचतुष्टयम् ।
 (कर्णाभ्यकर्ण?) भवेत् तेन वृत्ति?त्त)स्थानद्वयेन च ॥ ११५ ॥
 पडश्रं सममा(ले)ख्यं यद्वा वज्रसमाकृति ।
 नाभस्वती पीठिका स्यात् (पर्णेनि?)र्मरुतो दिशि ॥ ११६ ॥
 कर्मसूत्राटनाद्येषु विनियोज्या जिगीषुभिः ।
 याक्षी त्रिमेखला वृत्ता वित्ताप्त्यै धनदाचिं(ते?ता) ॥ ११७ ॥
 (गणाद्विमखलाष्पथ्रितः?) ।
 कुर्वीतैकेन खुरकं चतुर्भिर्जाड्यकुम्भकम् ॥ ११८ ॥
 (द्वाभ्यामञ्जं तथैकेन प्रवेशोऽत्र जाड्यकुम्भस्य शस्यते ।
 अञ्जयस्य चतुर्भिस्तैः कर्णिकाया द्वये नराः?) ॥ ११९ ॥
 एकेन कण्ठक(स्या?श्वा)तो निर्यात्येकेन कर्णिका ।
 (विभाजैरं पुजं?) पद्भिस्ततश्चैकेन मेखलाः ॥ १२० ॥
 पद्भ्यं पीठिका ख्याता सर्वकामप्रदायिनी ।
 क्षेत्रे षोडशधा भक्ते भागेन खुरको भवेत् ॥ १२१ ॥
 चतुर्भिं(र्जरातां?) कुम्भद्विभिरेकेन कर्णिका ।
 त्रिभिः कण्ठश्चतुर्भिश्च पूर्ववन्निर्गमो भवेत् ॥ १२२ ॥
 इ(मं?यं) + व्यक्तलिङ्गेषु पीठिका स्यात् पयोधरा ।
 (एवंविधैव चापीठ स्यात्किमुच्यक्तो?) लक्षणे ॥ १२३ ॥
 भक्ते द्वादशभिः पीठमानं द्विभागिको भवेत्(?) ।
 जगती(ति?तु) त्रिभिः (कुंसे?) द्वाभ्यामेकेन वेदिका ॥ १२४ ॥
 कण्ठो द्वाभ्यामथैकेन वेदिका पुनरुत्तरा ।
 एकैकेन तु भागेन ततः स्यात् पीठिकाद्वयम् ॥ १२५ ॥

१. 'पूर्णचन्द्राकृतिः कार्या' कार्या' इति स्यात् । २. 'कर्णाभ्यर्णे' इति स्यात् ।
 ३. 'विभागेरञ्ज' इति स्यात् । ४. 'जगती' इति स्यात् । ५. 'कुम्भो' इति स्यात् ।

एवं पडश्रा कर्तव्या वज्राक्षा पीठिका बुधैः ।

(पीठिका क्षेत्रेण निर्भक्तपोः) भागेन खुरको भवेत् ॥ १२६ ॥

द्वाभ्यां जङ्घाथ भागेन वेदी द्वाभ्यां तु कण्ठ(यैकः) ।

(उभयाभ्यां निर्गमः सा सीच्छिः) चन्द्रकला भवेत् ॥ १२७ ॥

(आपायनायपुद्यौ च पदारैखैव चामृताः) ।

भवेत् पण्मेखलादर्धादूर्ध्वकण्ठोऽथ भागिकः ॥ १२८ ॥

पट्टिकात्रितयं शेषे क्षे(त्रत्रे) स्यान्निर्गमान्तरम् ।

रुद्रार्चिता पीठिकेयं संवर्तेत्यभिधानतः ॥ १२९ ॥

यां कृत्वा प्रकृतेरूर्ध्वं गताः संवर्तकादयः ।

रुद्रावोथस्तराख्यं(?) ते भेजिरे पदमव्ययम् ॥ १३० ॥

षोढा पीठोदये भक्ते भागं स्यात् पट्टिकात्रयम् ।

एकेन कण्ठो भागेन पट्टिकान्यापि भागिका ॥ १३१ ॥

नन्द्यावर्ताङ्किता सेयं नन्द्यावर्तेति कीर्तिता ।

साधारणीयं सर्वेषां लिङ्गानां सर्वसिद्धिदा ॥ १३२ ॥

(भवाकण्ठसुवासध्यानामियं सिद्धखुरा ।

दोदेरन्योनमिथैः) भवन्त्यन्याश्च पीठिकाः ॥ १३३ ॥

मा(सैन)संस्था न कथितास्तासामानन्त्यकारणात् ।

व्यंशेन गर्तः स्यादासां षोडशंशेन मेखला ॥ १३४ ॥

खातश्च नेयः श्वभ्रान्तं मेखलामध्यतो ह्य(तौसौ) ।

(प्राणालार्धासमाः) दैर्घ्यविस्ताराभ्यामुदग्दिशि ॥ १३५ ॥

[पञ्चाशद्विशयंस्ताल सद्वयमन्तरा ।

सदांसद्विभयं ग्रान्ते खातोऽग्रे द्विगुणामुखान् ॥ १३६ ॥

सार्धाभमेखला कार्याः प्राणालः स्वसृतं भागतः ।

गुणागुणास्त्रयो लिङ्गे तान्यापत्रेव?] भावयेत् ॥ १३७ ॥

आवर्ताः शोभनाकाराः शुभाः स्यु + + + + धः ।

(नतुः) पीठन्नह्यशिले शस्ते लिङ्गजात्यनुगे सदा ॥ १३८ ॥

(भर्गःगर्भ)कर्णचतुर्थाशमाना स्याद् ब्रह्मणः शिला ।
 + + + गस्य कर्णेन यद्वा ब्रह्मशिला भवेत् ॥ १३९ ॥
 (यांताभिधेक?) ब्रह्मशिला ब्रह्मांशतो भवेत् ।
 ताव(त्या?ता)भ्यधिका कार्या तस्याः कर्मशिला बुधैः ॥ १४० ॥
 स्थापयेत् (पुरुषत्रया?) शि(वा?वं) मध्ये निवेशयेत् ।
 ब्रह्माणं दक्षिणेनास्य वामतः पुरुषोत्तमम् ॥ १४१ ॥
 अन्यथास्थापनादेपां प्रत्यवायो महान् भवेत् ।
 (त्रिभागौना शचा?) स्यातां कोशान्तश्चक्रिणो भवेत् ॥ १४२ ॥
 (त्रिभागोनस्तिवासातां कोशान्तश्चक्रिणो भवेत् ।
 त्रिभागोन्नतस्यादान्तः कोकस्यान्तः?) पद्मजन्मनः ॥ १४३ ॥
 ब्रह्मविष्णुमहेशानां^१ + + + + निवेशने ।
 प्रमाणमेतेषु (द्विध?) पृथक्स्थानां यदृच्छया ॥ १४४ ॥
 उमामहेश्वरौ यत्र तत्रोमा ब्रह्मविष्णुवत् ।
 आकाशे(?) प्रतिमा (येष्टा?) चत्वारिंशच्च पञ्च च ॥ १४५ ॥
 हस्तान् कार्या त्रिभागोना मध्या हीना तदर्धतः ।
 यात्रार्था प्रतिमा द्वारप्रमाणेन विधीयते ॥ १४६ ॥
 (भव?तच्च) द्वारं त्रिधा (चत्वा?भक्त्वा) पीठं भागेन कल्पयेत् ।
 (ता?द्वा)भ्यां (तु) प्रतिमा कार्या ज्येष्ठा(स्या?यां) मानमीदृशम् ॥
 मध्यायां नवधा द्वारं कृ(ते?त्त्वै)कं भागमुत्सृ(ते?जेत्) ।
 शेषान् भागान् त्रिधा कृत्वा पीठं भागेन कल्पयेत् ॥ १४८ ॥
 अर्चासुभाभ्यां हीनायां विदध्याद् द्वारमष्टधा ।
 ए(व?क)मुत्सृज्य शेषेण + + + + + ॥ १४९ ॥
 पी(ठात्?ठं) त(त्)त्रितयेनार्चासुप(रि?)विष्टां प्रकल्पयेत् ।
 द्वारस्यार्धं त्रिधा कृत्वा द्वाभ्यां पीठं विधीयते ॥ १५० ॥
 (चाकलसिंरुक्तवतयद्वा?) द्वेधा चतुर्धा वा द्वारं कृत्वैकमुत्सृजेत् ।
 शेषं भागत्रयं कृत्वा पीठमर्चा च पूर्ववत् ॥ १५१ ॥

१. 'यावताभ्यांघका' इति स्यात् । २. 'ऋमोऽयं स्याद्' इति पूरणीयं भाति ।
 ३. 'ज्येष्ठा' इति स्यात् ।

इसरोच्चित्तः पञ्चदशभागं (ह्रः) स्यात्स्या विधीयते ।
भागत्रयं तदेकेन पीठमनां तु (तत्)दद्यात् ॥ १५२ ॥

भागान् पञ्च विधीयेत पश्चिमा भागपुष्पतः ।
पीठं (तत्)वितयेनाचार्यमिष्टं प्रकल्पयेत् ॥ १५२ ॥

इसस्यार्धं विना कृत्वा शय्यां पीठं विधीयते ।
मागेनार्धं (सयानागार्धेऽर्धं?) वैश्वानुसारतः ॥ १५३ ॥

भक्ते प्रासादगर्भो(ऽर्धे) दद्यात् पृष्ठभागतः ।
पिशाचस्थोद्गुनाः स्यान्त्या गन्धैर्गुग्गुलाः ॥ १५४ ॥

(भादित्यचन्द्रिहाभिष्णुत्रक्षेशानान्ता^१) पद्मकमान् ।
गर्भे पद्मभागभक्ते वा त्यक्त्वाकं (पृथना शतः) ॥ १५६ ॥

स्थापनं सर्वदेवानां पञ्च(मेशोऽर्धेऽर्धे) प्रशस्यते ।

यदक्षप्रत्यक्षप्रदरणगतं लक्ष्म विततं

तदर्थानां (चित्रकनावधो वाच्यमक्षय?) ।

सपीठा(र्धोऽर्धो)लिङ्गेऽग्निमिति(मपि) विदित्वा च(दुःकृ)मतो
भवेद् भूपालानां कृतिभिरपि पूजयेत् सकलैः ॥ १५६ ॥

इति मदारानाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समस्तत्रयसूत्राध्यायानाम् वाच्यगाथे

लिङ्गपीठप्रतिमालक्षणं नाम सप्ततितमोऽध्यायः ॥

—:0:—

अथ चित्रोद्देशो नामैकसप्ततितमोऽध्यायः ।

—:0:—

अथ(प्रियं विते?)ऽस्माभिर्विन्यासश्चित्रकर्मणः ।

(राऽचि)त्रं हि सर्वशिल्पानां मुखं लोकस्य च प्रियम् ॥ १ ॥

(पदे पदे वा?) कुड्ये वा यथा(चित्रं सं वचने^१) ।

वर्तयः कृतवन्धाश्च लेखामानं यथा भवेत् ॥ २ ॥

१ 'पृथगंशकम्' इति स्यात् २. 'प्रपञ्च्यते' इति स्यात् । ३. 'पटे पटे वा'
इति स्यात् । ४. 'चित्रस्य सम्भवः' इति स्यात् ।

(वर्णगव्यक्तिया?) यादृग् यादृशो वर्तनाक्रमः ।
मानोन्मानविधिश्चैव नवस्थाने(ने?न)विधिस्तथा ॥ ३ ॥

हस्तानां यश्च विन्यासो (लक्षणनात्रसंशय?) ।
दिव्यानां मानुषाणां च (दिव्या सा मुखजन्मना?) ॥ ४ ॥

गणरक्षःकिन्नराणां कुब्जवामन(यैस्तेषाम्?) ।
विकल्पाकृतिमानानि रूपसंस्थानमेव च ॥ ५ ॥

वृक्षगुल्मलतावल्लीवीरुधां पापकर्मणाम् ।
शूराणां दुर्विधानां च धनिनां पृथिवी(क्षि?भृ)ताम् ॥ ६ ॥

ब्राह्मणानां (विंसासोडजातन?) क्रूरकर्मणाम् ।
मानिनामथ रङ्गोपजीविनां चेह(ङ्ग?क)थ्यते ॥ ७ ॥

रूपलक्षणनैपथ्यं सतीनां राजयोपिताम् ।
दासीप्रव्रजितारण्डा(यतिवल्लीषु लक्षणा ॥ ८ ॥

कन्यानामसंकारणां च विध्याना(?)गजवाजिनाम् ।
मकरव्यालसिंहानां तथा यज्ञोपयोगिनाम् ॥ ९ ॥

(विना?)रात्रिविभागस्य ऋतूनां चापि लक्षणम् ।
(अत्र योज्यं याप्यंभ्र कथं भवति?) ॥ १० ॥

प्रविभागस्य देवानां रेखाणां चापि लक्षणम् ।
लक्षणं पञ्चभूतानां तेषामारम्भ ण्व च ॥ ११ ॥

वृकादीनां विहङ्गानां सर्वेषां जलवासिनाम् ।
चित्रन्यासविधानस्य ब्रूमः सम्प्रति लक्षणम् ॥ १२ ॥

(कर्मण कर्मा करमे?) यस्माच्चित्रकर्मणि वर्तते ।
तस्याङ्गान्यभिधीयन्ते तेन सर्वाणि विस्तरात् ॥ १३ ॥

वर्तिका (प्र)थमं तेषां द्वितीयं भूमिवन्धनम् ।
लेख्यं तृतीयं स्याद् रेखाकर्माणि (वर्ततेमिह लक्षणम्?) ॥

१. 'वर्णव्यक्तिक्रमो' इति पाठः स्यात् । २. 'दिव्यमानुषजन्मनाम्' इति,
३. 'योपिताम्' इति, ४. 'विधां शूद्रजातीनाम्' इति, ५. 'दिवा' इति च स्यात् ।

द्वारोच्छ्रितेः पञ्चदशभागं (कु!) त्यक्त्वा विधीयते ।
भागत्रयं तदेकेन पीठमर्चां तु (तद्)द्वयात् ॥ १५२ ॥

भागान् पञ्च विधीयेत यद्विवा भागयुग्मतः ।
पीठं (तत्)त्रितयेनार्चामुपविष्टां प्रकल्पयेत् ॥ १५३ ॥

द्वारस्यार्धं त्रिधा कृत्वा द्वाभ्यां पीठं विधीयते ।
भागेनार्चा(शयानागार्धेऽर्चा?) वेदमानुसारतः ॥ १५४ ॥

भक्ते प्रासादगर्भा(द्वेऽर्थे) दशधा पृष्ठभागतः ।
पिशाचरक्षोदनुजाः स्थाप्या गन्धर्वगुह्यकाः ॥ १५५ ॥

(आदित्यचन्द्रिकाविष्णुब्रह्मेशानान्ता?) पदक्रमात् ।
गर्भे पद्भागभक्ते वा त्यक्त्वैकं (पृथता शत?) ॥ १५६ ॥

स्थापनं सर्वदेवानां पञ्च(मेशोऽर्धेऽर्धे) प्रशस्यते ।

यदङ्गप्रत्यङ्गप्रहरणगतं लक्ष्म विततं

तदर्थानां (चित्रकनावधो वाच्यमक्षय?) ।

सपीठा(र्थाऽर्चा)लिङ्गोन्मिति(मपि) विदित्वा व(दु'हु)मतो
भवेद् भूपालानां कृतिभिरपि पूज्येत सकलैः ॥ १५६ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवावरचिते समराङ्गणसूत्रधारनाम्न वाग्भुवाख्ये

लिङ्गपीठप्रतिमालक्षणं नाम सप्ततितमोऽध्यायः ॥

—:0:—

अथ चित्रोद्देशो नामैकसप्ततितमोऽध्यायः ।

—:0:—

अथ(प्रियं विते?)ऽस्माभिर्विन्यासश्चित्रकर्मणः ।

(रा(चि)त्रं हि सर्वशिल्पानां मुखं लोकस्य च प्रियम् ॥ १ ॥

(पदे पदे वा?) कुड्ये वा यथा(चित्रं सं वचने?) ।

वर्तयः कृतवन्थाश्च लेखामानं यथा भवेत् ॥ २ ॥

१ 'पृथगंशकम्' इति स्यात् २. 'प्रपञ्च्यते' इति स्यात् । ३. 'पटे पटे वा'
इति स्यात् । ४. 'चित्रस्य सम्भवः' इति स्यात् ।

(वर्णगव्यक्तिया?) यादृग् यादृशो वर्तनाक्रमः ।
मानोन्मानविधिश्चैव नवस्था(ने?न)विधिस्तथा ॥ ३ ॥

हस्तानां यश्च विन्यासो (लक्षणनात्रसंशय?) ।
दिव्यानां मानुषाणां च (दिव्या सा मुखजन्मना?) ॥ ४ ॥

गणरक्षःकिन्नराणां कुब्जवामन(यैस्तेषाम्?) ।
विकल्पाकृतिमानानि रूपसंस्थानमेव च ॥ ५ ॥

वृक्षगुल्मलतावल्लीवीरुधां पापकर्मणाम् ।
शूराणां दुर्विधानां च धनिनां पृथिवी(क्षि?भृ)ताम् ॥ ६ ॥

ब्राह्मणानां (विसासोडजातन?) क्रूरकर्मणाम् ।
मानिनामथ रज्जोपजीविनां चेह(ङ्ग?क)ध्यते ॥ ७ ॥

रूपलक्षणनैपथ्यं सतीनां राजयोपिताम् ।
दासीप्रव्रजितारण्डा(यतिवल्लीपु लक्षणा ॥ ८ ॥

कन्यानामसंकारणां च विध्याना(?)गजवाग्निनाम् ।
मकरव्यालसिंहानां तथा यज्ञोपयोगिनाम् ॥ ९ ॥

(विना?)रात्रिविभागस्य ऋतूनां चापि लक्षणम् ।
(अत्र योज्यं याप्यंभ्र कथं भवति?) ॥ १० ॥

प्रविभागस्य देवानां रेखाणां चापि लक्षणम् ।
लक्षणं पञ्चभूतानां तेषामारम्भ एव च ॥ ११ ॥

वृकादीनां विहङ्गानां सर्वेषां जलवासिनाम् ।
चित्रन्यासविधानस्य धूमः सम्प्रति लक्षणम् ॥ १२ ॥

(कर्मण कर्मा करमे?) यस्माच्चित्रकर्मणि वर्तते ।
तस्याङ्गान्यभिधीयन्ते तेन सर्वाणि विस्तरात् ॥ १३ ॥

वर्तिका (प्र)थमं तेषां द्वितीयं भूमिवन्धनम् ।
लेख्यं तृतीयं स्याद् रेखाकर्माणि (वर्ततेमिह लक्षणम्?) ॥

१. 'वर्णगव्यक्तिक्रमो' इति पाठः स्यात् । २. 'दिव्यनादुपजन्मनाम्' इति,
३. 'योपिताम्' इति, ४. 'विधां शूद्रजातीनाम्' इति, ५. 'दिवा' इति च स्यात् ।

शिक्षाकालेऽङ्गुलद्वन्द्वं प्रमाणेन विधीयते ।
 कुथरेखासु शस्यन्ते वर्तिं(काः)त्र्यङ्गुलोन्मिताः ॥ ८ ॥
 (पटा?)रेखासु कुर्वीत मानेन चतुरङ्गुलाः ।
 इदानीमभिधास्यामो वसुधावन्धनक्रियाम् ॥ ९ ॥
 पक्षिका चैव कूटाश्च + + + पट एव च ।
 तस्य तस्य (किभान?) भूमिवन्धो निगद्यते ॥ १० ॥
 पुण्यनक्षत्रवारेषु माङ्गल्यदिवसेषु च ।
 (क्षितो वासो भुक्ता) च कर्ता भर्ताथ शिक्षकः ॥ ११ ॥
 अनेकवर्णैः कुसुमैर्गन्धैः (न कृपापाः?) ।
 नानाधूपैः सुरभिभिरर्चयित्वा रभेत ताम् ॥ १२ ॥
 [नवसूत्रात्तुलमृद्वस्तितजलेन समं समम् ।
 नवत्वामात्सदृशं वृक्तनभविद्वात्यपराक्रियः ॥ १३ ॥
 लिङ्गसूत्रविनीक्षेतानिकटं सहतं नवः ।
 अनुत्ततमनिस्मं च कुर्याद् यावत् क्षितौ समम् ॥ १४ ॥
 सुस्थितं जलवक्षायं?] सम्यगालोक्य धीमता ।
 कृत्वा भूमिक्रियामेतां पश्चाद् वन्धनमाचरेत् ॥ १५ ॥
 (लुचिमलांस्तिस्त्र?) व्रीहितण्डुलसन्निभाम् ।
 संगृ(स्य?)तीर्थमथवा पिष्ट्वा कल्कं समाचरेत् ॥ १६ ॥
 तेन पिण्डं प्रकुर्वीत (शोपयेच्चतमात्तयो?)
 (शैवयेत्?) कल्कग्रेद् येन (व्यासाद्यषव्यस्तुया?) ॥ १७ ॥
 एवमेव (चतुष्कोन्ता?) सप्त वारान् प्रवर्षयेत् ।
 हस्तेन संमृशेत् पश्चाद् यथा (लोनं?) च जायते ॥ १८ ॥
 अथवा शिक्षिकाभूमौ (ख)रवन्धनमाचरेत् ।
 पूर्वोदितस्य कल्कस्य निर्यासे वन्धनं क्षिपेत् ॥ १९ ॥

१. 'कृवोपवाचो भक्त्या' इति स्यात् । २. 'शोपयेच तमात्तपे' इति स्यात् ।
 ३. 'भपयेदि'ति स्यात् ।

पञ्चमं (कर्णकर्मव?) पष्टं स्याद् वर्तनाक्रमः ।

सप्तमं (लेखनं लेखकर्मणं द्विनकर्म?) तथाष्टमम् ॥ १५ ॥

सङ्ग्रहोऽयमिति (नैव कर्मणः?)

(भूमिनि तदनुक्रमेणा यः?) ।

भावयेन्न सत्तु मोह(प्रभे)त्ससौ

निवृत्तकर्मणि कुनी च जायते ॥ १६ ॥

इति मशराजाधिराजभीभोजदे तिरहिते समसाङ्गप्रकारनाम्नि नास्तुशाब्दे

निवृत्तेशाध्यायो नाम (सप्तमः?) ॥

-----:0:-----

अथ भूमिवन्धो नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ।

-----:0:-----

इदानीं वर्तिकालक्ष्म भूमिवन्धश्च कथ्यते ।

गुल्मान्तरे शुभे क्षेत्रे पश्चिन्यां सरितस्तटे ॥ १ ॥

पार्वतानां च कक्षेषु वापि(का)काननान्तरे ।

भौमा लवणपिण्डाः स्युर्मूलेषु च महीरुहाम् ॥ २ ॥

क्षेत्रेष्वेतेषु या जाताः स्थिराः श्लक्ष्णा(श्च) पाण्डराः ।

ग्राह्या (मृदावसासेष्वा?) विज्ञेया क(र?हु)शर्करा ॥ ३ ॥

क्षेत्राणामानुपूर्व्येण मृत्तिका कथिता शुभा ।

पेपयेत् कुट्टयित्वा तां ततः कलकं समाचरेत् ॥ ४ ॥

शालिभक्तस्य दातव्यस्तत्र भागो यथोदितः ।

ग्रीष्मर्तौ सप्तमं भागं शीतकाले च पञ्चमम् ॥ ५ ॥

पष्टं शरदि वर्षासु चतुर्थं भागमानयेत् ।

वर्तिकावन्धनार्था(योदार्थ)मायान्ति तेन ता(ः) ॥ ६ ॥

(अग्राया शालिवक्त्राभा यत्रं यव्यां सुखगृहम् ।

कुर्कुटाराग्रसदृशी?) कर्मभागविकल्पतः ॥ ७ ॥

१. 'वर्णकर्म स्यात्' इति स्यात् । २. 'चित्रकर्मणः' इति स्यात् । ३. 'सूच्यते

स्म तदनुक्रमेण यः' इति स्यात् । ४. 'नाम एकसप्ततितमः' इति स्यात् । ५. 'य

दाद्वं' इति स्यात् ।

शिक्षाकालेऽङ्गुलद्वन्द्वं प्रमाणेन विधीयते ।
 कुथरेखासु शस्यन्ते वर्ति(काः)व्यङ्गुलोन्मिताः ॥ ८ ॥
 (पटा?)रेखासु कुर्वीत मानेन चतुरङ्गुलाः ।
 इदानीमाभिधास्यामो वसुधावन्धनक्रियाम् ॥ ९ ॥
 पक्षिका चैव कूटाश्च + + पट एव च ।
 तस्य तस्य (किमानः?) भूमिवन्धो निगद्यते ॥ १० ॥
 पुण्यनक्षत्रवारेषु माङ्गल्यदिवसेषु च ।
 (क्षतो वासो भुक्ता) च कर्ता भर्ताथ शिक्षकः ॥ ११ ॥
 अनेकवर्णैः कुसुमैर्गन्धैः (न कृपापाः?) ।
 नानाधूपैः सुरभिभिरर्चयित्वारभेत ताम् ॥ १२ ॥
 [नवसूत्रात्तुलमृद्वस्तितजलेन समं समम् ।
 नवत्वामात्सदृशं वृक्तनभविद्वात्यपराक्रियः ॥ १३ ॥
 लिङ्गसूत्रविनीक्षेतानिकटं सहतं नवः ।
 अनुत्ततमनिस्मं च कुर्याद् यावत् क्षितौ समम् ॥ १४ ॥
 सुस्थितं जलवक्षायं] सम्यगालोक्य धीमता ।
 कृत्वा भूमिक्रियामेतां पश्चाद् वन्धनमाचरेत् ॥ १५ ॥
 (लुचिमलांस्तिस्त्र?) व्रीहितण्डुलसन्निभाम् ।
 संगृ(स्य?)तीर्थमथवा पिष्ट्वा कल्कं समाचरेत् ॥ १६ ॥
 तेन पिण्डं प्रकुर्वीत (शोपयेच्चतमात्तयो?)
 (शैवयेत्?) कल्कग्रेद् येन (व्यासाद्व्यपव्यस्तुया?) ॥ १७ ॥
 एवमेव (चतुष्कोन्ता?) सप्त वारान् प्रघर्षयेत् ।
 हस्तेन संमृशेत् पश्चाद् यथा (लोनं?) च जायते ॥ १८ ॥
 अथवा शिक्षिकाभूमौ (ख)वन्धनमाचरेत् ।
 पूर्वोदितस्य कल्कस्य निर्यासे वन्धनं क्षिपेत् ॥ १९ ॥

१. 'कृतोपवासो भक्त्या' इति स्यात् । २. 'शोपयेच्च तमात्तये' इति स्यात् ।
 ३. 'भपयेदि'ति स्यात् ।

पञ्चभागप्रमाणेन ग्रीष्मकालेषु शस्यते ।

शरद्यंशत्रयं सार्धं त्रीनंशाः (समागमम्?) ॥ २० ॥

वर्षाकाले हि भागेन प्रदद्यादिति निश्चयः ।

पञ्चभागप्रमाणेन ग्रीष्मसं + + + + + ॥ २१ ॥

(वन्धानयं प्रकुर्वीतापपूर्वकं धिनाक्षितो?) ।

(लो?ले)पयेद् रोमकूर्चेण शुष्कां शुष्कामनुक्रमात् ॥ २२ ॥

तोयेन हस्त(क्तवचि?) प्रदातव्यो विचक्षणैः ।

विधिनैवं कृतं श्रेष्ठं शिक्षिकाभूमिवन्धनम् ॥ २३ ॥

वन्धनं कुड्यभूमेश्च यथावत् कथ्यतेऽधुना ।

स्नुहीवास्तुककूश्माण्डकुदालीनामुपाहरेत् ॥ २४ ॥

क्षीरमन्यतम(स्यापामामीस्येक्षरुकस्य?) च ।

(तेषांणां वागसूत्रे?) सप्तरात्रं निधापयेत् ॥ २५ ॥

(सिंहपासननिम्बानां त्रिफलव्याधेर्घातयो?) ।

स(मो?मा)हरेद् यथालाभं (कथया?)कुटजस्य च ॥ २६ ॥

कपाय(का?क्षा)रयुक्तेन सामुद्रलवणेन च ।

(पूर्वा कुड्यं समं कृत्वा कपायैः परिषे परिषेभयतु?) ॥ २७ ॥

चिक(ण?णां?) मृदमादाय स्थूलपापाणवर्जिता(म्) ।

(मानुषां?)स्ताद्विगुणान् (न्य)स्य(स्वदय)वा(च?)लुकामृ(दा?द)म्

ककुभस्य (स्कन्दद्याधा)न्माषाणां शाल्मलेरपि ।

श्रीफलानां रसं तद्वद् दद्यात् कालानुरूपतः ॥ २९ ॥

पूर्वकालानुसारेण यत् प्रोक्तं वन्धनं क्षितेः ।

तत् सर्वं सिकतायुक्तं कृत्वैकत्र (न)वं बुधः ॥ ३० ॥

१. वन्धने च प्रकुर्वीत पूर्वोक्तविधिना क्षितौ' इति स्यात् । २. 'स्यापामागस्ये-

क्षरुकस्य' इति स्यात् । ३. 'सिंहपासननिम्बानां त्रिफलव्याधेर्घातयोः' इति स्यात् ।

४. पूर्व कुड्यं समं कृत्वा कपायैः परिषेचयेत्' इति स्यात् । ५. 'श्रोदयेद्' इति स्यात् ।

६. 'रसं दद्यात्' इति स्यात् ।

(कुमाद्यमालयापातं म?) हस्तिचर्मप्रमाणतः ।

(विशेषां व्याथ प्रतिक्षिपेत्-तोयं कुर्यादशसन्निभाम्?) ॥ ३१ ॥

विशुद्धं विमलं स्निग्धं पाण्डुरं मृदुलं स्फुटम् ।

पूर्वोदितां समादाय विधिवत् (कण्टककरीम्) ॥ ३२ ॥

तां कुट्टयित्वा घृष्टा च कल्कं कुर्याद् विचक्षणः ।

पूर्वोक्तभक्तभागं च निर्यासांश्च प्रदापयेत् ॥ ३३ ॥

(विष्वङ्कः) यदिवा दद्यात् (कूटसर्करया?) समन्वितम् ।

त्रीन् वारान् लेपयेत् कुड्यं पूर्वोक्तेन विचक्षणः ॥ ३४ ॥

हलेन हस्तमालिप्य प्रदद्यात् (कूटकूर्तकाम् ?) ।

जायते विधिनानेन कुड्यवन्धनमुत्तमम् ॥ ३५ ॥

साम्प्रतं कथयिष्यामः पट्टभूमिनिवन्धनम् ।

विम्बावीजानि संगृह्य त्यक्त्वा तेषां मलं बुधः ॥ ३६ ॥

एवं वि(सृद्ध?शोध्य) निष्पावान् यदिवा(न्य?) शालितण्डुलान् ।

तेषामन्यतमं श्लक्ष्णं पिष्ट्वा पात्रे विपाचयेत् ॥ ३७ ॥

पट्टमालिप्य वन्धेन पूर्वोक्त(मिवा?विधिमा)चरेत् ।

पूर्वोक्त(निर्यासा पुना विधात्तयः?) कटशर्कराम् ॥ ३८ ॥

तोयेन तां (प्रचांकृत्य?) पट्टमालेखयेत् तथा ।

अनेन विधिना वन्धश्चित्रकर्मणि शस्यते ॥ ३९ ॥

विधिनान्येन वा कुर्यात् (सादानां?) भूमिवन्धनम् ।

(प्राद्यद्यामिकतालपङ्कनिर्यास?) समन्विताम् ॥ ४० ॥

निर्याससंयुतां दद्यात् त्रिस्ततः कटशर्कराम् ।

(पाटायनां?) भूमिवन्धोऽयं विश्लेष्यः प्रयत्नतः ॥ ४१ ॥

(गोमयेन कटपेने शैस्तदनन्तरम् ?) ।

(कटशर्करयुक्तिवारास्त्राक्तचर्चकेन च?) ॥ ४२ ॥

१. 'कुड्यमालेपयेत् पूर्व' इति स्यात् । २. 'कटशर्कराम्' इति; ३. 'कटशर्करया' इति; ४. 'कटशर्कराम्' इति च स्यात् । ५. 'निर्यासयुतां विधाय' इति स्यात्; ६. 'द्रवीकृत्य' इति स्यात् । ७, ८. 'पट्टनाम्' इति स्यात् । ९. 'कटशर्करया युक्तिवारास्त्रीन् कूर्चकेन च' इति स्यात् ।

(यथा पन्यत्तास्वां पश्चाद् भूमिवन्धः कटेपिहः?) ।

इति निगदितमेवं लक्षणं वतिकाना-

(मिहकपदकुड्यक्ष्मानिविविविधेश्च?) ।

इदमखिलमवैति (पग्र)न्थतो योऽर्थतश्च

(प्रतिवति स विधातुर्विभ्रमस्यास्य योगात्?) ॥ ४३^१/_२ ॥

इति महाराज.धिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारनाम्नि वास्तुशास्त्रे

भूमिवन्धो ना(मैकःम द्वि)सप्ततितमोऽध्यायः ॥

—:0:—

अथ लेप्यकर्मादिकं नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ।

—:0:—

लेप्यकर्म समृद्धक्ष्म (लक्ष्मा?)लक्ष्म च कथ्यते ।

वापीरूपतटाकानि पत्रिन्यो दीर्घिकास्तथा ॥ १ ॥

वृक्षमूलं नदीतीरं गुल्ममध्यं तथैव च ।

मृत्तिकानामिति क्षेत्राण्युक्तान्येतानि तच्चतः ॥ २ ॥

तासां वर्णः सितार्शोद्रसन्निभो गौर एव च ।

कपिलश्चेति ते स्निग्धाः शस्ता विप्रादिषु क्रमात् ॥ ३ ॥

(इन्द्रांशो?) मृत्तिका ग्राद्या स्थूलपापाणवजिता ।

शाल्मली(शाःमा)पक्कुकु(मं?म,मभूकविफळोद्भवम् ॥ ४ ॥

रसं विनिक्षिपेन् तस्यां (पंप्रेक्षस्मसिकथितां चपि?) ।

क्रमुकं(चनका?),विख्ये सदाज्योमानि वाजिनः ॥ ५ ॥

गवां रोमाणि वा दद्यान्नालिकेरस्य (कश्च,लकलम् ।

मृदा संयोज्य मृदायाद् दद्याद् वा द्विगुणांस्तुपान् ॥ ६ ॥

(वाल्मुक्यानीवनीचापि तपासांयामयेन्मृदम्?) ।

नागद्वयं मृत्तिका(विःवां) कापासांश्चिन मिश्रयेत् ॥ ७ ॥

१. यथा वदं दयैव न्याद् भूमिवन्धः कटेपिहः कटेपिहः २. 'विखा'

इति स्तम्भः । ३. 'मिधिय' विद्वत्समिध' इति स्तम्भः । ४. 'कश्च' वाजिनः वाजिनः

चनकैर्नृदत्' इति स्तम्भः ।

तदेकीकृत्य मृद्भागं तृतीयमुपरि क्षिपेत् ।
 पूर्वोदितां स(नि?न्नि)धाय ततश्च कटशर्कराम् ॥ ८ ॥
 क(लयं?ल्कं) त्रिधाय(ः?) चीरेण रूपं तत्परिवेष्टि(ता?तम्) ।
 तेन निर्यासयुक्तेन कुर्यादाकारमादृतः ॥ ९ ॥
 कटशर्करया लिम्पेत् कूर्चकेन विचक्षणः ।
 मृत्तिकाकाथसङ्घाताल्लेप(क)र्म प्रशस्यते ॥ १० ॥
 (रवयेल्लोहसङ्घातं लसंकार्यसुधामध्यये ।
 युक्तं पक्षेत संयोज्य मोममानं योजयेत् ॥ ११ ॥
 अनेपकं समायुक्तं?) कर्तुः स्थानविनाशनम् ।
 लेपकर्ममृत्तिकानिर्णयः ॥
 विलेखा(ल)क्षणं सम्यगिदानीमभिधीयते ॥ १२ ॥
 कूर्चनं कूर्चकेनाथ द्वितीयं हस्तकूर्चकम् ।
 तृतीयं भासकूर्चाख्यं चतुर्थं चल्लकूर्चनम् ॥ १३ ॥
 (वर्तनं पञ्चमं वर्तन्यकूर्चमान्यकूर्चनमिष्यते ।
 लेप्यकर्माणि तच्छस्तमनामणवः ॥ १४ ॥
 जलचूर्णकमानीतमिह सत्सन्तितो?) + + ।
 कूर्चकं धारयेद् धीमान् वृषश्रवणरोम(ति?भिः) ॥ १५ ॥
 + + + + + + + + + तत्कृतकूर्चकैः ।
 वल्कलैर्वा विधातव्यः खरकेशैरथापि वा ॥ १६ ॥
 कूर्चको (येमतिर्यापि?) विहितोऽत्र प्रशस्यते ।
 (कूर्चकं धारयेद् धीमान् वृषश्रवणरोमभिः?) ॥ १७ ॥
 तन्तूतः कूर्चकः श्रेष्ठो विले(प?खा)कर्मणि स्वतः ।
 (आद्यो वदाङ्कुराकारस्ततो स्वच्छाङ्कुराकृतिः?) ॥ १८ ॥
 पुष्पसूचीनिभधान्यस्त्वृतीयः कूर्चको भवेत् ।
 उदुम्बराङ्कुराकारश्चतुर्थः परिकीर्तितः ॥ १९ ॥

(भावाण्डकान्यथ ब्रूमः सोहस्याभिप्रस्तवेडकम्?) ।
 गोलार्धाभ्यधिकं कार्यं (पूर्वेस्तोत्तद्विचक्षणैः?) ॥ ६ ॥
 अर्धगोलकमायामादलसाण्डकमुच्यते ।
 नवगोलकदैर्घ्यं तदद्वहासमुखं(?) भवेत् ॥ ७ ॥
 पुंसां षडा(दात्तं?यतं) मानं विस्तारात् पञ्चगोलकम् ।
 वनिताण्डकमालेख्यं नालिकेरफलोपमम् ॥ ८ ॥
 चतुर्गोलकविस्तीर्णमायतं पञ्चगोलकान् ।
 शिशूनामण्डकं तावत् कर्तव्यं चित्रकर्मणि ॥ ९ ॥
 (हास्योभिः प्रस्तवेत्?) तस्य गोलकार्थान् विशेषयेत् ।
 आलस्याण्डकमप्येवं रोदनं तद्वदेव तु ॥ १० ॥
 षड्गोलक(प्र)विस्तारमायतं सप्तगोलकम् ।
 राक्षसस्याण्डकं कुर्याच्चन्द्रमण्डलसन्निभम् ॥ ११ ॥
 (हास्योभिप्रस्तवे?) तस्य गोलकार्थान् विशेषयेत् ।
 देवाण्डकं प्रमाणेन तदालस्येऽत्र कीर्तितः(?) ॥ १२ ॥
 षड्गोलक(प्र)विस्तारं गोलकाष्टकमायतम् ।
 (वृत्तांया?) समालेख्यं दिव्याण्डकमिति स्मृतम् ॥ १३ ॥
 अथाभिधीयते दिव्यमानुषाण्ड(व?क)(वि?)लक्षणम् ।
 गोलकार्थाधिकं (भे?त)च कार्यं मानुषमानतः ॥ १४ ॥
 पञ्चगोलकविस्तीर्णं षड्गोल(सैकमायुतम्?) ।
 मुखाण्डं मानुषं कृत्वा(केत्तरस्य?) विधीयते ॥ १५ ॥
 शिशुकाण्डकमानेन प्रमथानां मुखाण्डकम् ।
 राक्षसाण्डकमानेन यातुधानाण्डकं भवेत् ॥ १६ ॥
 दानवस्याण्डकं कुर्याद् देवानां वदनोपमम् ।
 गन्धर्वनागयक्षाणां तद्वदेवाण्डकं भवेत् ॥ १७ ॥
 विद्याधराणां विज्ञेयं दिव्यमानुषमण्डकम् ।
 बुध्यन्ते केषपि शास्त्रार्थं केचित् कर्माणि कुर्वते ॥ १८ ॥

करामलकव(त्यास्यं पर?)द्वयमप्यदः ।

न वेत्ति शास्त्रवित् कर्म न शास्त्रमपि कर्मवित् ॥ १९ ॥

यो वेत्ति द्वयमप्येतत् स हि चित्रकरो वरः* ॥ १९½ ॥

इति महाराजाधिराजभीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारनाम्नि नाम्नुशास्त्रे

अण्डकप्रमाणं नाम (त्रिःचतुः)सप्ततितमोऽध्यायः ॥

-----:0:-----

अथ मानोत्पत्तिर्नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ।

-----:0:-----

ब्रूमोऽथ(मातमङ्गणां?) परमाण्यादि तद् भवेत् ॥ १ ॥ .

परमाणू रजो रोम लिखा (प्रैरिका?) यवोऽङ्गुलम् ।

क्रमशोऽष्टगुणा वृद्धिरे(वःवं) मानाङ्गुलं भवेत् ॥ २ ॥

द्वयङ्गुलो गोलको ज्ञेयः कलां वा तां प्रचक्षते ।

द्वे कले गोलकौ (त्राहौ?) भागो मानेन तेन तु ॥ ३ ॥

आयामाद् विस्तृतेश्चित्रमन्यूनाधिकमाचरेत् ।

देवादीनां शरीरं स्याद् विस्तारेणाष्टभागिकम् ॥ ४ ॥

(त्रिंशद्?)भा(गा)यतं चैतद् विदध्याच्चित्रशास्त्रवित् ।

असुराणां (सैरं?) स्याद् भागान् स(मा?त्ता)र्धसंयुतान् ॥ ५ ॥

विस्तारेण तदायामादेकान्त्रिंशदिष्यते ।

सप्तभागं राक्षसानां विस्तारेणायतं पुनः ॥ ६ ॥

सप्तविंशतिभागं स्याद् यत् पुनर्दिव्यमानुषम् ।

(सार्धा तु षडंशास्त कुर्यात्याद्वशत्यायतम्?) ॥ ७ ॥

१. 'मानगणनम्' इति स्यात् । २. 'यूका' इति स्यात् । ३. 'वा द्वौ' इति स्यात् । ४. 'त्रिंशद्' इति स्यात् । ५. 'शरीरं' इति स्यात् ।

* अध्यायावसाने नियमेन दृश्यमानां तच्चदध्यायविषयक्रीडीकरणकारिकां विनैव हाध्यायपरिसमाप्तिर्नातृकायामुपलभ्यते, एतदध्यायारम्भे 'कायमानमपि च' इति यद् विषयान्तरं प्रतिज्ञातं, तत् समनन्तराध्याये सप्रपञ्चं निरूप्य मध्ये 'अण्डकवर्तना' 'कायमानमि'स्येतयोरेतदध्यायगतयोर्द्वयोर्विषययोः क्रीडीकारः कारिकारूपेणाध्यायावसान इव निबद्धः

पङ्कभागविस्त्रुतं कार्यं शरीरं मर्त्यजन्मनि ।
चतुर्विंशतिभागान् + सार्धान् कुर्वीत दैर्घ्यतः ॥ ८ ॥

पुरुषस्योत्तमस्यैतन्मानम(स्याःस्मा)भिरीरितम् ।
मध्यमस्य तु सार्धं स्याद् विस्ताराद् भागपञ्च(मःक)म् ॥ ९ ॥

आयामस्तस्य तु प्रोक्तो ('विंशतिस्वितिः)रन्विता ।
(कनीयसानां कुञ्जानां विस्तारान् पञ्चभागिका ॥ १० ॥

दैर्घ्यमस्य विधातव्यस्तथा शरीरस्य विस्तरा पञ्चभागिकाः) ।
दै(र्घ्यं?र्घ्यं) द्वाविंशतिर्भागा वपुषोऽस्य प्रशस्यते ॥ ११ ॥

(कार्या शरीरस्य?) कुञ्जानां विस्तारात् पञ्चभागिकम् ।
दैर्घ्यमस्य विधातव्यं तथा भा(गं शुभदश?) ॥ १२ ॥

भागपञ्चिकावस्तारं (वामनानां वपुर्भवेत्) ।
कुर्वीत सार्ध(र्धां) सप्तैव भागा(न्) दैर्घ्येण त(द्वत्त?त् पुनः) ॥

(किंवांराणि?) प्रोक्तं प्रमाणमिद(मेद?मेव हि ।
(प्रथमानं?) तु विस्तारो वपुषोऽशचतुष्टयम् ॥ १४ ॥

(दैर्घ्येदो पुनमूस्ये?) भागपट्टकप्रमाणतः ।
उक्तं देहप्रमाणस्य भागसूत्रमिदं पृथक् ॥ १५ ॥

देवानाममुराणां च राक्षसानां तथैव च ।
दिव्यमानुषमर्त्यानां कुञ्जवामनयोरपि ॥ १६ ॥

किञ्चराणां सभूतानां क्रमेणास्मिन्नुदाहृतम् ।
इत्थमण्डक(वैले च वनं क्रमं?)

१. 'विंशतिस्वितिः' इति स्यात् । २. कुञ्जानामित्यादितथैत्यन्तं पदजातमुपरि-
वक्ष्यमाणकुञ्जशरीरप्रमाणादिदं लेखकेन प्रमादान् प्रक्षितमिव भाति । ततश्च प्रकृतानुगु-
प्येन 'कनीयसः शरीरस्य विस्तारः पञ्चभागिकः' इतीदं पद्यो योजनीयः स्यात् ।
३. 'कार्यं शरीरं' इति स्यात् । ४. 'साधुर्दश' इति स्यात् । ५. 'द्विजगजानामि'
इति स्यात् । ६. 'प्रथमानं' इति स्यात् । ७. 'दैर्घ्यं भवेत् पुनस्तस्य' इति स्यात् ।
८. 'विशेषजनप्रमः' इति स्यात् ।

(का)यमानमपि जातिभेदतः ।

भावतश्च कथितं विभा(जन्मना!)त्रयन्

(यलित्याख्या स्त?)खलु चित्रावित्तमः ॥ १७^१/_२ ॥

अथ मानसमुत्पत्तिर्यथावदभिधीयते ॥ १८ ॥

देवानां त्रीणि रूपाणि सुरजो ++ कुम्भको ।

स्याद् दिव्यमानुषस्यैकं शरीरं दिव्यमानुषम् ॥ १९ ॥

असुराणां त्रिधा रूपं चक्रमुत्तीर्णकं तथा ।

दुर्दरः शकटः कूर्म- (त्रिदिवा?इति द्वे) रक्षसां पुनः ॥ २० ॥

पुंसां रूपाणि पञ्च स्युस्तान्युच्यन्ते यथाक्रमम् ।

(हंसः सासाप्ररूचको भक्तामालाव्य एव च ॥ २१ ॥

कुयस्त्रविद्विधौ ज्ञेयो मेपो वृत्तकरस्तथा?) ।

वामनास्त्रिविधा ज्ञेयाः सपिण्डास्थानपद्मकाः ॥ २२ ॥

(कूश्माण्डकर्वटस्तिर्यक् + + + + प्रथमतः?) ।

मयूरः कुर्वटः काशः किन्नरस्त्रिविधो भवेत् ॥ २३ ॥

(वालकापौरुपी वृत्ता + + + दण्डका तथा ।

त्रयः(?) पञ्चधा प्रोक्ताः समस्ताश्चित्रवोदिधिः ॥ २४ ॥

भद्रो मन्दो मृगो-मिश्र इति हस्ती चतुर्विधः ।

जन्मतस्त्रिविधं प्राहुः(गिधिर्न गिरिनद्यूरुत्वांश्रयम्?) ॥ २५ ॥

(विविधा वाजिनो रथ्य?) पारसादुत्तरान्ततः ।

सिंहाश्चतुर्धा शिखरविल(द्रमतृणारव्यया?) ॥ २६ ॥

व्यालाः पौडश निर्दिष्टा हरिणो गृध्रकः शुकः ।

कुक्कुटः सिंहशार्दूलवृकाजागण्डकीगजाः ॥ २७ ॥

(क्री?क्रो)डाश्वमहिपश्वा(ना!नो) मर्क(टोत?टः ख)र इत्यमी ।

[एसामिन्दमासं यं याम्यनैर्ऋतवारुणं ॥ २८ ॥

वायव्यां सौम्यमित्युक्तं जज्ञिपातामिहव्यधारु ।

नतस्तमिहर्भामः शिपद्या सूकरोऽपिच ॥ २९ ॥

१. 'यो लिखेत् स' इति स्यात् । २. 'गिरिनद्यूरुत्वांश्रयम्' इति स्यात् ।
३. 'द्विविधा वाजिनो रथ्याः' इति स्यात् । ४. 'गुल्मतृणाश्रयाः' इति स्यात् ।

पशुर्गोः सुसुमारुश्च गजमेपश्चतुर्मुखः] ।

तुरङ्गसिंहशार्दूलमेपाश्चेत्यत्र षोडश ॥ ३० ॥

(जातसंस्तृतिः ?) ॥

शुक्लवासाः शुचिर्दक्षः स्त्रीशूद्रानभिलापुकः ।

स्थाने कर्मारभेतैतद् विभक्ते संवृतेऽपि च ॥ ३१ ॥

आरम्भो देवतार्चानां रोहिण्यामुत्तरेषु च ।

साधकं वा भवेद् (यस्तु भवा?)रम्भो विधीयते ॥ ३२ ॥

*मुखं भागेन कुर्वीत ग्रीवा वक्त्रात् त्रिभागिका ।

(औयमतन्मुखं?) ज्ञेयं केशान्तं द्वादशाङ्गुलम् ॥ ३३ ॥

द्वादशैवाङ्गुलान्येतद् विस्तारेण पुनर्भवेत् ।

(प्रविमानं?) त्रिभागेन नासिका च त्रिभागतः ॥ ३४ ॥

त्रिभागेन ललाटं स्यादुत्सेधात् त्रिसमं मुखम् ।

अक्षिणीं द्व्यङ्गुलायामे तदर्धा(ध्यःद)पि विस्तृते ॥ ३५ ॥

तारकाक्षित्रिभागेन कर्तव्या सुप्रतिष्ठिता ।

तारकायास्ततो मध्ये ज्योतिस्त्र्यंशेन कल्पयेत् ॥ ३६ ॥

(श्रवौ व्यक्षिरामे कुर्यादक्षिमांसयो ।

मंकाराणां स्युरुच्चाता सम्यगालिखेत् ?) ॥ ३७ ॥

एवं विधानतो योज्यं रूपजातमशेषतः ।

जातीनां वशत इति प्रमाणमुक्तं

(दिवादिष्वखिलमुक्तं देवा?)मिदं स्फुटं विदित्वा ।

यश्चित्रं लिखति बहुप्रकारमस्मै

प्राधान्यं वितरति चित्रकृत्समूहः ॥ ३८^१/_२ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराज्यगत्त्वधारनाग्नि वास्तुशास्त्रे

मानोत्पत्तिर्नाम (चतुः?पञ्च)सप्ततितमोऽध्यायः ॥

३८:

१. 'चतु तस' इति स्यात् । २. 'अयमतो मुखे' इति स्यात् । ३. 'श्रुते-
मो' इति स्यात् । ४. 'दिवादिष्वखिल' इति स्यात् ।

* इति आरम्भे कर्तव्यव्यवहारा विधेयाः समनन्तरप्राधान्यादिह बहिता इति भावि ।

अथ प्रतिमालक्षणं नाम पदसप्ततितमोऽध्यायः

—:०:—

प्रतिमानामथ त्रूपो लक्षणं द्रव्यमेव च ।

सुवर्णरूप्यता(त्राः स्युर्दारुलेखानि?) शक्तिः ॥ १ ॥

चित्रं चेति विनिर्दिष्टं द्रव्यमर्चासु सप्तधा ।

सुवर्णं पुष्टिकृद् विद्याद् रजतं कीर्तिवर्धनम् ॥ २ ॥

प्रजाविट्टद्धि(जं:दं) ताम्रं शैलेयं भूजयावहम् ।

आयुष्यं दा(वरच:रवं) द्रव्यं लेख्यचित्रे धनावहे ॥ ३ ॥

प्रारभेद् विधिना प्राज्ञो ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ।

हविष्यनियताहारो जपहोमपरायणः ॥ ४ ॥

शयानो धरणीपृष्ठे (कुशास्तरणे तदन्तरम् ?)* ।

अप्राप्ताया(?) द्वयोर्मध्यं भवेत् पञ्चाक्षिसम्मितम् ॥ ५ ॥

नेत्रश्रवणयोर्मध्यं भवेद्ङ्गुलपञ्चकम् ।

कर्णौ चाक्षिसमौ ज्ञेयावृत्तसेधाद् द्विगुणायतौ ॥ ६ ॥

(सा कर्णपाली स्यान्मध्यं पत्तिष्यत्यकृकृट्योः ।

द्विभागोलकायता पिप्पल्याश्रिताङ्गुलविस्तृता?) ॥ ७ ॥

अरोमप्रभवा ज्ञेया व्याकृष्टधनुराकृतिः ।

एवम्यमाणं स्यादेषां कर्णपृष्ठाश्रयोऽपिच । ८ ॥

ऊर्ध्ववन्धादधोवन्धः कर्णमूलसमाश्रि(ता:तः) ।

अध्यर्थं गोलकं ज्ञेयः पृष्ठतश्चैवमेव सः ॥ ९ ॥

निष्पावसदृशाकारा कर्तव्या कर्णपिप्पली ।

त्रायामेनाङ्गुलं सा स्याद् विस्तारेण चतुर्य(या:या) ॥ १० ॥

पिप्पल्याधातयोर्मध्ये(?) लकार इति संज्ञितः ।

स्याद्(ध्य)र्धाङ्गुलायामो विस्तारेण च सोऽङ्गुलम् ॥ ११ ॥

१. 'त्राग्मदाच्छेख्यान' इति स्वात् ।

* इत उत्तरं वाक्यपरिमाणपरिदर्शनात् प्रक्रमान्तरमङ्कनमप्य द्वियांश्चिद् मन्थ-

तः संभाव्यते ।

मध्ये लकारो निम्नः स्यान्मानाद् यवचतुष्टयम् ।
मूले पिप्पलिकायाः स्याच्छ्रोत्रच्छिद्रं चतुर्थवम् ॥ १२ ॥
या(गोलकारपीगूष्मो स्तूतिकेति?) प्रकीर्तिता ।
अर्धाङ्गुलायता सा स्याद् यवद्वितयविस्तृता ॥ १३ ॥
लकारावर्तयोर्मध्ये पीयूषी सा प्रकीर्तिता ।
अङ्गुलद्वितयायामा विस्तृता सार्धमङ्गुलम् ॥ १४ ॥
कर्णस्य बाह्या रेखा या तामावर्तं प्रचक्षते ।
पङ्कङ्गुलप्रमाणः स्याद् वक्रो वृत्तायतश्च सः ॥ १५ ॥
मूलांशोऽर्धाङ्गुलः कार्यः क्रमान्मध्ये यवद्वयम् ।
अग्रे यवप्रमाणश्च विस्तारेण त्रिधीयते ॥ १६ ॥
लकारावर्तयोर्मध्यमुद्धात इति कीर्तितम् ।
अधोभागे + पीयूष्या विस्तारेण यवत्रयम् ॥ १७ ॥
ऊर्ध्वतः कर्णविस्तारो गोलकाद् द्वियवान्वितः ।
मध्ये च द्विगुणं नालं मूले मात्रा स(पद्म?पद्म)वा ॥ १८ ॥
समुदायप्रमाणेन (गोलक?)द्वितयायतः ।
कर्णप्रसप्तः(?) कर्तव्यो निम्नो(च्चूमत?)विभागवान् ॥ १९ ॥
अङ्गुलं पश्चिमं नालं पूर्वमर्धाङ्गुलं भवेत् ।
कुर्वीत कोमले नाले क(ल?ला)द्वितयमायते ॥ २० ॥
श्रवणस्य विभागोऽयं (पर्वा?यथा)वत् परिकीर्तितः ।
अन्यूनाधिकमानः स्यात् प्रशस्तो दूषितोऽन्यथा ॥ २१ ॥
चिवुकं द्व्यङ्गुलायामं तस्यार्धमधरं विदुः ।
तदर्धमुत्तरोष्ठः स्याद् भाजी चार्धाङ्गुलो(ष्टथा?च्छ्रया) ॥ २२ ॥
नासापुटौ तु त्रिज्ञेयौ चतुर्थं भाग(मष्ट?मोष्ट)योः ।
तयोः प्रान्तौ तु कर्तव्यौ करवीरसमौ शुभौ ॥ २३ ॥
तारकान्तःसमे चैव सृङ्गणी परिचक्षते ।
नासिका स्या(त्) प्रमाणेन चतुरङ्गुलमाय(ते?ता) ॥ २४ ॥

पुट(भा?प्रा)न्ते च विस्तारो नासाग्रस्याङ्गुलद्वयम् ।

विस्तारेणाङ्गुलान्यष्टौ तदर्धमपि चायतम् ॥ २५ ॥

प्रमाणगुणसंयुक्तं ललाटं परिकीर्तितम् ।

आरभ्य चित्रु(कां?काद्) यावत् (कु?के)शान्तं पश्चिमात् तथा ॥

ग(णिक?ण्डा)न्तं शिरसो मानं भवेद् द्वात्रिंशदङ्गुलम् ।

+++ कर्णयोर्मध्ये (मष्टको?)ष्टादशाङ्गुलः ॥ २७ ॥

+ ग्रीवयोः परीणाहो विंशतिश्चतुरन्विता ।

(श्री?श्री)वातः स्यादुरोभा(गा?ग) उरसो नाभिरेव च ॥ २८ ॥

नाभे(मैन्द्रं?) भवेद् भागौ (द्राँवुभयमेव च?) ।

ऊर्वोः समे मते जङ्घे जानुनी चतुरङ्गुले ॥ २९ ॥

चतुर्दशाङ्गुलौ पादौ स्मृतावायाममानतः ।

पङ्कजङ्गुलौ तु विस्तारादुत्सेधाच्चतुरङ्गुलौ ॥ ३० ॥

(पैश्चाङ्गुलपरीणाह अङ्गुलौ त्र्यङ्गुलायतः?) ।

अङ्गुष्ठकसमा चैव स्यादायामा(त्) प्रदेशिनी ॥ ३१ ॥

तस्याः षोडशभागेन हीना सदान्मध्यमाङ्गुलिः ।

अष्टभागेन म(ध्ये?ध्या)या हीनां विद्यादनामिकाम् ॥ ३२ ॥

तस्याश्चैवाष्टभागेन हीना ज्ञेया कनिष्ठिका ।

पादोनमङ्गलं कुर्यादङ्गुष्ठस्य नखं बुधः ॥ ३३ ॥

अङ्गुलीनां नखान् कुर्यात् (खं?) पञ्चत्र्यंशसंमितान् ।

(कुर्वीताङ्गुलकोत्सेधं त्रिभ्यन्वित्तमङ्गुलाम्?) ॥ ३४ ॥

प्रदेशिन्यङ्गुलोत्सेधा हीना(ः) शेषा यथाक्रमम् ।

जङ्घामध्ये परीणाहो भवेदष्टादशाङ्गुलः ॥ ३५ ॥

जानुमध्ये परीणाह(इ?)(स्त?स्त्व)ङ्गुलान्येकविंशतिः ।

तस्यैव सप्तमं भागं विद्याज्जानुकपालकम् ॥ ३६ ॥

(कु?ऊ)र्मध्ये परीणाहो भवेद् द्वात्रिंशदङ्गुलः ।

(भागार्धभागै?) वृषणो मेढं वृषणसंस्थितम् ॥ ३७ ॥

१. 'मेढ्रं' इति स्यात् । २. 'द्राँवुभयमेव च' इति, ३. 'पैश्चाङ्गुलपरीणाहो' इति स्यात् । ४. 'कुर्वीताङ्गुलकोत्सेधं त्रिभ्यन्वित्तमङ्गुलम्' इति स्यात् ।

षडङ्गुलपरीणाहं कोशस्तु चतुरङ्गुलः ।
 अष्टादशाङ्गुलमिता विस्तारेण कटिर्भवेत् ॥ ३८ ॥
 अङ्गुलार्धं (भवेन्नारीरोधोवन्धाङ्गुलं?) भवेत् ।
 नाभिमध्ये परीणाहः षट्चत्वारिंशदङ्गुलः ॥ ३९ ॥
 द्वादशाङ्गुलमात्रं तु स्तनयोरन्तरं विदुः ।
 स्तनयोरुपरिष्ठात्तु कक्षप्रान्तौ षडङ्गुलौ ॥ ४० ॥
 उत्सेधात् पृष्ठविस्तारो विंशतिश्चतुरन्विता ।
 उरसः सह पृष्ठेन परीणाहः प्रकीर्तितः ॥ ४१ ॥
 षडङ्गुलपरीमाणादङ्गुलानीति निश्चयः(?) ।
 परीणाहाच्चतुर्विंशत्यङ्गुलाष्टौ च विस्तृता ॥ ४२ ॥
 ग्रीवा(वा?) कार्या भुजायामः षट्चत्वारिंशदङ्गुलः ।
 पर्वोपरितनं बाहोः कार्यमष्टादशाङ्गुलम् ॥ ४३ ॥
 षोडशाङ्गुलमात्रं तु द्वितीयं पर्वं कथ्यते ।
 बाहुमध्ये परीणाहो भवेदष्टादशाङ्गुलः ॥ ४४ ॥
 प्रवाहोस्तु परीणाहो भवति द्वादशाङ्गुलः ।
 आयामेन (तलत्वापि?) कीर्ति(तेःतो) द्वादशाङ्गुलः ॥ ४५ ॥
 अङ्गुलीरहितः प्रा(ज्ञोःज्ञैः) सप्ताङ्गुल उदाहृतः ।
 पञ्चाङ्गुलानि विस्ती(र्णाःर्णो) लेखालक्षणलक्षितः ॥ ४६ ॥
 पञ्चाङ्गुलानि मानेन कर्तव्या मध्यमाङ्गुलिः ।
 पर्वणोऽर्ध(तु)मध्याया हीनां विद्यात् प्रदेशिनीम् ॥ ४७ ॥
 प्रदेशिनीसमा चैव स्यादायामादनामिका ।
 पर्वार्धमानहीना च प्रमाणेन कनिष्ठिका ॥ ४८ ॥
 अङ्गुलीनां नखाः कार्याः सर्वे पर्वार्धसंमिताः ।
 आयाममात्रमेतासां परीणाहं प्रचक्षते ॥ ४९ ॥
 अङ्गुष्ठकस्य दैर्घ्यं स्यादङ्गुलानां चतुष्टयम् ।
 पञ्चाङ्गु लः(लं) परीणा(हंःहः) स्पष्टचारुयवाङ्कि(तंःतः) ॥ ५० ॥

तुङ्गा(स्यःत्त)मानपर्यन्तात् किञ्चिद्दीना नखा मताः ।
अङ्गुष्ठकप्रदेशिन्योरन्तरं द्वयङ्गुलं भवेत् ॥ ५१ ॥

स्त्रीणामप्येवमेतत् स्यात् स्तनोरुजवनाधिकम् ।
त्रीणि चत्वारि चत्वारि त्रीणि चत्वार्यथापि च ॥ ५२ ॥

एकादशैकादश वा दश(धाःवा) विंशति(त्र'ह्य)यम् ।
विंशतिस्त्रीणि च स्त्रीणां मानमेतत् प्रकीर्तितम् ॥ ५३ ॥

कनिष्ठं मानमेतत् स्यान्मध्यं सत्र्यंशमष्टकम् ।
(प?क)लानाष्टमकं सार्धमुत्तमं परिकीर्तितम् ॥ ५४ ॥

उरसश्च भवेत् तासां विस्तारोऽष्टादशाङ्गुलः ।
कर्तव्यः कटिविस्तारो विंश(ति' चतुरुताः?) ॥ ५५ ॥

एतन् प्रमाणमुद्दिष्टं प्रतिमानां समासतः ।

प्रमाणमेतन् सक(लाशराणा-
मर्धास्तु?) निर्दिष्टमनुक्रमेण ।

कार्यं सदा शिल्पिभि(रंशुर्मतः)-

यथोचितद्रव्यसमुद्भवामु ॥ ५६ ॥

इति मशगजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रवारेनाम्नि वास्तुशास्त्रे

प्रतिमालक्षणं नाम (पञ्च?पट्)सप्ततितमोऽध्यायः ॥

—:0:—

अथ देवादिरूपप्रहरणसंयोगलक्षणं नाम
मप्तमप्ततितमोऽध्यायः ।

—:0:—

त्रिदशानामथाक्लागन् वृमः प्रहरणानि च ।

देवानामथ वज्राणां गन्धर्वोरपरक्षमाम् ॥ १ ॥

विद्याधरपिशाचानां + + + यथायथम् ।

ब्रह्मानन्दार्चिःप्रतिमः कर्तव्यः मुन्नशुनिः ॥ २ ॥

१. मन्त्रद्वयविवर्धन इति व्यासः । २. विद्याधरपिशाचानां इति व्यासः । ३. ५६

स्थूलाङ्गः श्वेतपुष्पश्च श्वेतवेष्टनवेष्टितः ।

कृष्णाजिनोत्तरीयश्च श्वेतवासाश्चतुर्मुखः ॥ ३ ॥

दण्डः कमण्डलुश्चास्य कर्तव्यो वामहस्तयोः ।

अक्षसूत्रधरस्त(द्वा?द्वद्) मौञ्ज्या मेखलया वृतः ॥ ४ ॥

कार्या(र्यो?) वर्धयमानस्तु जगद् दक्षिणपाणिना ।

एवं कृते तु लोके(शे) क्षेमं भवति सर्वतः ॥ ५ ॥

ब्राह्मणा(र्थ?)वर्धन्ते सर्वकामैर्न संशयः ।

यदा विरूपा (दीनां वा क्रुरसोदरी ॥ ६ ॥

ब्राह्मणैर्वा(?) भवेद् वर्णा(?) सा नेष्टा भयदायिनी ।

निहन्ति कारकं रौद्रा दीनरूपा च शिल्पिनम् ॥ ७ ॥

कृशा व्या(धि?धिं) विनाशं च कुर्यात् कारयितुः सदा ।

कृशोदरी तु दुर्भिक्षं विरूपा चानपत्यताम् ॥ ८ ॥

एतान् दोषान् परित्यज्य कर्तव्या सा सुशोभना ।

ब्रह्मणो(वा?र्चा) विधानज्ञैः प्रथ(मो?मे) यौवने स्थिता ॥ ९ ॥

चन्द्राङ्कितजटः श्रीमान् नीलकण्ठः सुसंय(ते?तः) ।

विचित्रमुकुटः शम्भुर्निशाकरसमप्रभः ॥ १० ॥

दोर्भ्यां द्वाभ्यां चतुर्भिवा (वधा?) युक्तो वा दोर्भिरष्टभिः ।

प(दि?ट्टि)शव्यग्रहस्तश्च पद्मगाजिनसंयुतः ॥ ११ ॥

सर्वलक्षणसम्पूर्णो नेत्रत्रितयभूषणः ।

एवंविधगुणैर्युक्तो यत्र लोकेश्वरो हरः ॥ १२ ॥

परा तत्र भवेद् वृद्धिर्देशस्य च नृपस्य च ।

यदारण्ये (समाने?) वा विधीयेत महेश्वरः ॥ १३ ॥

एवंरूपस्तदा कार्यः कारकस्य शुभावहः ।

अष्टादशमु(लो?जो) दोष्णां विंशत्या वा समन्वितः ॥ १४ ॥

१. 'दीना वा कृशा रौद्रा कृशोदरी । ब्रह्मणोऽर्चा' इति स्यात् । २. 'समयाने' इति स्यात् ।

शतबाहुः कदाचिद्वा सदस्रभुज एव च ।
 रौद्ररूपो गणनृतः सिद्धचर्मोत्तरीयकः ॥ १५ ॥
 तीक्ष्णदंष्ट्राप्रदर्शनः शिरोमालाविभूषितः ।
 चन्द्राङ्कितशिराः श्रीमान् पीनोरस्त्रोप्रदर्शनः ॥ १६ ॥
 (भद्रमूर्ति?) कर्तव्यः श्मशानस्थो मठेश्वरः ।
 द्विभुजो राजभान्यां तु पत्तने स्यात्तुभुजः ॥ १७ ॥
 कर्तव्यो निशतिभुजः श्मशानारण्यमध्यगः ।
 एकोऽपि भगवान् भद्रः(ः) स्थानभेदविकल्पितः ॥ १८ ॥
 रौद्रसौम्यस्वभावश्च क्रियमाणो भवेद् बुधैः ।
 (उभयात्रथा भावद्भागभगवान्) सौम्यदर्शनः ॥ १९ ॥
 स एव तीक्ष्णतामेति मध्यन्दिनगतः पुनः ।
 तथारण्यस्थितो नित्यं रौद्रो भवति शङ्करः ॥ २० ॥
 (स एव सौम्यावति स्थाने सौम्यो व्यवस्थितः) ।
 स्थानान्येतानि सर्वाणि ज्ञात्वा किम्पुरुषादिभिः ॥ २१ ॥
 प्रमथैः सहितः कार्यः शङ्करो लोकशङ्करः ।
 एतद् यथावत् कथितं संस्थानं त्रिपुरदुहः ॥ २२ ॥
 कार्तिकेयस्य संस्थानमिदानीमभिधीयते ।
 तरुणार्कनिभो रक्तवासाः पावकसप्रभः ॥ २३ ॥
 ईषद्वालाकृतिः कान्तो मङ्गलयः प्रियदर्शनः ।
 प्रसन्नवदनः श्रीमानोजस्तेजोन्वितः शुभः ॥ २४ ॥
 (विशेषान्मुटुकैश्चित्रि?) मुक्तामणि(वि)भूषितः ।
 षण्मुखो वैक्वक्त्रो वा शक्तिं रोचिष्मतीं दधत् ॥ २५ ॥
 नगरे द्वादशभुजः खेटके षड्भुजो भवेत् ।
 ग्रामे भुजद्वयोपेतः कर्तव्यः शुभमिच्छता ॥ २६ ॥

१. 'भद्रमूर्तिस्तु' इति स्यात् २. 'उद्यन् यथा भवेद् भानुर्भगवान्' इति स्यात् ।
 ३. 'स एव सौम्यो भवति स्थाने सौम्ये व्यवस्थितः' इति स्यात् । ४. 'विशेषान्मुकुटे-
 भिन्नैः' इति स्यात् ।

देवादिरूपप्रहरणसंयोगलक्षणं नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः । २७३ ।

शक्तिः शरस्तथा खड्गो मुष्टुण्ठी मुद्गरोऽपि च ।
हस्तेषु दक्षिणेष्वेतान्यायुधान्यस्य दर्शयेत् ॥ २७ ॥
एकः प्रसारितश्चान्यः पष्ठो हस्तः प्रकीर्तितः ।
(चैतुः?) पताका घण्टा च खेटः कुक्कुट(क)स्तथा ॥ २८ ॥
वामहस्तेषु पष्ठस्तु तत्र (शौजर्जन?) करः ।
एवमायुधसम्पन्नः संग्रामस्थो विधीयते ॥ २९ ॥
(अव्यया) तु विधातव्यः क्रीडालीलान्वितश्च सः ।
छागकुक्कुटसंयुक्तः शिखियुक्तो मनोरमः ॥ ३० ॥
नगरेषु सदा कार्यः स्कन्दः परजयैपिभिः ।
खेटके तु विधातव्यः पण्मुखो ज्वलनप्रभः ॥ ३१ ॥
तथा तीक्ष्णायुधोपेतः स्रग्दामभिरलङ्कृतः ।
ग्रामेऽपि द्विभुजः कार्यः कान्तिद्युतिसमन्वितः ॥ ३२ ॥
(दक्षिणा च भवेद् भक्तिर्नाम हस्ते तु कुक्कुटः?) ।
विचित्रपक्षः (ससु)महान् कर्तव्योऽतिमनोहरः ॥ ३३ ॥
एवं पुरे खेटके च ग्रामे (वाभिलं?) शुभम् ।
कार्तिकेयं + + कुर्यादाचार्यः शास्त्रकोविदः ॥ ३४ ॥
अविरुद्धेषु कार्येषु खेटे (या?ग्रा)मे पुरोत्तमे ।
कार्तिकेयस्य संस्थानमेतद् यत्नेन कारयेत् ॥ ३५ ॥
(बौलस्तु सुभुजः श्रीमान् स्थले केतु महाद्युतिः?) ।
वनमालाकुलीरस्को निशाकरसमप्रभः ॥ ३६ ॥
गृहीत(सारो?सीर)मुसलः कार्यो दिव्यमदोत्कटः ।
चतुर्भुजः सौम्यवक्रो नीलाम्बरसमावृतः ॥ ३७ ॥
(कु!मु)कुटालङ्कृतशिरोरोहो रागविभूषितः ।
रेवतीसहितः कार्यो (वन!वल)देवः प्रतापवान् ॥ ३८ ॥

१. 'घनुः' इति, २. 'संवर्धनः' इति, ३. 'अन्यदा' इति, ४. 'दक्षिणे च भवे-
च्छक्तिर्नाम हस्ते तु कुक्कुटः' इति, ५. 'बलस्तु सुभुजः श्रीमांस्तालकेद्रुर्महाद्युतिः' इति
च स्यात् ।

विष्णुर्वेदुर्यसङ्काशः पीतवामाः श्रिया(कृत्स्नः) ।
 वराहो वामनश्च स्यात्वरसिद्धो भवानकः ॥ ३९ ॥
 कार्यो (वा?) द्वाशर्या रामो जामदग्न्यश्च वीरवान् ।
 द्विभुजोऽष्टभुजो वापि चतुर्बाहुरिन्दमः ॥ ४० ॥
 शङ्खचक्रगदापाणिरोजम्बी कान्तिमंगुतः ।
 नानारूपस्तु कर्तव्या ज्ञात्वा कागान्तरं विभुः ॥ ४१ ॥
 इत्येव विष्णुः कथितः (सुरास्वरनमस्वरनमस्त्वतः?) ।
 त्रिदशेशः सदृशा(शौंशो) वज्रभृन् गुभुजो बली ॥ ४२ ॥
 किरीटी सगदः श्रीमाञ्च श्वेताम्बरधरस्तथा ।
 श्राणिमूत्रेण स(हा?डिता) दिव्याभरणभूषितः ॥ ४३ ॥
 कार्यो राजश्रिया युक्तः पुरोहितसहायवान् ।
 वैवस्वतस्तु विज्ञेयः (कालेः केसं?) परायणः ॥ ४४ ॥
 तेजसा सूर्यसङ्काशो जाम्बूनदविभूषितः ।
 सम्पूर्णचन्द्रवदनः पीतवासा(न्तु?:शु)भक्षणः ॥ ४५ ॥
 विचित्रमुकुटः कार्यो वराहदविभूषितः ।
 तेजसा सूर्यसङ्काशः कर्तव्यो बलवाञ्छुभः ॥ ४६ ॥
 धन्वन्तरिर्भरद्वाजः (प्रजानीयतयस्तथा ।
 दक्षार्थाः सदृशाः कार्या कार्यो रूपाणि + रपि?) ॥ ४७ ॥
 अचिष्मान् (क्ष्वज्व)लनः कार्यः(यत्कण्ठाश्व?)समीरणः ।
 सौम्यः कार्यस्तथा(विस्या?) + + रुद्रशरीरिणः ॥ ४८ ॥
 रक्तवस्त्रधराः कृष्णा नानाभरणभूषिताः ।
 कर्तव्या राक्षसाः सर्वे बहुप्रहरणान्विताः ॥ ४९ ॥
 पूर्णचन्द्रमुखा शुभ्रा विम्बोष्ठी चारुहासिनी ।
 श्वेतवस्त्रधरा कान्ता दिव्यालङ्कारभूषिता ॥ ५० ॥
 फट्टिदेशनिविष्टेन वामहस्तेन शोभना ।
 सपद्मेन (वान्तेन?) दक्षिणेन शुचिस्मिता ॥ ५१ ॥

देवादिरूपप्रहरणसंयोगलक्षणं नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः । २७५

कर्तव्या श्रीः प्रसन्नास्या प्रथमे यौवने स्थिता ।

गृहीतशूलपरिव(पाहिका?)पट्टिसध्वजा ॥ ५२ ॥

विभ्राणा खेटकोपेतलघुखड्गं च पाणिना ।

घण्टामेकां च सौवर्णीं दधती घोररूपिणी ॥ ५३ ॥

कौशिकी पीतकौशेयवसना सिंहवा(ह)ना ।

(सेचोष्टौ?) + विधातव्याः शुक्लाम्बरधराः + + ॥ ५४ ॥

शोभमानाश्च मुकुटैर्नानारत्नविभूषितैः ।

सदशावम्बिनौ कार्यां लोकस्य शुभदायकौ ॥ ५५ ॥

शुक्लमाल्याम्बरधरौ जाम्बूनदविभूषितौ ।

(त्रिपञ्चदशपूतिरस्येदं भृङ्गवन्मेचकप्रभाम् ॥ ५६ ॥

वैदूर्यशकंसङ्काशा?) हरितश्मश्रवोऽपि च ।

रोहिता विकृता रक्तलोचना बहुरूपिणः ॥ ५७ ॥

नागैः शिरोरुहालीनैर्विरागाभरणाम्बराः ।

कार्याः पिशाचा भूताश्च परुषासत्यवादिनः ॥ ५८ ॥

(बहुप्रकारमन्दहा?) विरूपा विकृताननाः ।

घोररूपा विधातव्या इम्बा नाना(मुःयु)धाश्च ते ॥ ५९ ॥

सुभीमविक्रमा भीमा(ः) सहा यज्ञोपवीतिनः ।

वर्मभिः शाटिकाचित्रैर्भूताः कार्याः सदा युधैः ॥ ६० ॥

येऽपि नोक्ता विधातव्यास्तेऽपि कार्यासुररूपतः ।

यस्य यस्य च यद्विज्जमसुरस्य सुरस्य च ॥ ६१ ॥

यक्षराक्षसयोर्वापि ना(ना?ग)गन्धर्वयोगि ।

तेन लिङ्गेन कार्यः स यथा ना(शुःधु) विजान(जा?ता) ॥ ६२ ॥

प्रायेण (वा?) वीर्ययन्तो हि दानवाः क्रूरकर्मिणः ।

किरीटिनश्च कर्तव्या विविधायुधक्षणयः ॥ ६३ ॥

तेभ्योऽर्षापन् कनीयांसो दैत्याः कार्या गुणैरपि ।

दैत्येभ्यः परिहीणास्तु यक्षाः कार्या मदीत्कटाः ॥ ६४ ॥

निगूढस(न्धेऽन्धि)करणां समायतिमृजुस्थिताम् ।
(ईदृशां राणयेदर्वा?) प्रमाणगुणसंयुताम् ॥ १९ ॥

समोपचितमांसाक्षाः पुरुषाः स्युः समासतः ।
प्रमाणलक्षणयुता वत्सरत्नविभूषितः (?) ॥ २० ॥

(क्षान्त?) गुणान् परिकलय्य च दोषजात-
मर्चा यथोदितगुणां (विदर्षिता मतून्या?) ।

शिष्यत्वमेत्य विविध(त्स?)मुपासतेऽन्ये
तं शिल्पिनः कृत(ध्येऽधि)यश्च मुहुः स्तुवन्ति ॥ २१ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रवारनाम्नि वास्तुशास्त्रे

दोषगुणाध्यायो नाम सप्तमाष्टसप्ततितमः ॥

—:0:—

अथ ऋज्वागतादिस्थानलक्षणं
नामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ।

—:0:—

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि (नेवि?)स्थानविधिक्रमम् ।
(संपात्याख्याणां?) हि जायन्ते नव वृत्तयः ॥ १ ॥

(पूर्वभृष्कागतं तेषां ततोऽर्ध्वं क्षरगतं भवेत्?) ।
ततः (शैचीक्षतं?) विद्यादध्यर्धाक्षमनन्तरम् ॥ २ ॥

चत्वार्यूर्ध्वागतादीनि परावृत्तानि तानि च ।
ऋज्वागतपरावृत्त(त्ताःत्तं) ततोऽर्ध्वज्वागतादिकम् ॥ ३ ॥

(शैचीकृत?)परावृत्तं ततोऽध्यर्धाक्षपूर्वकम् ।
पा(र्श्वःर्शा)गतं च नवमं स्थानं भित्तिकविग्रहम् ॥ ४ ॥

ऋज्वर्ध्वज्जुनोर्मध्ये चत्वारि व्यन्तराणि च ।
अर्धजुसाचीकृतयोर्मध्ये च व्यन्तरत्रयम् ॥ ५ ॥

१. 'ईदृशां कारयेदर्वा' इति स्यात् । २. 'अतः' इति स्यात् । ३. 'विदधीत

मूल्ये' इति स्यात् । ४. 'पूर्वभृष्कागतं तेषां ततोऽर्ध्वज्वागतादिकम् भवेत्' इति स्यात् ।

५. 'साचीकृतम्' इति स्यात् । ६. 'साचीकृतः' इति स्यात् ।

(द्व्यर्धाज्वा?)साचीकृतयोर्मध्ये द्वे व्यन्तरे परे ।

(परोद्व्यर्धक्षपार्श्व?) व्यन्तरं चैकमन्तरे ॥ ६ ॥

ऋज्वागतपरावृत्तपार्श्व(भ्यं?भ्या)गतयोर्दश ।

अन्तरे व्यन्तराणि स्युः स्थानकान्यपराण्यपि ॥ ७ ॥

ऋज्वागताद्यं मध्यं च विग्रहं (वेन्वा + + + ।

ऋज्वागतां + + + शेषभाव्यन्तरा व्यया?) ॥ ८ ॥

अर्धापाङ्गमर्धपुटमर्धार्धपुटमेव च ।

(अर्धज्ज्वसेऽपि कथितं सिलीदव्यन्तरं व्ययः?) ॥ ९ ॥

अर्धसाचीकृतं चैव स्वस्तिकं च ततः परम् ।

(साचीकृतोशै?) द्वावुक्तावंशौ द्व्यर्धाक्षसंज्ञिते ॥ १० ॥

द्व्यर्धाक्षांशपरावृत्तं द्व्यर्धाक्षांसं च ते उभे(?) ।

(द्विज्वाक्षे?)व्यन्तरे प्रोक्ते चित्रशास्त्रविशारदैः ॥ ११ ॥

ऋज्वागतादध्यर्धाक्ष(?) यथा प्रोक्तानि संज्ञया ।

व्यन्तराणि तथैव स्युः परावृत्ते यथाक्रमम् ॥ १२ ॥

वैचित्र्यं भित्तिके नास्तीत्येव चि(त्र्यं?त्र)(विचित्र्यं वि?)विदो विदुः ।

एकान्नात्रिंशदेवं च स्थानानि व्यस्तवर्त्मना ॥ १३ ॥

वैतस्त्यमन्तरं स्थाप्यं पादयोः सुप्रतिष्ठितम् ।

हिक्कायां पादयोश्चान्तभूमौ लम्बे प्रतिष्ठिते ॥ १४ ॥

प्रोक्तमृज्वागतं पूर्वं प्रमाणेन निरूपितम् ।

ततोऽर्धज्वागतस्येदं प्रमाणमुपलक्षयेत् ॥ १५ ॥

ब्रह्मसूत्रं तु कर्तव्यं मुखस्यैव तु मध्य(गः?गम्) ।

नेत्ररेखासमत्वेन तिर्यक्कालो भवेन्मुखम् (?) ॥ १६ ॥

अपाङ्गस्याक्षिकूटस्य कर्णस्य च भवे(त्) क्षयः ।

अन्यत्र कर्णमानं स्यादर्धाङ्गुलविशेषितम् ॥ १७ ॥

दृक्त्वैरे ब्रह्मलेखाया अपरे स्यात् (कलाह्वम्) ।

यत्तुमात्राक्षुपातोहि क्षयितान्योपचस्तथा(?) ॥ १८ ॥

त्रियवाः श्वेतभागः स्यात् तारा च प्रोक्तमानतः ।
विस्तारः श्वेतभागश्च करवीरोऽपि चोक्तवत् ॥ १९ ॥

परभाः(?) करवीरं स्याद् ब्रह्मसूत्रात् तथाङ्गुलम् ।
पूर्वभाकरवीरात्तु(?) सत्रमश्वाङ्गुलं भवेत् ॥ २० ॥

कर्णनेत्रान्तरं प्रोक्तं कला(भ्यःध्य)र्धाङ्गुलाधि(कम्?का) ।
(पूर्वकू सर्वदिस्याविक्षायत् कथयेत् पराम्?) ॥ २१ ॥

पुटोऽङ्गुलं ब्रह्मसूत्रात् कपोलाद् द्वयङ्गुलं भवेत् ।
पूर्वं परत्र मात्रार्थं पुटः स्याच्छेषमुक्तवत् ॥ २२ ॥

(परभागान्तराष्ट?) स्यादङ्गुलं द्वियवाधिकम् ।
अधरः परभागे तु यवपट्कं विधीयते ॥ २३ ॥

अधरान्ता कला(?) गण्डो ब्रह्मसूत्रात् पुनर्दनुः ।
परभागेऽङ्गुलं सार्धं मुखलेखाङ्गुलं ततः ॥ २४ ॥

(आरूढ वा यत्कार्यं मुखयां पर्यतलेखया ।
परिवर्तसुखादेशा?) ज्ञात्वा कार्या प्रयत्नतः ॥ २५ ॥

(अपादमध्यं हि ज्ञातः?) सूत्रेऽन्यस्मिन् प्रवर्तिते ।
(खरे लुप्येत तुर्याशः पूर्वत्वेवाविवर्धते?) ॥ २६ ॥

कक्षाधरः परे भागे सूत्रतः पञ्चगोलकः ।
पूर्वभागे(तृतं?) विद्यात् (पद्मो?पद्गो)लपरिमाणतः ॥ २७ ॥

मध्ये सूत्रात् (पर?) पार्श्वलेखा + + यावच्चतुष्कलम् ।
उरसो मध्य(मो?मात्) सूत्रात् कक्षा स्यान्नव (माभवा?) ॥

(द्रंतलेखात्तस्मात्वं विधाकलत्रयम् ।
स्तनाः पार्श्वकलां कुर्यात् स्तनं वा पतमण्डलम्?) ॥ २९ ॥

परतो हस्तकः कार्यः कर्मयोगानुसारतः ।
(पार्श्वपर्यन्त सर्वा भागे पण्डलालम्?) ॥ ३० ॥

तथैव पूर्वहस्तस्य यथायोगं प्रकल्पना ।
(अभ्ययस्नाग + दीनां?) क्रिया स्याद् दक्षिणे करे ॥ ३१ ॥

मध्ये षडङ्गुला रेखा बाह्यसूत्रात् परे भवेत् ।
 पूर्वस्मिन् बाह्यलेखा तु मध्ये (साऽस्या)दष्टमात्रका ॥ ३२ ॥
 नाभिदेशे परे भागे बाह्यासौ सप्तमात्रका ।
 कलामात्रं भवेन्नाभिस्तस्याः पूर्वं नवाङ्गुला ॥ ३३ ॥
 परे भागे कटिः सप्त मात्रा दश च पूर्वतः ।
 ऊरुलेखा परे भागे मुखमानस्य मध्यतः ॥ ३४ ॥
 प्रागभागस्य वहिलेखा + + + परजानुतः ।
 (परभागेन्द्रवास्तेश्च सूत्रस्यात् तद्वदङ्गुले?) ॥ ३५ ॥
 परस्य नलकस्य स्याल्लेखा प्रागङ्गुलान्तरे ।
 परभागस्य षष्ठांशाः (सूत्रा प्रागङ्गुलद्वयोः?) ॥ ३६ ॥
 नलेन परपादस्य भूमिलेखा विधीयते ।
 ततोऽङ्गुष्ठांऽङ्गुलेनाधः पाष्णिंरूर्ध्वं तदर्धतः ॥ ३७ ॥
 अङ्गुष्ठाग्रं ब्रह्मसूत्रात् परस्मिन् पञ्चमात्रकम् ।
 तलं च परभागज्ञैस्तिर्यक् पञ्चाङ्गुलं स्मृतम् ॥ ३८ ॥
 (सत्त्वितस्तलघाष्णेः?) स्यादङ्गुष्ठाग्रं कलात्रये ।
 अङ्गुल्योऽङ्गुष्ठतः सर्वा (त्रजत्परयं?) क्रमात् ॥ ३९ ॥
 (सन्निवेशसवासाद् द्विरङ्गुल्यतोः) नवाङ्गुलः ।
 यथोक्तं जानु पूर्वं स्यात् सूत्रतश्चतुरङ्गुले ॥ ४० ॥
 नलकस्तद्वदेवास्य नलकौ त्र्यङ्गुलान्तरौ ।
 (सूत्रादक्षः कलास्तिस्राङ्गुष्ठस्त्वङ्गुलत्रयम्?) ॥ ४१ ॥
 भूमिसूत्राद् गतोऽधस्तात् पूर्वाङ्गुष्ठो भवेत् कला ।
 अङ्गुष्ठोऽङ्गुलयश्चेति सर्वमन्यद् यथोदितम् ॥ ४२ ॥
 (दृश्यपार्श्वतलप्रविपारंहाँ?) मध्यमे तलम् ।
 एवमुक्तप्रमाणेन ज्ञात्वा युक्त्या समादिशेत् ॥ ४३ ॥
 अर्धज्वागतमित्येतत् प्रवरं स्थानमीरितम् ।
 लक्ष्म (सा चोत्सार्ची)कृतस्याथ स्थानकस्याभिधीयते ॥ ४४ ॥

विन्यस्येद ब्रह्मसूत्रं प्रा (क् स्या)नवोधस्य सिद्धये ।

ललाटं परभा(गं?गे) स्यात् केशलेखा तथा कला ॥ ४५ ॥

परभागश्रुवो लेखा + + + र्धमुदाहृता ।

(परता + क्षिलेखायां कालिका द्वियतो ज्ञत?) ॥ ४६ ॥

ज्योतिषः स्यात् परे भागे तारा दृश्या यवोन्मिता ।

यवमात्रं ततो ज्योतिस्तस्मात् तारा यवद्वयम् ॥ ४७ ॥

श्वेतं च करवीरं च ततः प्रागुक्तमानतः ।

(कनीलिका तु?) नासाया मूलं विद्याद् यवान्तरम् ॥ ४८ ॥

नासामू(लःलं) प्रमाणेन ततो ज्ञेयं यवत्रये ।

ब्रह्मसूत्रात् पूर्वभागे (नगन्तो?)ध्वंगोलकौ ॥ ४९ ॥

(आपात्रं स्तात्रेतो?) विद्याद् द्विगोलकमितेऽन्तरे ।

तस्माद् भागेन कर्णान्तः कर्णः स्याद् विस्तरेण तु ॥ ५० ॥

द्वियवोना कला चक्षुर्व्यावृत्त्या परिवर्धितः ।

पूर्वस्य करवीरेण सह श्वैत्यं यवत्रयम् ॥ ५१ ॥

द्वितीयश्वैत्यदृक्ताराप्रसृतिः प्रोक्तमानतः ।

कपोललेखा परतो (यवद्वा ता?) कला भवेत् ॥ ५२ ॥

ब्रह्मसूत्रान्नासिकाग्रं परस्मिन् सप्तभिर्यवैः ।

नासापुटः पूर्वभागे स्याद् य(था?वा)धिकमङ्गुलम् ॥ ५३ ॥

पू(र्वो?र्वे) भागे यवं गोजी (स्तःत)त्रोपान्ते विधीयते ।

परभागोत्तरोष्ठः स्यात् प्रमाणेनार्धमात्रकः ॥ ५४ ॥

त्रियवश्चाधरोष्ठः स्याच्छेषश्चापचयस्तयोः ।

पाल्या मध्ये भवेत् सूत्रं पाल्या(शुःस्तु) चिबुकं परे ॥ ५५ ॥

हनुपर्यन्तलेखा च सूत्रादर्धाङ्गुले भवेत् ।

हनोर्मध्यगतं सूत्रं परे स्यात् परिमण्डलम् ॥ ५६ ॥

सहैकसूत्रे परदृक् पर्यन्तेन परिस्फुटा ।

मुखपर्यन्तलेखार्धे(ह)नोरुपरि चाधरः ॥ ५७ ॥

ऋयाष्ट्रिखाभिरेताभिः परभागं विचक्षणः ।

(सूत्राङ्गुलोर्ध्वमात्रायां तस्माद् ग्रीवा यथोदिता ॥ ५८ ॥

सूत्रसंयोगात् पूर्वस्मिन्नङ्गुले सयवेऽङ्गुलः?) ।

द्विकाध्यर्धाङ्गुलं सूत्रात् पूर्वे स्यात् सुप्रतिष्ठिता ॥ ५९ ॥

बाह्यलेखा हि (वःत)त्सूत्रात् परस्मिन्नङ्गुलाष्टके ।

(तालं यवोनग्रीवातो नग्रीवज्ञेयौसूनदूर्वकौ?) ॥ ६० ॥

द्विकासूत्रात् समारभ्य वक्षोभागोऽग्रिकं(?) भवेत् ।

(तावन्मात्रे तरेवाहुः) तस्मात् प्रभृति निर्दिशेत् ॥ ६१ ॥

द्विकासूत्रात् परे भागे स्तनश्चाङ्गुलपञ्चके ।

रेखान्तसूचकः कार्यो मण्डलं सार्धमङ्गुलम् ॥ ॥ ६२ ॥

तस्मादनन्तरं बाह्यभागमात्रं विनिर्दिशेत् ।

द्विकासूत्रात् समारभ्य स्तनः (पूर्वपङ्कङ्गुले?) ॥ ६३ ॥

स्तनात् पङ्कङ्गुले (तिर्यगक्षो स्मा द्वौ?) द्विभागिकः ।

कक्षतो द्विकलेऽधस्ताद् बाह्यलेखा विधीयते ॥ ६४ ॥

आभ्यन्तरा बाह्यलेखा स्तनात् पञ्चाङ्गु(ले तःलेऽन्त)रे ।

ब्रह्मसूत्राच्च भागेन मध्यभागे (परि?) विदुः ॥ ६५ ॥

(मध्याच्चकलयावहः परे?) तिर्यग् विभज्यते ।

मध्यप्रान्तः पूर्वभागे भवेत् सूत्राद् दशाङ्गुलः ॥ ६६ ॥

तिर्यङ् नाभिप्रदेशः स्यात् प (रतो)ब्रह्मसूत्रतः ।

यवैश्चतुर्भिरधिकमङ्गुलानां चतुष्टयम् ॥ ६७ ॥

पूर्वभागे विनिर्दिष्टः स एवैकादशाङ्गुलः ।

मध्येनैति परस्योरोः सू(त्रःत्रं) नाभ्यन्तराश्रितम् ॥ ६८ ॥

प्रयात्यपरजाचैतात् (?) पूर्वतः कलया च तत् ।

जान्वधोभाग(त)श्चार्धकलया त्रियवेन च ॥ ६९ ॥

जङ्गामध्येन लेखायाः प्रसक्तं नलकस्य तु ।

(पांते वैरवं?) परतश्चतुर्भिः सूत्रमिष्यते ॥ ७० ॥

केशान्तलेखा सूत्रा(त्) स्या(न्मो?न्मा)त्रैका यवसंयुता ।
पृथग् वक्षः पृथक् श्रोणिः वृत्तःवाहः सुसंस्कृतिः (?) ॥ ८४ ॥

भद्राकारो भवेद् भद्रो वृत्तवक्त्रः स्वभावतः ।
मालव्यस्य भवेन्मूर्धा प्रमाणेनाङ्गुलत्रयम् ॥ ८५ ॥

(चतुर्मात्रललाटं च नाश वक्त्राशिरोधरा ।
मात्रा द्वादश वक्षस्ये नाभिमेद्धान्तरोदरे?) ॥ ८६ ॥

अष्टादशाङ्गुलौ चोरू जङ्घे अप्येवमेव हि ।
चतुरङ्गुलकौ ++ जानुनी चतुरङ्गुले ॥ ८७ ॥

मालव्यस्यायमायामः (पण?पण्ण)वत्यङ्गुलो मतः ।
विस्तारो वक्षसस्तस्य मात्राः षड्विंशतिः स्मृतः ॥ ८८ ॥

वा(ह्यो?ह्योः) षोडशमात्रश्च प्रवा(ह्यो?ह्यो)रेवमेव सः ।
(पाण्यौ द्वादशमात्रस्ये मालव्यस्त्वेह विस्तृतिः?) ॥ ८९ ॥

पीनांसो दीर्घवाहुश्च पृथुवक्षाः कृशोदरः ।
वृत्तोरुकटिजङ्घश्च मालवः पुरुषोत्तमः ॥ ९० ॥

हंसस्य वक्रं पृथ(ग्?धु)गण्डभागं
कृशं शशस्यायतमास्यमाहुः ।
विस्तारदैर्घ्याद् भवकस्य तुल्यं (?)
सुखं सुवृत्तं त्विहच(?) भद्रवक्त्रे ॥ ९१ ॥

(स्यान्मालावस्या लेपनं तु कान्तमयोज्यं ।
देही तु रूपैश्च भवन्ति युक्तास्ते कर्मणि सर्वगुणान्वितास्तेः) ॥९२॥

(स दुर्लभं स्यात् पुरुषः प्रमेय-
मानोजस्ति कीर्ण इति ह पष्टः ?) ॥ ९२^१ ॥

(मांसलेन शरीरेण ग्रीवासिरा अया ++ ।
मांसलायातशाखा च नारी वृत्तेति सा मता?) ॥ ९३ ॥

१. भद्रहंसःदीनां पृथक्विशेषाणां लक्षणमध्यायान्तरेण वक्ष्यति । ततः क्रियांश्चिदंश
इह प्रमादात् प्रक्षिप्त इति भाति, प्रक्रमभङ्गात् ।

पृथुवक्त्रा कटीह्रस्वा ह्रस्वग्रीवा पृथुदरी ।
 पुंघत्काण्डकतुल्या(?) स्यात् सा नारी पौल्पी मता ॥ ९४ ॥
 अल्पकायशिरोग्रीवा लघुशाखा भवेच्च या ।
 कृशाल्पत्रह्रसच्चा च सा नारी बालकी स्मृता(?) ॥ ९५ ॥
 पुंस्पर्शात् पश्यता(?)या स्यात् कौमारे प्राप्तर्यौवना ।
 अन्या सा बालकी प्रोक्ता स्त्रीलक्षणविचक्षणैः ॥ ९६ ॥
 [भ्रुवः सद्वियवामात्रा लेखा कृशयवाङ्गुलाः ।
 दक्तोयमन्तरे वर्त्म ताराय अर्धमालिखेत् ॥ ९७ ॥
 स्वैत्यं चतुर्यवं दृश्यशेषं सा तिरस्कृतम् ।
 कपोतरेखा परतो यवत्रजितमङ्गुलम् ॥ ९८ ॥
 सूत्रापूर्वपटान्तः स्यादर्धाङ्गुलमितेन्तरे ।
 नासिकान्तोऽङ्गुलं सूत्रात् परे पूर्वतपाङ्गुलम् ॥ ९९ ॥
 मूले नासापुटः साद्रः सूत्रं गोज्याश्च मध्यगम्?] ।
 यवार्धमात्रा गोजी स्यादुत्तरोष्ठः परस्य यः ॥ १०० ॥
 स ब्रह्मसूत्रादारभ्य त्रिज्ञेयो द्वियवोन्मितः ।
 परे त्वधस्तान्नासाया रेखा चार्धाङ्गुलैर्भवेत् ॥ १०१ ॥
 परभागेऽधरोष्ठस्य प्रमाणं + यवं मतम् ।
 हनुपर्यन्तलेखाया मध्ये सूत्रं प्रतिष्ठितम् ॥ १०२ ॥
 सूत्रात् प्राक् करवीरः स्याद् द्वियवोनाङ्गुलद्वयम् ।
 यवार्धं स च दृश्येत स्वैत्यं सार्धयवं ततः ॥ १०३ ॥
 + तारा त्रियवा ज्ञेया शेषमुक्तप्रमाणतः ।
 कर्णावर्तादधः कर्णमध्यभागेन संमितम्(?) ॥ १०४ ॥
 द्वयङ्गुलः कर्णविस्तारः कर्णावर्ताच्चतुर्यवे ।
 शिरःपृष्ठस्य लेखा स्यादिति ज्ञात्वोक्तमाचरेत् ॥ १०५ ॥
 कर्णसूत्राद् बहिर्ग्रीवा विधातव्यैकमङ्गुलम् ।
 गलो ग्रीवा च हिका च सूत्राद् प्रागङ्गुलोत्तरे ॥ १०६ ॥

१. इत उत्तरं वक्ष्यमाणस्तु प्रकृताध्यायगता विषयाश्चतुरशीतितमल्लोकपूर्वाध्याय-
 गता इति शक्यमुच्येत् ।

- हिकासूत्राद् भवेदूर्ध्वमं(शःस)लेखा तथाङ्गुलम् ।
 ब्रह्मसूत्रात् परे भागे स्यादं(शोःसो)ऽङ्गुलसंमिते ॥ १०७ ॥
- (वक्षोऽङ्गुलं ब्रह्मसूत्रां ++ नस्ति कालान्तरे (!) ।
 भागमात्रे भवेत् कक्षासूत्रात् पूर्वः स्तनस्य च ॥ १०८ ॥
- कक्षातस्त्रिकलं यावत् पार्श्वलेखा विधीयते ।
 (दूराग्रभुजस्तस्यादग्रे कर्मानुसारतः ॥ १०९ ॥
- प्रासादमध्यः सूत्रः स्यादेकादशभिरङ्गुलैः ।
 परभागस्य मध्यस्त(?) सूत्रात् स्यादङ्गुलैस्त्रिभिः ॥ ११० ॥
- अङ्गुलेन परे भागे सूत्रतो नाभिरिष्यते ।
 ना(भिःभे)रुदरलेखा तु विज्ञातव्याङ्गुलत्रये ॥ १११ ॥
- श्रोणी कर्णो भवेन्नाभे(?) मुखमर्धाङ्गुलान्वितम् ।
 ब्रह्मसूत्रात् कटिः पूर्वं त्रिभागा त्र्यङ्गुला परे ॥ ११२ ॥
- (ब्रह्मसूत्राश्रित मेढ्रस्तले चा परतो भवेत् ।
 पूर्वोक्तः मध्यभेखास्यात् सूत्रात् प्रत्यङ्गुल्यन्तरे? ॥ ११३ ॥
- तस्यैव मूलरेखा च सूत्रात् प्राग् त्र्यङ्गुलेऽन्तरे ।
 मूललेखा परस्योरोः सूत्रात् स्याद् द्विकलेऽन्तरे ॥ ११४ ॥
- पर्यन्तजानुनो भागे पर्यन्तोपरा(?) जानुतः ।
 परभागिका जानुद्वे(?) सूत्रस्य सम्यक् प्रतिष्ठितम् ॥ ११५ ॥
- जानुमध्ये गता लेखा बाह्यलेखाश्रिता भवेत् ।
 अध्यर्धमात्रं जानु स्यादधोलेखा तु तस्य या ॥ ११६ ॥
- अर्धाङ्गुलेन सा सूत्रात् पूर्वतः प्रविधीयते ।
 सूत्रात् परे (पराङ्गुष्ठं मूल?)पादोनमङ्गुलम् ॥ ११७ ॥
- मूलादङ्गुष्ठकस्याग्रं सार्धैः स्यादङ्गुलैस्त्रिभिः ।
 सूत्रात् परं स्याज्जङ्घाया लेखाङ्गुलचतुष्टये ॥ ११८ ॥
- तस्यास्तु पूर्वजङ्घाया लेखा स्यादङ्गुलद्वये ।
 पूर्वजानु कलाभानं शेषं सुयाद् यथोदितम् ॥ ११९ ॥

- परपादतले (स्तम्भं?) यत् तिर्यक् सुप्रतिष्ठितम् ।
 (तत्प्राक्प्रदेलस्योर्ध्वं?) सार्धया कलया भवेत् ॥ १२० ॥
- (प्राग्भङ्गोऽङ्गुष्ठमूलेच्छस्तत्रास्वीया?) कनिष्ठिका ।
 (कलामात्रं निजाङ्गुष्ठादंघ्रासागं?) प्रपद्यते ॥ १२१ ॥
- (यत् पराङ्गुलम्बसूत्रं प्रतिपद्यते?)
 यत् पराङ्गुष्ठमूलोत्थं लम्बसूत्रं प्रपद्यते ।
 (मध्येन पूर्वभागात्ति सवन्धाङ्गुष्ठकस्य तत् ?) ॥ १२२ ॥
- पूर्वपार्श्विणतलादूर्ध्वं विदध्यादङ्गुलत्रये ।
 पार्श्वेः परस्य पादस्य पूर्वपादं तिरस्कृतम् ॥ १२३ ॥
- अध्यर्धाक्षं यथाशास्त्रमेवं स्थानकमालिखेत् ।
 अथ पार्श्वगतं ना(स?म)स्था(न?नं)पञ्चममुच्यते ॥ १२४ ॥
- व्यावर्तितमुखस्यान्ते ब्रह्मसूत्रं विधीयते ।
 ललाटवाहलेखां च भ्रूवस्फृष्टां प्रदर्शयेत् ॥ १२५ ॥
- मूत्रात् तु नासिकावंशः (संशुद्धय द्वाक्षमानतः?) ।
 अपानो द्विकले मूत्रात् कर्णो (यंशात्?) कलाद्वये ॥ १२६ ॥
- कर्णो द्वयङ्गुलविस्तारः शिरःपृष्ठं कला ततः(?) ।
 अस्य मध्यगतं मूत्रमास्यार्थं स्थापयेत् ततः ॥ १२७ ॥
- अङ्गु(लो?ले) चिबुकं मूत्राद्भ्रुवन्मध्यं चतुर्थये ।
 सार्धाङ्गुले ततः कण्ठवर्तिग्रीवाङ्गुले नतः ॥ १२८ ॥
- अङ्गुलेन ततो द्विकला चतुर्भिर्वक्ष्यमूत्रतः ।
 मूत्रो श्रवणपालयन्तेनेति मूत्रं तदुच्यते ॥ १२९ ॥
- ग्रीवायाङ्गुल्यमध्येन(?) मध्यमूत्रं तदुच्यते ।
 भागे द्विकलामध्यमूत्रादण्डमूत्रं कलाद्वये ॥ १३० ॥
- मात्रापृक्ते च पृष्ठं तो (?) हृष्टेखाप्येवमेव द्वि ।
 (त?म्न, नस्य मण्डलं तस्मादङ्गुलेन विधीयते ॥ १३१ ॥
- कला च पूर्वभागे स्वान् मूत्रान् पञ्चभिर्ऽङ्गुलैः ।
 नान्नात्रवेधापरस्मिन् भागे कथा विधीयते ॥ १३२ ॥

उभयोरन्तयोः प्राहूर्मध्यमष्टाङ्गुलं बुधाः ।
 अङ्गुलैर्दशभिर्मध्यं पर्यन्तो मध्यसूत्र(तं?तः) ॥ १३३ ॥
 मध्यपृष्ठं चतुर्भिः स्यान्नाभिपृष्ठं च पञ्चभिः ।
 नाभ्यन्तरेखा नवभिः कटिपृष्ठं कलात्रये ॥ १३४ ॥
 उदरप्रान्तलेखा च ज्ञेया दशभिरङ्गुलैः ।
 (मां मा भ्रात्रयेणाभिरष्टाभिः) सूत्रात् स्फिजो मध्यं प्रचक्षते ॥
 वस्तिशीर्षे च नवभिः स्फिगन्तो(ऽष्ट)भिरङ्गुलैः ।
 अष्टभिर्मेढ्रमूलं स्याद्दूरमध्यं च सप्तभिः ॥ १३६ ॥
 अङ्गुलैः पञ्चभिर्मूलमूरोः (पार्श्वान्त्यमुच्यते?) ।
 चतुर्भिरङ्गुलैः सार्धैः(धैः) क(र)मध्यं च पृष्ठतः ॥ १३७ ॥
 अग्रतः पञ्चभिः सार्धैस्तदेव प्राहुरङ्गुलैः ।
 करमध्याङ्गुलैः(ले)मध्यं सूत्रमध्ये विधीयते ॥ १३८ ॥
 जान्वर्धे मध्यसूत्रं स्याद् भागो लेखा च जानुतः ।
 भवेदुभयतः(स्त?सू)त्रं जङ्घा मध्ये च कीर्तिता ॥ १३९ ॥
 जङ्घा पङ्गुला सूत्रं मध्ये स्यान्नलकस्य च ।
 उभयोः पार्श्वयोः कार्यो नलकश्चाङ्गुलद्वयम् ॥ १४० ॥
 चतुर्भिरङ्गुलैः पाष्णि(म?र्म)ध्यसूत्राद् विधीयते ।
 यथोक्तमानेनाङ्गुल्यस्तथा पादतलं भवेत् ॥ १४१ ॥
 पार्श्वगतमिदं प्रोक्तं स्था(न?नं) भित्तिकसंज्ञकम् ।
 पार्श्वगतस्थानम् ॥
 अतः परं परावृत्तस्थानकान्यभिद्धमहे ॥ १४२ ॥
 ऋ(जा?ज्वा)गतपरावृत्तं तत्रादावभिधीयते ।
 तत्राङ्गुलद्वयं कर्णौ विधातव्यौ पृथक् पृथक् ॥ १४३ ॥
 पाष्णिपर्यन्तयोर्मध्यं तथा सप्ताङ्गुलं भवेत् ।
 अङ्गुलत्रितयं सार्धं पाष्णीं कार्यौ पृथक् पृथक् ॥ १४४ ॥

कनिष्ठानामिकामध्या दर्शयेच्चतुरङ्गु(लीलम्) ।
 अङ्गुष्ठानामिकामध्याकनिष्ठा(वलिखेन्तरेः) ॥ १४५ ॥
 परावृत्तमिदं शेषमृज्वागतवदादिशेत् ।
 अध्यर्थाक्षादिका(द्रुः?) यानि स्थानानि तेषु यत् ॥ १४६ ॥
 भवेद् यस्य परावृत्तं तद्वशात् तस्य तद् भवेत् ।
 ++ यस्य हि यद् दृश्यं स्थानकस्याङ्गमीरितम् ॥ १४७ ॥
 तद्दृश्यं परावृत्ते तस्यादृश्यं च दृश्यते(?) ।
 (स्थानानि भवितानि?) + जीवेषु द्विपदेषु च ॥ १४८ ॥
 निर्जीवेष्वपि जानीयाद् या(मा?ना)सनगृहादिषु ।
 स्थानानि मूलभूतानि नववैतानि वस्तुतः ॥ १४९ ॥
 यानि (निविशत?) भक्तानि तद्भेदा(निचः?) तान् विदुः ।
 मूर्धस्थिता यदा दृष्टा ऋज्वादीनि विलोकयेत् (?) ॥ १५० ॥
 स्थानानि तेषां यन्मानं तदस्मात् तदिहोच्यते ।
 विस्तृत्याष्टादश न्यस्येदायत्या द्विगुणानि च ॥ १५१ ॥
 (अङ्गुल्यन्यादारासूत्रं?) यथाभागं यथोचितम् ।
 आयामस्यार्धदेशे च विस्तारोऽस्याग्रतोऽष्टभिः ॥ १५२ ॥
 + + + + + (पृष्ठप्रदेशार्द्र+मङ्कयेत्?) ।
 तन्मध्यगामिनी (स्त?भू)त्रे न्यस्येदायतविस्तृते ॥ १५३ ॥
 अङ्गानां स्यात् तदवधिनिर्गमो (वष्टमाणकः ॥
 सूनत्योगतो गर्भसूत्रादित्यादि?) ॥ १५४ ॥
 स्तनगर्भो गर्भसूत्राद् विस्तृ(तो?तौ) स्यात् षडङ्गुलः ।
 षडङ्गुलः स्यात् स्तनयोस्तिर्यग् गर्भ(वि)निर्गमः ॥ १५५ ॥
 तिर्यग् गर्भा(त्) पृष्ठपक्षौ स्फिजावपि दशाङ्गुले ।
 (नेऽन)वाङ्गुले पृष्ठवंशः स्फिजो(ः) सप्ताङ्गुलेऽन्त(रम्?) ॥ १५६ ॥
 कक्षायामूलमायामाद् गर्भतश्च दशाङ्गुलम् ।
 निर्गमोऽग्रेऽङ्गुलं तस्य सूत्रात् सप्त च पृष्ठतः ॥ १५७ ॥

१. 'दीनि' इति स्यात् । २. 'स्थानानि गदितानि' इति स्यात् । ३. 'विशति' इति स्यत् । ४. 'नेव' इति स्यात् ।

गर्भसूत्रात् ततस्तिर्यक् पादांशोऽष्टादशाङ्गुलः ।
 गर्भाद् यत्रप्रदेशश्च(?) भवेत् पञ्चभिरङ्गुलैः ॥ १५८ ॥
 अष्टाभिर्जठरं गर्भात् पार्श्वयोः पुरतोऽपि च ।
 उदरस्य + मं पृष्ठं पश्चात् सप्तभिरङ्गुलैः ॥ १५९ ॥
 सा(धै) द्वा(धै)र्द्वा(धै)दशभिर्मूलमूर्ध्वो(स्थो?) मतोऽङ्गुलैः ।
 यश्चाङ्गुलं निर्गमस्तत् + स्यात् सप्त च पृष्ठतः ॥ १६० ॥
 ऊरुमूलस्य पृष्ठात् तु स्फिजौ त्र्यङ्गुलनिर्गतौ ।
 मेढूमग्रे ततो ज्ञेयं गर्भसूत्रात् षडङ्गुले ॥ १६१ ॥
 तिर्यक्सूत्राज्जानुपार्श्वं सा(धै?) धै(धै?)नवभिरङ्गुलैः ।
 आयामसूत्राज्जान्वन्तपृष्ठेऽग्रे चतुरङ्गुलः(?) ॥ १६२ ॥
 नलकश्च भवेद् गर्भात् तिर्यगस्य षडङ्गुलः ।
 गर्भसूत्रात् तु नलकः पृष्ठतश्चतुरङ्गुलः ॥ १६३ ॥
 सूत्रान्ताङ्गुल्यपर्यन्तः(?) स्यात् साधैः षड्भिरङ्गुलैः ।
 अक्षः(?) सार्धाङ्गुले सूत्राद् भवेद् विस्तृतिदर्शनात् ॥ १६४ ॥
 चतुर्दशाङ्गु(लाः)लः पादो दैर्घ्येणात्र प्रकीर्तितः ।
 गर्भादष्टाङ्गुलाग्रोऽसौ पश्चादपि षडङ्गुलः ॥ १६५ ॥
 जानुनोरक्षश्च स्यादन्तरमङ्गुलं मिथः(?) ।
 ऊर्वोरङ्गुलमुद्दिष्टं (न भलयो?)श्चतुरङ्गुलम् ॥ १६६ ॥
 ऋज्वागतमिति प्रोक्त(मं)द्वजौ(?) मध्यसूत्रतः ।
 (परिवर्ततगुलगं सावावप्यङ्गुलद्वयम् ॥ १६७ ॥
 तस्मात् सावेस्त सार्धाक्ष्ये?) त्वङ्गुले परिवर्तनी ।
 + + + भित्तिके प्रोक्तं परावृत्तेऽप्ययं विधिः ॥ १६८ ॥
 ऋज्वागतार्धर्जुकसाचिसंज्ञाध्यर्धाक्षपार्श्वगतसंज्ञकानि ।
 तेषां परावृत्तचतुष्टयं च प्रोक्तान्यथो विंशति(र)न्तराणि ॥ १६९ ॥
 इति महाराजाधिराजधीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारनाम्नि चान्दुशाखे
 ऋज्वागतादिस्थानलक्षणं ना(माष्टसप्त?)मैकोनाशी)तितमोऽध्यायः ॥

अथ वैष्णवादिस्थानकलक्षणं नामार्शीतितमोऽध्यायः ।

—:७:—

अथान्यान्यभिधीयन्ते चेष्टास्थानान्यनेकशः ।

यानि ज्ञात्वा न मुह्यन्ति + + चित्रविचक्षणाः ॥ १ ॥

वैष्णवं समपादं च वैशाखं मण्डलं तथा ।

प्रत्यालीढमथालीढं स्थानान्येतानि (लक्षणम्?) ॥ २ ॥

(अश्वक्रामत्तमथायामविहितनाकत्रयं स्त्रीणाम्?) ।

द्वौ तालावर्धतालश्च पादयोरन्तरं भवेत् ॥ ३ ॥

तयोः समन्वितस्त्वैकस्यश्रः पक्षस्थितोऽपरः ।

किञ्चिदञ्चितजङ्घं च (शगात्रभोज्यचसंयुतम्?) ॥ ४ ॥

वैष्णवस्थानमेतद्धि विष्णुस्त्राधिदैवतम् ।

समपादे समौ पादौ तालमात्रान्तरस्थितौ ॥ ५ ॥

स्वभावसौष्टवोपेतौ ब्रह्मा चात्राधिदैवतम् ।

तालास्त्रयोऽर्धतालश्च पादयोरन्तरं भवेत् ॥ ६ ॥

अश्रमेकं द्वितीयं च पादं पक्षस्थितं लिखेत् ।

(नैपमोरु?) भवत्येवं स्थानं वैशाखसंज्ञितम् ॥ ७ ॥

विशाखो भगवानस्य स्थानकस्याधिदैवतम् ।

ऐ(न्द्र?न्द्रं) स्यान्मण्डलं पादौ चतु(र्म्?स्ता)लान्तरस्थितौ ॥ ८ ॥

ज्य(स्य?श्र)पक्षस्थि(त?ति)धैव कटिर्जानुसमा तथा ।

प्रसार्य दक्षिणं पादं पञ्चतालान्तरस्थितम् ॥ ९ ॥

आलीढं स्थानकं कुर्याद् रुद्रश्चात्राधिदैवतम् ।

कुञ्चितं दक्षिणं कृत्वा वामपादं प्रसारयेत् ॥ १० ॥

आलीढं परिव(र्त?ते)न प्रत्यालीढमिति स्मृतम् ।

दक्षिणस्तत्र समः(?) पादस्यश्रः पक्षस्थितोऽपरः ॥ ११ ॥

समुन्नतकटिर्वामश्चावहित्यं तदुच्यते ।

एकः समस्थितः पादो द्वितीयोऽग्रतलान्वितः ॥ १२ ॥

(शूद्रमविद्धं वात?)श्चक्रान्त उच्यते ।

स्थानत्रयमिदं स्त्रीणां नृणामपि (भवेत्) क्वचित् ॥ १३ ॥

कटीपार्श्वे करौ वक्त्रमुरो ग्रीवा शिरस्तथा ।

स्थानकेषु समस्तेषु कार्यमेतत् क्रियानुगम् ॥ १४ ॥

क्रियाणां पुनरानन्त्यात् समस्तेन न शक्यते ।

व(क्त्रं?क्तुं) तथापि दिङ्मात्रमस्माभिः (सं)प्रदर्श्यते ॥ १५ ॥

हृष्टायाः प्रिय(विच?) नार्याः पुरुषस्य वा प्रियाभ्यर्णे ।

भवति स्थितसंस्थानं त्रिभिरिति तच्च कथयामः(?) ॥ १६ ॥

यद् ब्रह्मसूत्रमृज्वागते भवेत् (तन्मत्तभागेऽपि?) ।

अवय(व)विभागतस्तत् कथयामः साम्प्रतं क्रमशः ॥ १७ ॥

(शीनं तत्रय वि?) नासिकाधरपुटेषु सृक्कणि च ।

(कंगंते परचूचुकपूर्वेण कलान्तरे?) नाभौ ॥ १८ ॥

पश्चाद्दूरोर्मध्ये पश्चिमगुल्फस्य तद्दन्ते च ।

(स्थाने त्रिभंगा भामिनि?) (सू)त्रस्य गतिर्विनिर्दिष्टा ॥ १९ ॥

पादौ तालान्तरितौ कर्तव्यौ स्थानके त्रि(भागा?भङ्गा)ख्ये ।

पोडशविंशत्यङ्गुलमध्येऽन्तरितौ (पितुदडिदाक्षे?) ॥ २० ॥

गमनं त्रिविधं प्राहुर्द्वैतमध्यत्रिलम्बितप्रभेदेन ।

(स्थानेष्वर्धनेत्राख्यभित्तिषु त्रयगमध्ये?) ॥ २१ ॥

प्रा(न्ते) करवीरस्याथ + + + + सृक्पर्यन्ते ।

कण्ठान्ते (परभागा स्तनतोऽङ्गुलदुम्भपर्यन्ते?) ॥ २२ ॥

नाभ्यासन्ने मध्ये मेदूस्त्रस्य तथा परस्य नलकस्य ।

ग्रान्ते (वज्जा?)याते गमने स्याद् ब्रह्मसूत्रगतिः ॥ २३ ॥

(सोधेगमने तु पूर्वे लोचनखीरके पुटे तद्धि ।

तविद्युकरान्ते स्तनचूकस्य मध्ये?) तथा नाभौ ॥ २४ ॥

मध्ये मेदूस्यान्ते + + + परजानुनः क्रमेणैव ।

अपराङ्गुलकमूले विज्ञेयं ब्रह्मसूत्रमिति ॥ २५ ॥

१. 'सविधे' इति स्यात् । २. 'स्थाने । वभङ्गनामनि' इति स्यात् ।

परपादद्वाद्वक्षि(?) स्थित्या क्रियते (त)थाच पूर्वाहणे ।
कुर्यात् तलमिद् भूतलमूत्रार्थं + गुलोत्क्षिप्तम् ॥ २६ ॥

भूपर्यन्तेऽपाङ्गे (चित्रुकांशो?) गोलकान्तरे नाभेः ।
सूत्रपरत्वतः पूर्वेण परावसार्धाक्षे (?) ॥ २७ ॥

पार्श्वगते संस्थाने पश्चिमपादोऽत्र सप्तगोलः स्यात् ।
द्वयर्धाक्षगमनमुक्तं त्रूमः पार्श्वगतेर्गमनम् ॥ २८ ॥

आवर्ते + + कूटे ग(डेःण्ड)ग्रान्ते च सृकभागस्य ।
गलवर्त्तां स्तनमध्ये (गालेःगोल)त्रितयान्तरे नाभेः ॥ २९ ॥

(स्फिकृपार्श्वपश्चिमजानुनश्चा पूर्वार्तमामृतं सूत्रम् ।
स्यादपरपाष्णिपूर्वस्थितं चभिवेत्थोने?) ॥ ३० ॥

क्षपयेत् परभागाह्नि(?)स्वस्मान्मानाद् यथोदितादत्र ।
(पूर्वाह्ने?)रङ्गुष्टः कर्तव्यो भूमिसूत्रस्थः ॥ ३१ ॥

पश्चादङ्गुष्टाग्रं सुश्लिष्टं स्याद् विलम्बिते गमने ।
अङ्गुष्टाङ्गुले ब्रह्मसूत्रतस्तालिके मध्ये(?) ॥ ३२ ॥

द्रु(त)गमनेऽङ्गुष्टाग्रं कर्तव्यं षोडशाङ्गुलेऽस्मात् ।
(परपादाभूमेसः?) (प्रेःप्रोत्)क्षिप्तो भवति पूर्वपादश्च ॥ ३३ ॥

इति सर्वेषु ज्ञेयं गमनस्थानेषु संस्थानम् ।
(गोत्राणां मध्येपां?) विदधीत युवः स्थितिं यथायोगम् ॥ ३४ ॥

(त्रिन्यासयोपणाक्षिप्तण?) दृष्टिहस्तादिविनिवेशैः ।
अ(थ) स्थानचतुष्कस्य प्रविच्छन्दककीर्तनात् ॥ ३५ ॥

अन्या अपि क्रिया लेख्याः सम्भवन्तीह या नृणाम् ।
शिष्याणां प्रतिपच्यर्थं सूत्राणि त्रीणि पातयेत् ॥ ३६ ॥

ब्रह्मसूत्र(मभेःगते) सूत्रे ये च पा(र्वेःश्व)समाश्रये ।
ऊर्ध्वानि त्रीणि सूत्राणि स्थानकेष्व(भिध्वपि?) ॥ ३७ ॥

कुर्वीत तेषु मध्ये यद् ब्रह्मसूत्रं तदुच्यते ।
भित्तिके पुनरन्यस्य भागस्यापेक्षया मतम् ॥ ३८ ॥

पार्श्व(स्तिःस्थं) ब्रह्मसूत्रं स्यात् कार्यतो मध्यगं हि तत् ।
ये द्वयोः पार्श्वयोः सूत्रे + + + + हि ते स्मृते ॥ ३९ ॥

प्रदेशावयवस्यात्र निष्पत्त्यै यद्यदीप्सितम् ।
तत्र सूत्रं विधातव्यं तिर्यग्ूर्ध्वानुसारतः ॥ ४० ॥

अपेक्षेतानि(?) यावन्ति प्रत्यङ्गव्यक्तिसिद्धये ।
तावन्त्यवयवव्यक्तिसिद्धयै तिर्यङ् नियोजयेत् ॥ ४१ ॥

ऊर्ध्वानि त्रीणि सूत्राणि तिर्यङ्मा(ना)नुसारतः ।

स्थानानि वैष्णवमुखान्युदितानि सम्यक्
(त्रिमंगितडिते?)गमनैरुपेते ।

सूत्रस्य पातनविधिश्च यथावदुक्तो

ज्ञाते (न?) भवेत् तदिह सूत्रभृतां वरिष्ठः ॥ ४२^१/_२ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारनाम्नि बाल्लुशास्त्रे
वैष्णवादिस्थानकलक्षणध्यायो नामैकोनाऽमाशीतितमः ॥

—:o:—

अथ पञ्चपुरुषस्त्रीलक्षणं नामैकाशीतितमोऽध्यायः ।

—:o:—

पञ्चानां हंसमुख्यानां (देहवन्धाति खन्तृणाम्?) ।

दण्डिनीप्रमुखानां च स्त्रीणां (तां?) ब्रूमहे पृथक् ॥ १ ॥

हंसः शशोऽथ रुचको भद्रो माल(व्य) एव च ।

(पञ्चैते) पुरुषास्तेषु मानं हंसस्य कथ्यते ॥ २ ॥

अष्टाशीत्यङ्गुलो हंसस्यायामः परिकीर्तितः ।

विज्ञेया वृद्धिरन्येषां चतुर्णां द्वयङ्गुलक्रमात् ॥ ३ ॥

तस्यङ्गुलद्वयं सार्धं (शाँटालं?) नासिका मुखम् ।

ग्रीवा च (वैक्तथयमोद्?) भवेदेकादशाङ्गुलम् ॥ ४ ॥

१. 'देहवन्धादिकं नृणाम्' इति, २. 'तद्' इति, ३. 'लटाटं' इति, ४. 'वक्ष-
ध्यानामात्' इति च स्यात् ।

एवमेवोदरं नाभिमेद्वयोरन्तरं दश ।

विंशतिश्चाङ्गुलान्मूले जङ्घे च त्रीणि जानुनी ॥ ५ ॥

त्रीण्यङ्गुलान्यङ्गुले च केशभूरङ्गुलद्वयम् ।

केशान्तमानं सर्वेषामधिकं स्यात् स्वमानतः ॥ ६ ॥

निस्तारेण भवेद् वक्षस्तस्यैवाङ्गुलविंशतिः ।

द्वादशाङ्गुल(निस्तारो बाहुसंसस्यः) निर्दिशेत् ॥ ७ ॥

दशाङ्गुलौ प्रकोष्ठौ च (हस्ततथे + + + + ?) ।

तथा पृथक्पृथक् चक्षुषिः पीनाङ्गुलि(?) ततो भवेत् ॥ ८ ॥

इंसस्वभोजेन पृथग + + म्भारनासिकाः (?) ।

(अंसस्यः) अङ्गुलं + + नासिका वक्षभोजे च ॥ ९ ॥

ग्रीवाणि तत्रमाण्येव (ग्रीव)क्षस्त्वैकादशाङ्गुलम् ।

तयोदरं तथा नाभिमेद्वयोरन्तरं दश ॥ १० ॥

दश विंशतिमात्रौ च अक्षस्य परिकीर्तितौ ।

अङ्गुले जानुनी (अङ्गुल)ङ्घ्रे मात्राविंशतिमायते ॥ ११ ॥

मुक्तौ च अङ्गुल्यायामौ तालन्मात्रं शिरो भवेत् ।

त्रायामो(ग्रीवो) वक्षस्यै(ग्रीवो) स्यान्नरत्यङ्गुल्योम्भितः ॥ १२ ॥

द्विविधं च अङ्गुलं (वेद्यो) विस्वालोपास्य कीर्तिनम् ।

सङ्घ्रयसङ्घ्रयणी च वक्षस्यापि इंसन् ॥ १३ ॥

सर्वमानं च कर्तव्याऽऽयः स्वभावात् कुर्वोदरः ।

तयोपरेण कर्तव्येन वा डिडान(?) निवर्त्यते ॥ १४ ॥

वक्षस्य विस्वावापयामि, प्रोक्तः मानेदया अङ्गुलः ।

प्रोक्तः अङ्गुल्यने मानत्राऽपिनास्व कीर्तिना ॥ १५ ॥

रुद्धादया अङ्गुली(यो)पूरेकृत्ये(यो) प्रमाणतः ।

वक्षस्यैवोदरे इंसन् तालन्नेदयादरे इंस ॥ १६ ॥

१. 'अङ्गुल' २. 'अङ्गुल' ३. 'अङ्गुल' ४. 'अङ्गुल' ५. 'अङ्गुल' ६. 'अङ्गुल' ७. 'अङ्गुल' ८. 'अङ्गुल' ९. 'अङ्गुल' १०. 'अङ्गुल' ११. 'अङ्गुल' १२. 'अङ्गुल' १३. 'अङ्गुल' १४. 'अङ्गुल' १५. 'अङ्गुल' १६. 'अङ्गुल'

विंशतिश्चाङ्गुलान्यूरु जानुनी चाङ्गुत्रयम् ।
 विंशत्यङ्गुलमायामं जङ्घयोस्तस्य निर्दिशेत् ॥ १७ ॥
 अङ्गुलत्रितयं गुल्फौ कुर्यात् तस्य शिरोऽपिच ।
 द्विनवत्यङ्गुलायामो रुचकः परिकीर्तितः ॥ १८ ॥
 इत्यायामोऽस्य विस्तारो वक्षसोऽङ्गुलविंशतिः ।
 भुजौ दशाङ्गुलायामौ प्रकोष्ठौ तद्देव च ॥ १९ ॥
 एकादशाङ्गुलौ हस्तौ विस्तारेणास्य कीर्तितौ ।
 पीनांसः पीनवाहुश्च स(लिःली)लगतिचेष्टितः ॥ २० ॥
 बलवान् वृत्तवाहुः स्याद् रुचको रुचकाकृतिः ।
 भद्रस्य प्राहुरायामं मस्तकस्याङ्गुलत्रयम् ॥ २१ ॥
 एकादशाङ्गुला + + ग्रीवा सार्धाङ्गुलत्रया ।
 वक्षो जठरमप्यस्य सपादैकादशाङ्गुलम् ॥ २२ ॥
 नाभिमेट्रान्तरं चास्य विद्यात् सार्धदशाङ्गुलम् ।
 आयाममूर्ध्वोर्जानीयात् सपादाङ्गुलविंशतिम् ॥ २३ ॥
 जङ्घे च तावदायामे जानुगुल्फं त्रिमात्रकम् ।
 (चतुर्तवर्तिसरामो चन्द्रस्यैप?) प्रकीर्तितः ॥ २४ ॥
 आयाम एष विस्तारो वक्षसस्त्वेकविंशतिः ।
 एकादशाङ्गुलौ वाहू तस्य + + + + + ॥ २५ ॥
 हंसादिपुंसामिदमेवमुक्तं
 यद्वा यथालक्षणमानमत्र ।
 स्त्रीणां च सम्यग् (गदिता सुखानाद्!)
 यो वेत्ति मान्यः स भवेन्वृषाणाम् ॥ २६ ॥
 इति महाराजाधिराजधीमोजदेवविरचिते समराङ्गणद्वजभारताग्नि वास्तुशास्त्रे
 पञ्चपुरुषस्त्रीलक्षणं नामाध्या(योऽय एका)शीतितमः ॥

:०:

१. 'चतुर्नवतिरायामो भद्रस्यैप' इति त्वात् । २. 'अवधिष्टानान्नानां विस्तारसभिवेशादिकं, माहध्यादिलक्षणं चेह भवन् । तदेतत् २८५ तम श्लोके निमित्तात् 'वृषः' इत्यादिभाष्यजातादवगम्यन् ।

अथ रसदृष्टिलक्षणं नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ।

—:०:—

रसानाम(स्य?थ) वक्ष्यामो दृष्टीनां (वेइ?) लक्षणम् ।
तदायत्ता यतश्चित्रे भावव्यक्तिः प्रजायते ॥ १ ॥

शृङ्गारहास्यकरुणा रौद्रेयोभयानकाः ।
वीर(प्रत्ययाक्षौ?) च वीभत्सश्चाद्भुतस्तथा ॥ २ ॥

शान्तश्चैकादशेत्युक्ता रसाश्चित्रविशारदैः ।
निगद्यते क्रमेणैषां सर्वेषामपि लक्षणम् ॥ ३ ॥

सभ्रुकम्प(कटीक्षपेच?) तथा प्रेमगुणान्वितः ।
यत्रेष्टललिता चेष्टा स शृङ्गारो रसः स्मृतः ॥ ४ ॥

विकासिललितापाङ्गो मृदु चा(?)स्फुरिता(ध)रः ।
लीलया सहितो यश्च स हास्यो रस उच्यते ॥ ५ ॥

अधुक्छिन्नक(पो)लान्तः शोकसङ्कुचितेक्षणः ।
चित्तसन्तापसंयुक्तः प्रोच्यते करुणो रसः ॥ ६ ॥

निर्माजितललाटान्तः संरक्तोद्दृष्टलोचनः ।
दन्तदृष्टाधरोष्ठो यः स रौद्रो रस उच्यते ॥ ७ ॥

अर्थलाभमुतोत्पत्तिप्रियदर्शनहर्षजः ।
सञ्जातपुलकोद्भेदो रसः प्रेमा स उच्यते ॥ ८ ॥

वैरिदर्शनविनाससम्भ्रमोद्भ्रान्तलोचनः ।
हृदि संश्लोभयोगाच्च रसो ज्ञेयो भयानकः ॥ ९ ॥

(अष्टावष्टम्भसमेर्था?)मूत्रसङ्कुचितानतः ।
वैर्यवीर्यवञ्चोत्प(ना?न्नः) स वीरस्तु रसः स्मृतः ॥ १० ॥

(इपेदृप्तसित्तत्र कस्तच?)स्तिमिततारकः ।
असम्भाव्यं विलोक्यार्थमद्भुतां नायने रसः ॥ ११ ॥

अ(धिःवि)कारैः प्रसन्नैश्च श्रूनेत्रवदनादिभिः ।

अरागाद् विषयेषु स्याद् यः स शान्तो रसः स्मृतः ॥ १२ ॥

इत्येते चित्रसंयोगे रसाः प्रोक्ताः सलक्षणाः ।

मानुषाणि पुरस्कृत्य सर्वसत्त्वेषु योजयेत् ॥ १३ ॥

इति रसाः ।

अथ दृष्टीरभिदध्मो ललिता हृष्टा विक्रासिता विकृता ।

श्रुकुटी विभ्रमसंज्ञा संकुचिता (छवितनाप्रीव?) ॥ १४ ॥

ऊर्ध्वगता योगिन्यथ दीना दृष्टा च (विविष्टद्वला खेवे?) ।

(स्यादङ्किता?)मिधाना (विविख्याव?)जिह्वा च ॥ १५ ॥

मध्यस्थेति तथान्या स्थिरेति (चाष्टावेवमुद्दिष्टा?) ।

एता दृशोऽथ लक्षणमेताना(सा)मुच्यते क्रमशः ॥ १६ ॥

विकसित(प्रगृह्याससम्भ्रमत्र?) कटाक्षविक्षेपा ।

शृङ्गाररसोद्भूता दृष्टिर्ललितेति विज्ञेया ॥ १७ ॥

प्रियदर्शने प्रसन्ना प्रोद्गतरोमाञ्चविकसिता(पा)ङ्गा ।

(प्रस्तरसासि?,जाता हृष्टा दृष्टिः समाख्याता ॥ १८ ॥

विकसितनयनप्रान्ता वि(कःका)सितापाङ्गनयनगण्डनला ।

क्रीडाकारयुता(न्या) हास्यरसे (स्याद्) विक्रासिता दृष्टिः ॥ १९ ॥

विरुध्याता प्रीतिविकारि(?)व्यक्तभया भ्रान्ततारका या च ।

क्षेया(विकृत्यकारैः सारै च?) भयानका दृष्टिः ॥ २० ॥

(दीप्तिर्यनाकातासप्रतता?) मन्ददर्शना ।

दृष्टिर्ध्वं निविष्टे(ष्टा) तु श्रुकुटिः परिकीर्ति(तःता) ॥ २१ ॥

सत्त्वस्था दृढलक्ष्णा स(त्तोष्ट?त्तोष्ट)(व)व्यक्ततारका सौम्या ।

(विप्रत्यपरजालता?) दृष्टिः स्वाद् विभ्रना नाम ॥ २२ ॥

१. 'विदुःशयैः' इति त्वात् । २. 'सत्त्वस्था' इति त्वात् । ३. 'चाष्टादेवै-
वमुद्दिष्टः' इति त्वात् । ४. 'सत्त्वस्था' इति त्वात् ।

मन्मथनदेन युक्ता स्वमेरसोन्मीलितान्निपुण्युग्मा ।

(सुनर?) मुखानन्दयुता (सङ्कुचिता नाम इष्टि(राज)ता) ॥ २० ॥

निर्विकारैःरा) कचिन् तावन्नासिकाग्रावलोक्तिः ।

योगि(नी) नाम सा इष्टिस्तत्त्वे चित्तस्य योजनात् ॥ २१ ॥

अथेवभोत्तर(र)पुत्रा किञ्चिन् संकटनारका ।

मन्दमञ्जारिणी सात्ता गोकुले दीनाभिधीयते ॥ २२ ॥

संस्थिते नारके यस्याः स्थिरा विक्रमिता तथा ।

नन्वनुद्विग्नी इष्टा इष्टिकत्साइमम्भवा ॥ २३ ॥

म्यानत्रपुत्रपक्ष्मा वा शिथिला मन्दनारिणी ।

(क्राम?) मविद्वारा न विद्वया (नोपया?) स्मृता ॥ २४ ॥

किञ्चिद्यथा स्थिरा किञ्चिदुत्ताना नियेगायता ।

नू द्वा?दा, यकिन्नाग न यद्विता इष्टिरिन्दने ॥ २५ ॥

मानि कुञ्चितापक्ष्मा वा पुष्टिगुञ्चि विम्बिता तथा ।

पताकादिचतुष्पष्टिहस्तलक्षणं नाम त्र्यशीतितमोऽध्यायः ३०१

प्रोक्तं रसानामिदमत्र लक्ष्म दृशां च सांक्षिप्ततया तदे(त्येःत्) ।
(विज्ञेयचित्रालिखनान्तराणां?) न संशयं याति मनः कदाचित् ॥

इति महाराजधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समगङ्गणसूत्रधारनाम्नि वास्तुशास्त्रे

रसदृष्टिलक्षणाध्यायो ना(वैका?म द्व)शीतितमः ॥

—:0:—

अथ पताकादिचतुष्पष्टिहस्तलक्षणं नाम
त्र्यशीतितमोऽध्यायः ।

—:0:—

चतुःपष्टिरिहेदानीं हस्तानामभिधीयते ।
लक्षणं विनि (योगश्च) योगायोगविभागतः ॥ १ ॥
पताकस्त्रिपताकश्च तृतीयः कर्तरीमुखः ।
अर्धचन्द्रस्तथारालः शुक्रतुण्डस्तथापरः ॥ २ ॥
मुष्टिश्च शिखरश्चैव कपित्यः खट्कामुखः ।
मूच्या(स्या?स्यः) प.ब्र)कोशाहि(शि)रसौ मृगशीर्षकः ॥ ३ ॥
काङ्गलपद्मकोलश्च(?) चतुरो भ्रमरस्तथा ।
हंसास्यो हंसपक्षश्च सन्दंशमुकुला(वैदि?) ॥ ४ ॥
ऊर्णनाभस्ताम्रचूढ इत्येषा चतुरन्विता ।
हस्तानां विंशतिस्तेषां लक्षणं कर्म चोच्यते ॥ ५ ॥
प्रसारिताग्राः सहिता यस्याङ्गुल्यो भवन्ति हि ।
कुञ्चितश्च तथाङ्गुष्टः स पताक इति स्मृतः ॥ ६ ॥
उत्क्षिप्तेन (शिरो या + त्पाणिनां मेरसा?) पुनः ।
नतेन वामतः किञ्चिद् भ्रुकुटीकुटिलभ्रु च ॥ ७ ॥
तोकविष्कारिताक्षेण प्रहारमभिनिर्दिशेत् ।
प्रतापनं तथोद्भूतो(नरेसोग्रतेन च?) ॥ ८ ॥

१. 'विशय चित्रं लिखवां नराणां' इति श्यात् । २. 'काङ्गूलकालपक्षश्चे'ति लक्षण-
दृष्टपाठानुसारेण पठ्यन् । ३. 'वपि' इति स्यात् ।

तथैवाविकृतास्येन भालस्थः किञ्चिद् विचलितः करः (?) ।

पताकस्फोरिताक्षेण भ्रुकुटीकुञ्चितभ्रुवा ॥ ९ ॥

कार्योऽहमिति गर्वः स्याच्चित्रशास्त्रविशारदैः ।

अर्थेषु वक्ष्यमाणेषु संयुतं चैनमाचरेत् ॥ १० ॥

द्वितीयहस्तयुक्तो यः स हस्तः संयुतः स्मृतः ।

(तत्राग्निसूपणाचामः पुरतो क्षिणतः पुनः?) ॥ ११ ॥

ऊर्ध्वं प्रसर्प्य कर्तव्यः प्रचलद्विरला(ङ्गुलिः) ।

विदध्यादित्थमेवो(क्तो?क्तं) वर्षधारानिरूप(णम्) ॥ १२ ॥

(कित्त्वधामियंतं तौ तावमच्छन्तौ च?) दर्शयेत् ।

पुष्पवृष्टिप्रपतने प्रचलद्विरलाङ्गुलिः ॥ १३ ॥

कार्यं हस्तद्वयं वक्रं त्रयोऽप्यत्राधिकारिद्यः (?) ।

(कैतव?) + + चोत्तानं विधाय स्वास्तिकं बुधः ॥ १४ ॥

कुर्वाणो विच्युतिं तस्य पल्वलं सम्प्रदर्शयेत् ।

पुष्पोपहारं (सष्पणि?) ये चार्था भूतलस्थिताः) ॥ १५ ॥

तानुन्नमितवामभ्रूः किञ्चिदुद्वाहय(शिःञ्छि)रः ।

तादृशं हस्तयुग्मं तु कुर्यादविकृताननः ॥ १६ ॥

अधोमुखं (च) तेनैव कर्तव्या (प्रःघ)टना मिथः ।

संवृतं वा (थ) विश्लिष्टं तागः + + + + + ॥ १७ ॥

दर्शनीयं च वदनमस्मिन्नविकृतं सदा ।

(यो?पा)ल्यं छ(तन?न्न च) कर्तव्यं (श्लकशे परस्परा?) ॥ १८ ॥

किञ्चिद्विनतमूर्धा च विधायाधोमुखौ तलौ ।

निविडं निविडे(मै?नै?व) निर्विकारमुखाम्बु(जाःजः) ॥ १९ ॥

उरसोऽग्रे तथोर्ध्वेन परावृत्ते च हस्तयोः ।

युगलेन मन(सा?शु शक्तिं प्रयत्नेन प्रदर्शयेत् ॥ २० ॥

गोप्यं वामेन गुप्तेन किञ्चिद्विनतमस्तकः ।

किञ्चिदाकुञ्चितां वामां भ्रुवं कृत्वा प्रदर्शयेत् ॥ २१ ॥

पार्श्वस्थेन पताकेन (पाण्यङ्गद्वितयेन तु ।
 अधिकस्थेन पताकेन?) पाण्यञ्जद्वितयेन तु ॥ २२ ॥
 अधिकारिमुखे(?) वायोः कुर्यादभिनन्द(?)यं ततः ।
 नतोत्त + शिरास्तेन (द्विहित भ्रुकुटिमानके?) ॥ २३ ॥
 वेलामुर्वी च मतिमान् पाणियुग्मेन दर्शयेत् ।
 पुरःस्थितेन वामेन दक्षिणेन तु पाणिना ॥ २४ ॥
 (तसृष्टे?) सर्पता स्तोकमुद्राहितशिरा न(राःरः) ।
 वेगं प्रदर्शयेन्नित्यमविकारि दधन्मुखम् ॥ २५ ॥
 (इत्युश्वेनुश्च?) चलता हस्तयोर्द्वितयेन तु ।
 मूर्ध्ना तदनुगेनैव तथैव विकृताननः ॥ २६ ॥
 क्षोभस्या(भि)नयं कुर्याद्धस्ताभिनयकोविदः ।
 (उधस्त्वधो मुखेनावः यतन्परार्थतापि च?) ॥ २७ ॥
 पताकेनाभिनेतव्यो विधाय भ्रुकुटिं मनाक् ।
 पार्श्वव्यवस्थितेनोर्ध्वं चलद्ङ्गुलिना मुहुः ॥ २८ ॥
 उत्साहनं विधातव्य(हुँत्तप्य?) (च) शिरोधराम् ।
 तिर्यग्विष्कार्यमाणेन प्रभूतमभिनिर्दिशेत् ॥ २९ ॥
 महतोऽभिनयः कार्यः पार्श्वयोरूर्ध्वसर्पिणा ।
 भ्रान्तेनोत्तानिते(चानिकृतास्येन सिंहाजनम्?) ॥ ३० ॥
 रूपयेदुच्चमुच्चेन पताकेनैव पाणिना ।
 इतस्ततः प्रचलता दर्शयेत् पुष्कराहतिम् ॥ ३१ ॥
 (सत्ताक्षपेण वक्त्रेण चलथै + मुखेन च?) ।
 स्थितेन पार्श्वयोस्तिर्यग् रिच्यमानेन दर्शयेत् ॥ ३२ ॥
 पक्षोत्क्षेपाक्रियां नित्यं वक्त्रेण विकृतेन च ।
 उत्तानितेन वामेन विधृतेनेतरेण तु ॥ ३३ ॥

१. 'अविकारिमुखो' इति स्यात् । २. नाट्यशास्त्रे पताकहस्तकर्मनिरूपणप्रसङ्गे
 'वामुर्ध्वेनवेलाधोभे'त्यादिदर्शनादत्र 'वेलामूर्ध्वमिति' पाठ्यं भाति । ३. 'मुद्रान्' इति
 स्यात् । ४. 'नापिकृतास्येन नराजनम्' इति स्यात् ।

पार्श्वतो नमता (कार्या प्राणेना?) नतमस्तकैः ।
 निदर्शनं तथोद्गृत्तेनोर्ध्वाङ्गुलिशिखेन (रः?च) ॥ ४६ ॥
 प्रसर्पितमुखस्याग्रे विधिसम्बन्धनं पुनः(?) ।
 उत्तानेना(सुमाङ्गुल्या श्वहीत्वा?)नामिकाख्यया ॥ ४७ ॥
 मङ्(गुःग)लयानां समालम्भः पदार्थानां विधीयते ।
 पराङ्मुखेन शिरसः प्रदेशे सर्पता तथा ॥ ४८ ॥
 प्र(वेश?दर्श)येच्छिरःसन्निवेशमेतेन पाणिना ।
 एतानि दर्शनीयानि सर्वाण्यविकृताननैः ॥ ४९ ॥
 हस्तद्वयेनोभयतः केशानासन्नवर्तिना ।
 उष्णीषमुकुटादीनि प्राप्नोतीति निरूपयेत् ॥ ५० ॥
 कर्तव्यः (सोत्रैनाशास्यं विधानेन समीपरा?) ।
 पाणिः कृतभ्रुकुटिना (तैत्रोद्वस्तो?)ङ्गुलिद्वयः ॥ ५१ ॥
 अधोमुखं प्रस्थिताभ्या(मङ्गुलीभ्यां) प्रदर्शयेत् ।
 चलाभ्यां मुकुलाभ्यां च हस्तस्यास्यैव (पद्यंदां?) ॥ ५२ ॥
 दर्शयेत् पाणियुग्मेन कदाचित् पक्षिणो लघून् ।
 पवनप्रभृतींश्चैव पदार्थानपरानपि ॥ ५३ ॥
 चलिताङ्गुलिना हस्तद्वयेना(द्योर्नति + स्या?) ।
 अधोमुखेन वा (श्रोःस्रो)तो दर्शयेत् सर्पता पुरः ॥ ५४ ॥
 ऊर्ध्वावस्थितिना गङ्गास्रोतः सूत्रनिभेन च ।
 अधो वि(नि?न)मता पाणिद्वितयेन प्रदर्श(ना?ये)त् ॥ ५५ ॥
 पुरः प्रसर्पतैकेन चलता विकृतान(मः?नः) ।
 हस्तेन सर्पाभिनयं विदर्शित विचक्षणः ॥ ५६ ॥
 अङ्गुलिद्वितयेनाधोमुखेनाधुप्रमार्जनम् ।
 कुर्यात् कनीनिकादेशसर्पिणा विनताननः ॥ ५७ ॥

१. 'कार्यः प्रणामो' इति स्यात् । २. 'निदर्शनं विधिस्वरचने च' इति विश्व-
 कद्वस्तकर्मप्रदर्शनप्रकरणे हुनिः । ३. 'ओत्रनः.उ.स्वविधाने उ उर्नामः।' इति, ४. 'तयो-
 र्भस्या' इति च स्यात् । ५. 'पद्यंदां?' इति स्यात् । ६. 'धो नवेन च' इति स्यात् ।

सोऽर्धचन्द्र इति प्रोक्तः करः कर्मा(चःस्य) कथ्यते ।
तेनोन्नतभ्ररेकेन शशिलेखां प्रदर्शयेत् ॥ ७० ॥

(मध्यस्थौ यस्य?)मायस्तं कुर्यान्निर्घाटनं तथा ।

पीनं बालद्रुमाः (क)म्बु कलशा बलयानि च ॥ ७१ ॥

प्रदर्शनीयान्येतेन संयुतेनेति चापरे ।

रशनाकुण्डलादीनां तलपत्रस्य चागुना ॥ ७२ ॥

कटीजघनयोश्चाभिनयस्तद्देशवर्तिना ।

अस्याप्यनुगता दृष्टिः का(र्शाः?)सर्वत्र नर्तकैः ॥ ७३ ॥

इत्यर्धचन्द्रः ॥

आद्या धनुर्नता कार्या कुञ्चितोऽङ्गुष्ठकस्तथा ।

शेषा भिन्नोर्ध्ववलिता अरालेऽङ्गुलयः स्मृताः ॥ ७४ ॥

(अस्मृतेनाग्रतोतेन?) किञ्चिदभ्युत्थितेन च ।

सत्त्वशौण्डीर्यगाम्भीर्यधृतिकान्तीः प्रदर्शयेत् ॥ ७५ ॥

दिव्याः (पापार्ध?) ये चान्ये तानप्यधिकृताननः ।

दर्शयेदुन्नतभ्रुश्च पाणिनानेन नर्तकः ॥ ७६ ॥

आशीर्वादं (तथा कानां?) स्त्रीकेशग्रहणं च यत् ।

निर्वर्णनं च सर्वाङ्गमा(लः?)नो यद् विधीयते ॥ ७७ ॥

उत्कर्षणं च तत् सर्वं कार्यमभ्युन्नतभ्रुवा ।

दर्शयेद्धस्तयुग्मेन प्रदक्षिणगतेन च ॥ ७८ ॥

विवाहं संप्रयोगं च कौतुकानि बहूनि च ।

अङ्गुल्यग्रसमायोगरचितस्वस्तिकेन च । ७९ ॥

परिमण्डलयातेन प्रादक्षिण्यं प्रदर्शयेत् ।

परिमण्डलसंस्थानं तथानेन महाज(लः?)म् ॥ ८० ॥

द्रव्यं महीतले यच्च रचितं तत् प्रदर्शयेत् ।

दानं वारणमादानमनेक (वचनं तथा) ॥ ८१ ॥

१. 'मध्यमोपम' इति स्यात् । २. 'आमृतेनाग्रतोऽनेन' इति स्यात् । ३. 'पदार्था'
इति स्यात् । ४. 'तयैकेन' इति स्यात् ।

दर्शयेन्नलता तेन हस्तेनासंगुतेन च ।

स्वेदापनयनं कार्यं न(स्वादिन्वा)घ्राणं तथामुना ॥ ८२ ॥

तत्पदेशे प्र(दृत्तेन) पाणिना नृत्तहोनिदैः ।

योगितां विषये चैव (पाणिना?) प्रायेण युज्यते ॥ ८३ ॥

रुमाण्येतानि सर्वाणि विपत्ता(क्तः सःकव)द्वाचरेत् ।

नाशमित्यभिनेतव्या(मंस्याद्दश?)स्थितेन च ॥ ८४ ॥

अस्यानुयागिनीं दृष्टिं विद्भीत भ्रुवौ तथा ।

इत्यराळ ॥

अगर्ज(कःस्य) यदा न(हानाभिक्ता)त्वाङ्गुलिभवेत् ॥ ८५ ॥

गुह्यपुः स विपत्ताः कर्म चास्याभिधीयते ।

न चापव्यमुना विपत्तं प्रकृतेन पदमेवेत् ॥ ८६ ॥

अपनेन नृ(द्वेन) कृत्वापिनि निदिश्येत् ।

अपानेन पुनः न च साविपत्तं पुः ॥ ८७ ॥

कृत्वाहसादं विपत्तं (पाप?) विपत्तेन च ।

अपनेन नृ(द्वेन) न कृत्वापिनि नाप्याप(?) ॥ ८८ ॥

अपि विपत्तं विपत्तं (न) पदमेवेन प्रकृते ।

अपनेन नृ(द्वेन) न कृत्वापिनि नाप्यापि ॥ ८९ ॥

श्रीमद्भृगुः ॥

अपनेन नृ(द्वेन) कृत्वापिनि नाप्यापि ॥ ९० ॥

अपनेन नृ(द्वेन) कृत्वापिनि नाप्यापि ॥ ९१ ॥

अपनेन नृ(द्वेन) कृत्वापिनि नाप्यापि ॥ ९२ ॥

अपनेन नृ(द्वेन) कृत्वापिनि नाप्यापि ॥ ९३ ॥

श्रीमद्भृगुः ॥

(यैष्यतिग्रहणमात्रमर्धने?) स्तनपीडने ।
असं(स्तुःयु)तो विधातव्यो (सुदृष्टिभ्रवो तथा?) ॥ ९२ ॥

अस्यैव तु यदा मुष्टेरूर्ध्वोऽङ्गुष्ठः प्रयुज्यते ।
हस्तः स शिखरो नाम तदा ज्ञेयः प्रयोक्तृभिः ॥ ९३ ॥

अयं वामो विधातव्यः कुशरश्मि(चतुर्हि + ?) ।
हस्तद्वयं व्याप्रियतो(?) (श्रो(सृ)णिग्रहणकर्मणि ॥ ९४ ॥

शक्तितोमरमोक्षे तु सव्यहस्तः प्रयुज्यते ।
पादौष्ठरञ्जने चैव चलिताङ्गुष्ठको भवेत् ॥ ९५ ॥

अलकस्य समुत्क्षेपे तत्प्रदेशस्थितो भवेत् ।
दुर्यादनु (ग)तामस्य दृष्टिभ्रयुगलं(?) तथा ॥ ९६ ॥

इति शिखरः ॥

अस्यैव शिखराख्यस्य (अ(त्र्य)ङ्गुष्ठकनिपीडिता ।
यदा प्रदेशिनी वक्रा स कपित्थस्तदा स्मृ(ताःतः) ॥ ९७ ॥

चापतोमरचक्रासिशक्ति(चक्रांगदाविना?) ।
एतेनान्यानि शस्त्राणि सर्वाण्यभिनयेद् बुधः ॥ ९८ ॥

सत्यप्यभिनये जन्म + + + विक्षिपेन्मुहुः ।
अत्रापि हस्तानुगतं दृष्टिभ्रकर्म शस्यते ॥ ९९ ॥

इति कपित्थः ॥

उत्क्षिप्तवक्रा तु यदा(तां कार्या?) सकनीयसी ।
अस्यैव तु कपित्थस्य (पंदांशौपटकमुखः?) ॥ १०० ॥

अनेन द्वौत्रं हृष्यं च नमतान्नं विधीयते ।
द्वाभ्यामाकर्षण(च्छत्राग्रं प्रग्रहप्रदर्शनम्?) ॥ १०१ ॥

१. 'यष्टयनिग्रहणे मात्रमर्धने' इति स्यात् । २. चतुर्थः पादोऽयं दृष्टिभ्रवोर्हस्ता-
नुयानविष्यर्थस्य हस्तस्य श्लोकान्तरस्य स्यात् । ३. 'धनुर्ग्रहे' इति स्यात् । ४. 'दृष्टि भ्रु-
गलं' इति स्यात् । ५. 'वज्रगदादिना' इति स्यात् । ६. 'नामिका' इति पदमन्वार्थसाङ्ग-
त्वाय कल्पनीयम् । ७. 'तदानौ खटकानुवः' इति स्यात् । ८. 'च्छत्रप्रग्रहाणां प्रदर्शनम्'
इति स्यात् ।

(आद्यदीर्घे च विधास्ते?) विद्ध्यदुन्नतामिमाम् ।
वि(ममन्ता?नमन्ती) पुनः कुर्यादपराह्णप्रदर्शने ॥ ११३ ॥

कर्तव्या वदनाभ्याशे सा कुञ्चितविजृम्भिता ।
अङ्गु(लिं?लिः) नृत्ततत्त्वज्ञैर्वाक्यार्थस्य निरूपणे ॥ ११४ ॥

सोऽयं तदिति(?) निर्देशे प्रसृ(तौत्वा?तोत्ता)नकम्पिता ।
रोपे प्रकम्पिता(र्था?ग्रा)च हस्तेनाभ्युन्नतेन च ॥ ११५ ॥

प्रसृताग्रेण (स?न)मता (च?) कर्तव्या स्वेदरूप(णा?णे) ।
कुन्तलाङ्गदगण्डानां कुण्डलानां च रूपणे ॥ ११६ ॥

(सँद्विंश वर्तना कार्या प्राचलती च सा मूहः?) ।
ललाटसंवृतोद्भृत्ता कार्या (हंस्तिनिरूपणा?) ॥ ११७ ॥

प्रसारितोन्नामिता वा रिपूद्देशे(स?) विधीयते ।
(कांर्या संकपानी साग्रे सो प्रकोपदर्शने?) ॥ ११८ ॥

कोऽसावित्यपि निर्देशे (तया?कार्या) तिर्यग्निर्निर्गमा ।
(कर्णकूटनयेन शब्दश्रवणेस्तातसंश्रया?) ॥ ११९ ॥

कार्ये हस्तद्वयाङ्गुल्यां संयुते संमुखे युने ।
वियोगे विघटन्त्यां तु कलहे स्वस्तिकाकृती ॥ १२० ॥

(चतुधनिता?) कार्ये परस्परनिपीडने ।
ऊर्ध्वाग्रचलिता यावत् कर्त(स्यै?व्यै) के + पर्णने ॥ १२१ ॥

कुर्याद् दृशं भ्रुवां चा(स्य) हस्तस्यानुग(तं?ते) युवः ।

इति मूर्धन्यसः ।

यस्याङ्गुल्यस्तु (पिरलाभाभोरुहाङ्गुष्ठेन) सुञ्चिताः ॥ १२२ ॥

ऊर्ध्वाक्ष सङ्गताग्राश्च (स) भवेत् पञ्चकोरुहः ।

श्रीफला(क?)स्य कपित्थस्य ग्रहणं तेन रूपयेत् ॥ १२३ ॥

१. 'आद्य दीर्घे च विधास्ते' इति ख्यात् । २. 'ममन्ता इत्या च कार्या इत्ये इत्ये च विपक्षे च' इति तु गुणः । ३. 'तदेवमर्जिता कार्या मयन्तली च का इत्या' इति, ४. 'ललाट रूपणे' इति, ५. 'कार्या प्रकम्पिता तमे चोत्पन्नोत्पन्नदीर्घे' इति च ख्यात् । ६. 'ऊर्ध्व- कूपरुदने इत्यर्थे' इति ख्यात् । ७. 'वर्तना च' इति ख्यात् । ८. 'वर्तना च' इति ख्यात् ।

पताकादिचतुष्पष्टिहस्तलक्षणं नाम त्र्यशीतितमोऽध्यायः । ३१३

त्रेताग्निसंस्थिता मध्यातर्जन्यङ्गुष्ठका मताः(ः) ।
काङ्गुलेऽनामिका वक्रा तथाचो(र्ध्वः?धर्वा) कनीयसी ॥ १३४ ॥
(त्रेतात्तनेन) कर्क(न्तु?न्धू)प्रभृतीनि प्रदर्शयेत् ।
तरुणानि फलान्यन्यद् वस्तु किञ्चिच्च यल्लघु ॥ १३५ ॥
वाक्या(ना?न्य)ङ्गुलिविक्षेपैः स्त्रीणां रोपकृतानि च ।
मुक्तामरकतादीनां (रत्नानां) च प्रदर्शनम् ॥ १३६ ॥
हस्तेनानेन कर्तव्यं भ्रुवौ (चांसृष्टष्टमे?) ।

इति काङ्गुलः ॥

आवर्तिन्यः करतले यस्याङ्गुल्यो भवन्ति हि ॥ १३७ ॥
पार्श्वगता विकीर्णाश्च सोऽलपद्मः प्रकीर्तितः ।
तिर्यक् पुरःस्थितः कार्यो हस्तोऽयं प्रतिपेधने ॥ १३८ ॥
कस्य त्वमिति नास्तीति वाक्ये शून्ये च धीमता ।
आत्मोपन्यसने स्त्रीणां (नै सन्देशच्छेतो?) भवेत् ॥ १३९ ॥
अस्य चानुगता दृष्टिर्विधातव्या भ्रुवौ तथा ।

इत्यलपद्मः ॥

अङ्गुलयः प्रसृतास्तिस्रस्तथाचो(र्ध्वः?धर्वा) कनीयसी ॥ १४० ॥
तासां मध्ये स्थितोऽङ्गुष्ठः स करश्चतुरः स्मृतः ।
अधोमुखः प्रचलितो (मतस्येन ततत्कथा?) ॥ १४१ ॥
विनये च नये चायं कार्योऽभिनयवेदिना ।
(वैपुणा तून्नतशिवा साः कृस्वा भ्रेतां भ्रुवा?) ॥ १४२ ॥
विदध्याच्चतुरं हस्तमुत्तानं नियमे पुनः ।
किन्तु भ्रुवं + कु(टिलां) विनयं प्रति नाचरेत् ॥ १४३ ॥
अधोमुखेन हस्तेन तेन बालं प्रदर्शयेत् ।
बालप्रदर्शने कुर्याद् (कुंठीविनतानिरः?) ॥ १४४ ॥

१. 'विनोत्तानेन' इति स्यात् । २. 'चोत्सृष्टदृष्टिने' इति स्यात् । ३. 'सन्देशे
चोच्छ्रितो' इति स्यात् । ४. 'नैपुणे तून्नतशिवाः सस्वे कृस्वोन्नतां भ्रुवम्' इति स्यात् ।
५. 'भ्रुकुंठीविनतं शिरः' इति स्यात् ।

क्वचित् प्रभावता कापि (भ्रमता?) मृदुता क्वचित् ।
 प्रतीतिर्जायतेऽर्थस्य यस्य यस्य यथा यथा ॥ १५६ ॥
 प्राज्ञैस्तथा तथा शीर्षेऽभिनेयान्यु(त्यःक्त)पाणिना ।
 भ्रूट्टि(चक्रुरगोश्च?) कार्यास्तदनुसारतः ॥ १५७ ॥
 मण्डलस्थेन हस्तेन पीतं रक्तं च दर्शयेत् ।
 किञ्चिन्नतभ्रूः शिरसा परिमण्डलितेन च ॥ १५८ ॥
 तेन (दभ्रूःप्र)दर्शयेत् कृ(ष्टं?ष्णं) नीलं च परिमृद्रता ।
 चतुरेण कपोतादीन् वर्णान् स्वाभाविकेन च ॥ १५९ ॥
 इति चतुरः ॥

मध्यमाङ्गुष्ठसन्दंशो वक्रा चैव प्रदेशिनी ।
 ऊर्ध्वमन्ये (प्रकीर्णो + अङ्गुल्यो?) भ्रमरे करे ॥ १६० ॥
 कुमुदोत्पलपञ्जानां ग्रहणं तेन पाणिना ।
 तथैव दीर्घदृन्तानामन्येषामपि रूपयेत् ॥ १६१ ॥
 कर्णपूरो विधातव्यः कर्णदेशे स्थितेन च ।
 दृष्टिभ्रुवौ चाभि(न्ना?नये) तेषां कार्ये करानुगे ॥ १६२ ॥
 इति भ्रम(रा?र): ॥

तर्जनीमध्यमाङ्गुष्ठा(भ्रूःस्त्रे)ताग्निस्था निरन्तराः) ।
 भवेयुर्हंसवक्त्रस्य (शेषं सम्प्रसारिता?) ॥ १६३ ॥
 किञ्चित् प्रस्पन्दिताङ्गुष्ठेनामुनोत्क्षिप्य च भ्रुवौ ।
 निस्सारमल्पं मूर्ध्मं च दर्शयेन्मृदुलं लघु ॥ १६४ ॥
 कर्त(व्यो?व्ये)ऽभिनये चैषां दृग्भ्रुवौ च करानुगे ।
 इति हंसवक्त्रः ॥

अङ्गुल्यः प्रसृतास्तिस्त्रस्तथाचोर्ध्वा कनीयसी ॥ १६५ ॥
 अङ्गुष्ठः कुञ्चितश्चैव हंसपक्ष इति स्मृतः ।
 उत्तानेन वह्निस्तिर्थाग्नीवायजलभूषणम् (?) ॥ १६६ ॥

१. 'प्रकीर्णं द्वे अङ्गुल्यो' इति स्यात् । २. 'शेषं द्वे सम्प्रसारिते' इति स्यात् ।
 ३. 'स्तिर्थाग्नीवायजलभूषणम्' इति स्यात् ।

कर्तव्यं तेन गण्डस्य रूपस्य (गण्डवर्तनम्?) ।

कुर्वीत चैनमुत्तानं भोजने च प्रतिग्रहे ॥ १६७ ॥

तथाचमनकार्यं च कर्तव्योऽयं द्विजन्मनाम् ।

अथस्तादन्तयोरेनं कुर्यात् स्वास्तिकयोगिनम् ॥ १६८ ॥

किञ्चिन्नतेन शिरसा (यं परि यथारसम्?) ।

उभाभ्यां पार्श्वयोस्तिर्यग्भेदाभ्यां स्तम्भदर्श(नेःनम्) ॥ १६९ ॥

कुर्वीतैकेन रोमाञ्चं वामबाहुप्रसर्पिणा ।

संवाहनेऽनुलेपे च स्पर्शं त(र्दि?दे)शवर्तिनम् ॥ १७० ॥

विपादे विभ्रमे स्त्रीणां (स्तन्यं तत्स्थं यथा रसः?) ।

अथस्तलं प्रयुञ्जीत (ह?त)थेनं हनुधारणे ॥ १७१ ॥

अस्यानुयायि(नीःनीं) दृष्टिं पाणेः कुर्याद् भ्रुवौ तथा ।

इति हंसपक्षः ॥

तर्जन्यङ्गुष्ठसन्दंश(स्व रोदनस्य?) यदा भवेत् ॥ १७२ ॥

आ(नुत?भ्रु)तलमध्यश्च सन्दंश इति स स्मृतः ।

स चाग्रमुखपा(र्श्वका?र्श्व?)नां भेदेन त्रि(वि)धो भवेत् ॥ १७३ ॥

तं पुष्पावचये पुष्प(माग्रय?ग्रथ)ने च प्रयोजयेत् ।

तृणपर्णग्रहे केशसूत्रादिस्तथापरे(?) ॥ १७४ ॥

(श?शि)ल्पैकादेशग्रहणे त्वग्र(स्त?सं)दंशकं स्थिरम् ।

आकर्ष(णात्?णे) तथा कृष्णे(?) वृन्ता(त्) पुष्पस्य चोद्धृतौ ॥

विदध्यादेवमेवैनं शलाका(र?दि)निरूप(णा?णे) ।

रोपे धिगिति वाक्ये च वहिर्भागप्रसर्पिणम् ॥ १७६ ॥

(यज्ञोपचितं?) तत्प्रदेशे स्थितेन च ।

उत्तानेनोरसोऽग्रे तु संयुतेन च (निर्द्धृतम्?) ॥ १७७ ॥

१. इह कियांश्चिदंशो लुप्तः सम्भाव्यते । २. 'स्तनान्तःस्थं यथारसम्' इति । ३. 'स्तरालस्य' इति स्यात् । ४. 'केशसूत्रादेश्च परिग्रहे' इति स्यात् । ५. 'विद्य' इति स्यात् ।

पताकादिचतुष्पष्टिहस्तलक्षणं नाम त्र्यशीतितमोऽध्यायः । ३१७

(वचनं बलहा किञ्चित् समध्येनाधोमुखेन च!) ।

ग्रहणं गुणसूत्रस्य बाणलक्षणिरूपणम् ॥ १७८ ॥

ध्यानं योगं च हृद्देशवर्तिना संप्रदर्शयेत् ।

(स्तोकतिभिन्ना ये?) कर्तव्यः संयुतस्तूरसः पुरः ॥ १७९ ॥

कुत्सा(स्तम्भ्)याक्रोमलेषु सदोपवचनेषु च ।

विवर्तिताग्रः कर्तव्यो वामो विघटितो मनाक् ॥ १८० ॥

प्रवालरचने वर्तिग्रहणे नेत्ररञ्जने ।

आलेख्ये चैप कर्तव्यस्तथालक्तकपीडने ॥ १८१ ॥

अस्य भ्रुवौ च दृष्टिं च कुर्यादनुगतां ततः ।

(इति सन्दंशः ॥)

समागताग्रसहिता यस्याङ्गुल्यो भवन्ति हि ॥ १८२ ॥

ऊर्ध्वं हंसमुखस्येव स भवेन्मुकुलः करः ।

कर्तव्यः संहतोऽत्रातो मुकुलाम्भोरुहादिषु ॥ १८३ ॥

पुरः प्रस(र्प्य?र्प्यो)च्चलितः कर्तव्यो विट्चुम्बकः ।

इति मुकुलः ॥

पद्मकोशस्य हस्तस्य (अ?त्व)ङ्गुलयः कुञ्चिता यदा ॥ १८४ ॥

ऊर्णनाभः स विज्ञेयश्चौर्यकेशग्रहादिषु ।

चौर्यकेशग्रहे चैप कर्तव्योऽधोमुखः (स?क)रः ॥ १८५ ॥

शिरःकण्डूयने मूर्ध्नः प्रदेशे प्रचलन्मुहुः ।

(तैर्यकवर्ती?) विधातव्यः कुष्ठव्याधेर्निरूपणे ॥ १८६ ॥

अधोमुखः (स्थितेनाधः?) सिंहव्याघ्रादिरूपणे ।

कार्यो भ्रुकुटिवक्रत्रेण संयतोऽस्य ग्रहस्तथा ॥ १८७ ॥

अत्रापि दृष्टिभ्रूकर्म प्राग्वदेव विधीयते ।

इत्पूर्णनाभः ॥

मध्यमाङ्गुष्ठसन्दंशो वक्रा चैव प्रदेहिनी ॥ १८८ ॥

१. 'स्तोकाभिन्ने' इति त्वात् । २. 'तिर्यग्वर्ती' इति त्वात् । ३. इति उच्यते-
श्लो० लक्षणवाक्यं 'शेषे तलस्ये वर्तव्ये ताम्रचूटकरेऽङ्गुली' इति मुमुक्षुदिद्या पूरणीयम् ।

मृगव्यालादिवि(श्वासं?त्रासे) बालसन्धारणे तथा ।

अयं हस्तो विधातव्यो भर्त्सने भ्रुकुटीयुतः ॥ १८९ ॥

सिंहव्याघ्रा(दि)योगे च विच्युतः शब्दवान् भवेत् ।

दृष्टिभ्रवौ च कर्त(व्यौ न्य?)त्यमस्यानुगे बुधैः ॥ १९० ॥

अप(रे?रैः) छिदितासंज्ञो(?) हस्तोऽयं परिकीर्तितः ।

इति ताम्रचूडः ॥

अ(लं?सं)युतानां हस्तानां चतुर्विंशतिरीरिता ॥ १९१ ॥

त्रयोदशथ कथ्यन्ते संयुता नामलक्षणैः ।

अञ्जलिश्च कपोतश्च कर्कटः स्वस्तिकस्तथा ॥ १९२ ॥

खट(को'का)वर्धमानश्चा(प्यस?प्युत्स)ङ्गनिपश्चावपि ।

डोलः पुष्पपुटस्तद्वन्मकरो गजदन्तकः ॥ १९३ ॥

(वैरि)त्थादश कथ्यन्ते संयुता नामलक्षणैः ।

अञ्जलिश्च कपोतस्य कर्कटः स्वस्तिकस्तथा(?) ॥ १९४ ॥

त्रयोदशैते कथिता हस्ताः संयुक्तसंज्ञिताः ।

पताकाभ्यां तु हस्ताभ्यां संश्लेषात् सोऽञ्जलिः स्मृतः ॥ १९५ ॥

शिरश्च विनतं किञ्चित् तत्र कार्यं विपश्चिता ।

कार्यो गुरुनमस्कारो मुखस्यासन्नवर्तिना ॥ १९६ ॥

(पेक्षते न?) मित्राणां न स्थाननियमः (कृधे?) ।

इत्यञ्जलिः ॥

उभाभ्यामपि हस्ताभ्यामन्योन्यं पार्श्वसङ्ग्रह(हः?हान्) ॥ १९७ ॥

(स?) हस्तः कपोतनामा (स्यान्) कर्म चास्याभिधीयते ।

(कुर्यात् प्रणमनं) वक्षःस्थितेन (तु) (न) मच्छिराः ॥ १९८ ॥

१. 'व्ये नि' इति स्यात् । २. अयं श्लोकोऽशुद्धः पुनरावर्तितश्च । अस्य स्थाने 'अवदित्यामिधानश्च वर्धमानस्तथापरः' इत्येकत्र शीघ्रमेकमर्थे निवेदनीयम् । ३. 'वधःस्थितेन इति स्यात् । ४. 'छिवाः' इति स्यात्, 'वधः' न्यथैव मित्राणां व्रीणां कार्यो यथेभितः' इति नाट्यशास्त्रे दृष्टेनात् । इह पश्यन्तस्य 'नमस्कारो' इति प्रक्रमानतस्यस्यभ्यन्तेन सम्बन्धो ज्ञेयः ।

पताकादिचतुष्पष्टिहस्तलक्षणं नाम त्र्यशीतितमोऽध्यायः । ३१९

गुरुसंभाषणं कुर्यात् (स्तःते)न शीतं भयं तथा ।

विनयस्याभ्युपगमे चायमित्यभिधीयते ॥ १९९ ॥

(ते)नैवाङ्गु(लि)संघृष्यमाणमुक्तेन पाणिना ।

(एतान् वदतिः) नेदानां कृत्यं(धो?चे)ति प्रदर्शयेत् ॥ २०० ॥

(एवंरूपो पमे च रूपेण ?)

(इति कपोतः ॥)

अङ्गुल्यो यस्य हस्तस्यान्योन्याभ्यन्तरनिःसृताः ।

स कर्कट इति ज्ञेयः (करः) कर्मास्य कथ्यते ॥ २०१ ॥

समुन्नतशिराः किञ्चिदुत्क्षिप्तभ्रश्च जृम्भणम् ।

अनेनैवाङ्गम(र्धैर्द) च कामार्तानां निरूपयेत् ॥ २०२ ॥

(इति कर्कटः ॥)

उत्तानौ वामपा(र्ध्वो?र्ध्वस्थौ) स्वस्तिकः परिकीर्तितः ।

समन्ततस्तदूर्ध्वं च विस्तीर्णं च (व) नानि च ॥ २०३ ॥

ऋ(जःत)वो गगनं मेघा (+ तेनार्थवर्तिनाः) ।

इति स्वस्तिकः ॥

खटकः खटके न्यस्तः (खे?ख)टकावर्धमान(यो?क): ॥ २०४ ॥

शृङ्गारार्थे प्रयोक्त(या?व्यः) परावृत्तस्तथापरः ।

कार्यो विटगतौ नन्नमूर्धा + तत्प्रमाणतः ॥ २०५ ॥

इति खटकः ॥

अरालौ तु विपर्यस्तावुत्तानौ वर्धमानकौ ।

(उत्सङ्ग इति ज्ञेयः + स्पर्शग्रहणे करः?) ॥ २०६ ॥

उत्सङ्गसंज्ञकौ स्यातां हस्तौ तत्कर्म चोच्यते ।

विनियोगस्तयोः कार्यः (पालाकः प्रहरेण तु?) ॥ २०७ ॥

(ति?वि)धातव्याविमौ हस्तौ स्त्रीणामीर्ष्याचिते तथा ।

दक्षिणं वापि (मान?वामं वा न्य)रचेत् हर्षरमध्यगम् ॥ २०८ ॥

(इत्युक्तदुः ॥)

१. 'एतावति' इति स्यात् । २. इदं लक्षणमात्रेण एतन्मतेः उच्यते । तन्मु 'मन्वि-
न्यनविन्दस्वावराधी' श्लोकेऽपि ज्ञेयो' इति मुनिप्रसिद्धिदिशा चोच्यते । ३. इदं विनियोगस्तयोः
श्रुतः । ४. इति उच्यते दिग्भेदरक्षणाय तत्कर्म च उच्यते ।

(अस्यो?) प्रशिथिलौ मुक्तौ पताकौ तु प्रलम्बितौ ।
यदा भवेतां कर(ण?णे) स दोल इति (सं)स्मृतः ॥ २०९ ॥
(इति दोलः ॥)

यस्तु सर्पशिराः प्रोक्तस्तस्याङ्गुलिनिरन्तरः ।
द्वितीय(ः) पार्श्वसंश्लिष्टः स तु पुष्पपुटः (पैराणि च ॥ २१० ॥
ग्रास्यान्यथो यानि यानि?) द्रव्याण्येतेन दर्शयेत् ।
जलादानापयने कुर्यात् + + + + + ॥ २११ ॥
(इति पुष्पपुटः ॥)

पताकौ तु यदा हस्तावूर्ध्वाङ्गुष्ठावधोमुखौ ।
उपर्युपरि विन्यस्तौ तदासौ मकरध्वजः ॥ २१२ ॥
(इति मकरः ॥)

(कर्परौ?) सन्धितौ हस्तौ यदा स्तां सर्पशीर्षकौ ।
गजदन्तः स विज्ञेयः करः कर्मास्य तस्य च ॥ २१३ ॥
(इति गजदन्तः ॥)

शुकतुण्डौ करौ कृत्वा वक्षस्यभिमुखाञ्चितौ ।
शनैरधोमुखाविद्धौ (सौर्वहिस्थल?) इति स्मृतः ॥ २१४ ॥
उ(क्त?)त्कण्ठाप्रभृतीनि च कुर्यादेतेन हस्तेन ।
इत्यवहित्यः ॥

वर्धमानः स विज्ञेयः कर्म चास्य निगद्यते ॥ २१५ ॥

[एतेन सत्यवचनं परिग्रह सग्रहस्तथा ।
संखेयकल्पश्चानेन निपीडितेन कर्तव्यः ॥ २१६ ॥

अनयापि नीदृगेपां + + क्रौञ्चौ च कार्यौ ।
नलिनीपद्मकोशश्च तथा गरुडपक्षकः?] ॥ २१७ ॥

१. 'असौ' इति स्यात् । २. इतः परमस्य कर्माणि लुप्तानि । ३. अत्रापि ग्रन्था-
शस्य लोपः संभाव्यते । ४. 'कर्परे' इति स्यात् । ५. शिष्टं लुप्तम् । ६. 'सोऽवहित्य' इति
स्यात् । ७. लक्षणवाक्ये पूर्वार्धं लुप्तम् । तच्च 'इंसपक्षौ यदि स्यातां पूर्वमुक्तौ पराङ्मुखौ'
इत्येवञ्जातीयं योज्यम् । ८. इत उत्तरं ग्रन्थशरीरे दृश्यमानमिदमशुद्धं वाक्यजातं निष-
हस्तकर्मप्रदर्शकाद् वाक्यादिह प्रक्षिप्तं प्रक्रमान्तरे संक्रामितं चेति संभाव्यते ।

पताकादिचतुष्पट्टिहस्तलक्षणं नाम त्र्यशीतितमोऽध्यायः । ३२१

एतेषां (वृ?नृ?)त्तहस्तत्वेऽप्यभिनीत्युपयोगिता(म्) ।

समा + + जितां तत्र स्वयमभ्युह्य कल्पये(त्) ॥ २१८ ॥

(चे)ष्टयाङ्गेन हस्तेन प्रयोगः सत्त्वकैरपि ।

गण्डोष्ठनासापार्श्वोरुपाद(च?चा)रा(म्भ?)दिभिस्तथा ॥ २१९ ॥

यथा यथा प्रतीतिः स्यात् प्रयतेत तथा तथा ।

कृतानुकरणं + + + + + ॥ २२० ॥

लक्षणं (वृ?नृ?)त्तहस्तानामिदानीमभिधीयते ।

चतुरश्रौ तथोद्वृत्तौ स्वस्तिकौ विप्रकी(णौ?र्णकौ) ॥ २२१ ॥

(पञ्चकोशाभिधानौ) चाप्यरालखटकामुखौ ।

(अ?आ)विद्धत्रक्त्रकौ (सूचीमुद्गरेविव?)संज्ञकौ ॥ २२२ ॥

अर्धरोचितसंज्ञौ तु तथैवोत्तानवञ्चितौ ।

पल्लवा(क्षौ?ख्यौ) (निरावोऽथ?) केशवन्धौ लताकरौ ॥ २२३ ॥

करिहस्तौ तथा पक्षवञ्चिता(क्षौ?ख्यौ) ततः (परम्) ।

(पैक्षे प्रद्योतकरेव्याच?) तथा गरुडपक्षकौ ॥ २२४ ॥

ततश्च दण्डपक्षाख्यावूर्ध्वमण्डलिनौ ततः ।

पार्श्वमण्डलिनौ तद्वदुरोमण्डलिनावपि ॥ २२५ ॥

अनन्तरं करौ ज्ञेयानुरःपार्श्वार्धमण्डलौ ।

मुष्टिः स्वस्तिकाख्या च नलिनीपञ्चकोशकौ ॥ २२६ ॥

ततश्च कथितौ हस्तावलपल्लवकोल्बणौ ।

ललितौ वलि(तप?ता)ख्यावित्येकान्नात्रैश दीरिता ॥ २२७ ॥

पुरस्ता द् वक्ष(सा?सो) हस्तौ प्रदेशेऽष्टाङ्गुले स्थितौ ।

समान(कंपूर्णशौ?) तु संमुखौ खटकासूखौ ॥ २२८ ॥

चतुरश्राविति प्रोक्तौ नृत्तहस्तविशारदः ।

इति चतुरश्रौ ॥

तावेव हंसपक्षाख्या व्यावृत्तिपरिवर्तनात् ॥ २२९ ॥

१. 'सूचीमुद्गरोचित' इति स्यात् । २. 'अ' त चाय' इति स्यात् । ३. 'अथप्रद्योतको चैव' इति स्यात् । ४. प्रदर्शितक्रमेणाष्ट विंशतिं त्रयोदशस्यते ५. 'सूरीसौ' इति स्यात् । ६. इत उपरि उदशुचस्वस्तिकयोर्विषयैः संज्ञानुमादये इतिमिति भाति ।

नीतौ स्वस्तिकतां पथा(त्रु प?च्छया)नितौ मणिवन्धनान् ।

(विप्रकीर्णाविति प्रोक्तौ) नृत्ताभिनयकोविदैः ॥ २३० ॥

इति विप्रकीर्णः ।

तावेव हंसपक्षारुयौ कृत्वा व्यावर्तनक्रियाम् ।

अलपल्लवतां नीतौ ततश्च परिवर्तितौ ॥ २३१ ॥

विधायोर्ध्वमुखौ हस्तौ कर्तव्यौ पद्मकोशकां ।

(इति पद्मकोशकां ॥)

पुनर्विवर्तितं कृत्वा परिवर्तनकं ततः ॥ २३२ ॥

अरालं दक्षिणं कुर्याद् वामं च खटकः सु'कामु'खम् ।

खटकारुयास्त्रयो हस्ताः(?) स्वक्षेत्रेऽसौ विधीयते ॥ २३३ ॥

इत्यरालखटकामुखौ ॥

भुजांसकूर्परैः सार्धं कुटिलावर्तितौ यदा ।

हस्तावधोमुखतलावाविद्धायुद्धतायुर्भौ ॥ २३४ ॥

(वि)नतौ नामतो (विद्याद् दीनाना?विद्धवक्रकौ ।

(अ?आ)विद्धवक्रकौ चैव गदावेष्टनयोगतः ॥ २३५ ॥

(इत्याविद्धवक्रकौ ॥)

(रचितौ सलावर्तितौ?)

यदा (तु) सर्पशिरसौ तलस्थाङ्गुष्ठकौ करौ ।

(?तैयकास्थौ?) प्रसृताग्रौ च (शूलन्यासो भरस्तदा?) ॥ २३६ ॥

इति सूचीमुखौ ॥

हस्तौ सूचीमुखा(तेच?वेव) मणिवन्धनविच्युतौ ।

व्यावृत्तिपरिवृत्तिभ्यां वर्तितौ तदनन्तरम् ॥ २३७ ॥

हंसपक्षत्वमानीय कुर्यात् कमलवर्तिताम् ।

तथा द्रुतभ्रमौ कृत्वा रेचितौ पार्श्वयोः शनैः ॥ २३८ ॥

रेचिता(चित?विति) विज्ञेयौ हस्तौ हस्तविशारदैः ।

इति रेचितौ ॥

व्यावृत्तिपरिवृत्तिभ्यां वर्तितौ चतुरश्रवत् ॥ २३९ ॥

१. 'विद्यादिमावा' इति स्यात् । २. 'वक्रकौ' इति लक्ष्यानदेशं दृश्यते । ३. 'तय-
स्थौ' इति स्यात् । ४. 'सून्यात्याख्यौ करौ तदा' इति स्यात् । ५. अयं सार्धं श्लोकः
धरेचितलक्षणानन्तरं निवेश्यो भाति ।

कूर्परांसा(विःश्चि)तौ हस्तौ नीतौ च त्रिपताकताम् ।
 (शंकिश्चि आश्रस्थितवेतौ ज्ञेयावुत्तानितौ?) ॥ २४० ॥

इत्युत्तानवच्चितौ ॥

वा(हृ?हु)वर्तनया कृत्वा पूर्वव्यावर्तितक्रियाम् ।
 चतुरश्रक(?)परिवृत्तिभ्यां चतुरश्रः कृ(ता?तौ) यदा ॥ २४१ ॥

वामहस्त(स्त)दितरः (कृत्वादेष्वित?)रोचितः करः ।
 अर्धरोचितसंज्ञौ तौ विज्ञानार्थ्यौ तदा बुधैः ॥ २४२ ॥

इत्यर्धरोचितौ ॥

वा(हृ?हु)वर्तनया बाहुशी(पंश्या?पांद् व्या)वर्तनेन वा ।
 ऋग्णेन वि(निष)क्रान्तौ (मितं?) बाभ्यर्णमागतौ ॥ २४३ ॥

पताकावेव निर्दिष्टौ पट्टवौ नामनः कर्ग ।
 इति पट्टवौ ॥

उद्वेष्टितवर्तनया गत्या (वेमंत्रास्रया?) स्थितौ मृधेः ।
 पार्श्वद्विनये पट्टवसंस्था(ने?नौ) केशवन्ध्यामर्या ॥ २४४ ॥

इति केशवन्ध्यामर्या ॥

अभिमुखमुभौ निविष्टौ (भुविष्टितवर्तनक्रमादमर्या) ।
 पट्टवदमर्ता पार्श्वद्विनये रथानां अनासंशौ ॥ २४५ ॥

इति अनासंशौ ॥

व्यावर्तितकरणाभ्यां (परिहर्ते) यद्विष्टौ (कृत्वाह) कृत्वाह
 उभ्रतविलोमितः स्यात् त्रि(पिन)पता यौ कृत्वाह (कृत्वाह) कृत्वाह

इति कृत्वाह ॥

उद्वेष्टितपरि(वर्तनया) त्रिपतावेव(वि)मुभौ यदा (कृत्वाह)
 परिहृततामिष्टौ (परी) यदा पताकावेव(वि)मुभौ (कृत्वाह)

इति परिहृततामिष्टौ ॥

तावेव वि(मर्ता) हस्तौ (कृत्वाह) कृत्वाह (कृत्वाह)
 विपताकावेव(वि)मुभौ (कृत्वाह) कृत्वाह (कृत्वाह)

इति विपताकावेव ॥

पताकादिचतुष्पाष्टिहस्तलक्षणं नाम त्र्यंशोत्तमोऽध्यायः । ३२३

GAEKWAD'S ORIENTAL SERIES.

CRITICAL EDITIONS OF UNPRINTED SANSKRIT WORKS, EDITED BY
COMPETENT SCHOLARS, AND PUBLISHED BY
THE CENTRAL LIBRARY, BARODA.

BOOKS PUBLISHED.

1. Kavyanimamsa, a work on poetics, by Rajasekhara (880-920 A. D.): edited by C. D. Dalal, M. A. and R. Anantakrishna Sastry, 1916. Re-issue. 1924 Rs. 2-4
2. Narayanarayananda, a poem on the Pauranic story of Arjuna and Krishna's rambles on Mount Girnar, by Vastupala, Minister of King Viradhavala of Dholka, composed between Samvat 1277 and 1287 i., e. A. D. 1221 and 1231: edited by C. D. Dalal and R. Anantakrishna Sastry. 1916 1-4
3. Tarkasangraha, a work on Philosophy (Refutation of Vaisesika theory of atomic creation) by Anandajana or Anandagiri, the famous commentator on Sankaracharya's Bhashyas, who flourished in the latter half of the 13th century, edited by T. M. Tripathi, B. A. 1917 2-0
4. Parthaparakrama, a drama describing Arjuna's recovery of the cows of King Virata, by Prahladanadjeva, the founder of Palanpur and the younger brother of the Paramara King of Chandravati; (a state of Marwar) and a feudatory of the Kings of Guzerat, who was a Yuvaraja in Samvat 1220 or A. D. 1164: edited by C. D. Dalal, M. A. 1917 0-6
5. Rashtraudhavamsa, an historical poem (Mahakavya) describing the history of the Bagulas of Mayuragiri, from Rashtraudha, King of Kanauj and the originator of the dynasty, to Narayana Shah of Mayuragiri by Rudra Kavi composed in Saka 1518 or A. D. 1596 edited by Pandit Embar Krishnamacharya with introduction by 1-12

24. Tantrarahasya, a work on the prabhakara school of purvamimamsa, by Ramanujacharya, edited by Dr. R. Shamasastri, 1923, ... 1-8
25. Samarangana, a work on Architecture, town planning and engineering by king Bhoja of Dhara (11th century) edited by Mahamahopadhyaya T. Ganapati Sastri, Ph. D. etc. 2 vols, Vol. I, 1924 5-0
26. gadhanamala, a Buddhist Tantric text of rituals, dated 1165 A. D. consisting of more than 300 small works composed by distinguished writers; edited by Benoytosh Bhattacharyya, M. A., General Editor, Gaekwad's Oriental Series. 2 vols, vol. I, 1925 ... 5-0
27. A Descriptive Catalogue of MSS in the Central Library Baroda Vol. I (Veda, Vedalakshana and Upanishads), compiled by G. K. Shrigondekar, M. A. and K. S. Ramaswami Sastri 1925. ... 6-0
28. Manasollasa or Abhilashitarthachintamani, an' encyclopaedic work divided into one hundred chapters treating of one hundred different topics by, somesvaradeva, a Chalukya King of the 12th century; edited by G. K. Shrigondekar, M. A. 2 vols—vol. I, 1925. ... 2-8
29. Nalavilasa, a drama by Ramachandra Suri, pupil of Hemachandra-suri, describing the Pauranic story of Nala and Damayanti; edited by Messrs G. K. Shrigondekar, M. A. and L. B. Gandhi 1925. (*Shortly*)
30. Tattvasangraha, a Buddhist philosophical work of the 8th century by gāntarakshita a Professor at the Nalanda University, with Panjika (commentary) by his disciple Kamalasila, also a Professor in Nalanda (about 750 A. D.): edited by Pandit Embar Krishnamacharya 2 vols, 1925 (*Shortly*)
31. Advayavajrasangraha; consisting of twenty short works on Buddhist philosophy by Advayavajra, a Buddhist savant belonging to the 11th century A. D. edited by Mahamahopadhyaya Pandit Haraprasad ghastrī, M. A., C. I. E., F. A. S. B., etc.
32. Samarangana, a work on Architecture, town planning and engineering by king Bhoja of Dhara (11th century) edited by Mahamahopadhyaya T. Ganapati Sastri, Ph. D. etc. 2 vols, vol II, 1925

BOOKS IN THE PRESS.

1. Nyavapravesa, the earliest work on Buddhist logic, by Dinnaga, with commentaries of Haribhadrasuri and Parsvadeva, edited by A. B. Dhruva, M. A. LL B., Pro-Vice-Chancellor of the Hindu University, Benares. *Shortly.*
2. Sadhanamala. Vol. II., edited by Benoytosh Bhattacharyya, M. A. General Editor, Gackwad's Oriental Series. Illustrated.
3. Natyasastra, on dramaturgy, by Bharata with commentary by Abhinavagupta of Kashmir; edited by M. Ramakrishna Kavi, M. A. Illustrated. 4 vols.
4. Kalpadrūmakosa, a standard work on Sanskrit Lexicography, edited by Pandit Ramavatara Sarma Sahityacharya, M. A.
5. Manavagrihyasūtra, a work on Vedic ritual (domestic) of the Yajurveda with the Bhasya of Ashtavakra, edited by Pandit Ramakrishna Harshaji with Introduction by Prof. B. C. Lele, M. A.
6. Apabhramśakavyatrayi, consisting of three works, the Charchari, Upadesarasayana and Kalasvarupakulaka by Jinadatta Suri (12th century) with commentaries, edited by L. B. Gandhi.
7. Manasol'sa or Abhilashitarthachintamani. Vol. II., edited by G. K. Shrigondekar, M. A.
8. A Descriptive Catalogue of MSS in the Jain Bhandars at Pattan edited from the notes of the late Mr. C. D. Dalal, M. A. by Pandit L. B. Gandhi. 2 vols.
9. Mirat-i-Ahmadi with its Khatimae or Supplement, by Ali Mahammad Khan, the last Moghul Dewan of Gujarat, edited in the original Persian by Syed Nawabali M. A. Professor of Persiaq Baroda College. 2 vols.

